M.A HINDI- HIN- 402

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र

Centre for Distance & Online Education

जम्मू विश्वविद्यालय

University of Jammu

जम्मू

Jammu

पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम. ए. हिन्दी

M.A. (HINDI)

SESSION : 2025 Onwards

पाठ्यक्रम संख्या : HIN-402	**चतुर्थ सत्र**
COURSE CODE: HIN-402	**Semester - IV**
पाठ्यक्रम शीर्षकः- कथाकार प्रेमचन्द	**आलेख संख्या–1 से 14 तक**
Title of the Course:- Kathakar Premchand	**Lesson No. 1-14**

Prof. Anju Sharma
Co-ordinator
P.G. Hindi

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार
दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180006 के पास सुरक्षित है।

http:/www.distanceeducation.in
Printed and published on behalf of the Centre for Distance & online Education, University of Jammu by the Director, CDOE, University of Jammu, Jammu.

M. A. HINDI (C. No. HIN-402)

COURSE CONTRIBUTORS :	Lesson Nos. :
• **Prof. Neelam Saraf** Retd. Professor, Department of Hindi, University of Jammu.	2, 3, 4
• **Dr. Anju Sharma** Professor of Hindi, CDOE University of Jammu.	1, 5 to 14

Course Co-ordinator
Prof. Anju Sharma
CDOE

Teacher Incharge
Dr. Pooja Sharma
CDOE

Proof reading & Editing
Prof. Anju Sharma
Co-ordinator
P.G. Hindi, CDOE
University of Jammu.

© Centre for Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu, 2025

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the CDOE, University of Jammu.
- The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the CDOE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed at : Lord Krishna Printers /2025/200 Books

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi under Non CBCS
Semester 4th

Course Code : HIN-402 | **Title : Kathakar Premchand**
Credits : 5 | **Maximum Marks : 100**
Duration of Examination : 3 Hrs. | **a) Internal = 20**
b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in 2023, 2024 & 2025

इकाई–एक

उपन्यास

प्रेमचन्द – गोदान

सेवासदन

कहानियाँ

प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियाँ – (पंच परमेश्वर, बूढ़ी काकी, ईदगाह, नमक का दरोगा, कफन, पूस की रात, नशा, ठाकुर का कुआं,

कुल आठ कहानियाँ)

इकाई–दो

प्रेमचन्द: व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

'गोदान': कृषक जीवन का महाकाव्य।

'गोदान' आदर्श एवं यथार्थ।

'गोदान' के प्रमुख पात्र।

इकाई–तीन

'सेवासदन' की प्रमुख समस्याएँ।

'सेवासदन' में चित्रित नारी।

'सेवासदन' के प्रमुख पात्र।

'सेवासदन' उपन्यास का समीक्षात्मक अध्ययन।

इकाई–चार

प्रेमचन्द की कहानियों का विकास–क्रम।

प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श और यर्थाथ।

प्रेमचन्द की कथा–शैली।

निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना।

निर्धारित कहानियों के प्रमुख पात्र।

निर्धारित कहानियों का उद्देश्य।

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड HIN-402 के प्रश्न पत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

मुख्य परीक्षा (External Exam) अंक : 80 समय : तीन घण्टा

(क)	इकाई एक में निर्धारित प्रत्येक पुस्तक में से एक-एक सप्रसंग व्याख्याए पूछी जायेगी। विद्यार्थी को कोई तीन सप्रसंग व्याख्याएँ करनी होंगी।	6x3 = 18
(ख)	शत-प्रतिशत विकल्प के साथ तीन दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न।	10x3 = 30
(ग)	शत-प्रतिशत विकल्प के साथ तीन लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	6x3 = 18
(घ)	शत-प्रतिशत विकल्प के साथ तीन अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न।	3x3 = 9
(ङ)	पाँच वस्तुनिष्ठ विकल्परहित प्रश्न पूछे जायेगे।	1x5 = 5

3.8 संस्तुत पुस्तकें

1. प्रेमचन्द के उपन्यास : पुनर्मूल्यांकन – डॉ. कानुभाई विछीयाभाई निमामा।
2. गोदान : कुछ संदर्भ – डॉ. कमलेश कुमार गुप्त।
3. प्रेमचन्द की विरासत और गोदान – शिवकुमार मिश्र
4. प्रेमचन्द की कहानियों में ग्राम्य जीवन का चित्रण –सरोज गौड़।
5. प्रेमचन्द : कहानीकार – डॉ. सुरेन्द्र आनन्द।
6. हिन्दी उपन्यास – गोपाल राय।
7. हिन्दी का गद्य साहित्य – रामचन्द्र तिवारी।

....

विषय–सूची

आलेख सं.	विषय	लेखक का नाम	पृ. सं.
1.	प्रेमचन्द : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	प्रो० अंजु शर्मा	1
2.	गोदान : कृषक जीवन का महाकाव्य	प्रो० नीलम सराफ़	19
3.	'गोदान' में आदर्श और यथार्थ	प्रो० नीलम सराफ़	36
4.	''गोदान' के प्रमुख पात्र	प्रो० नीलम सराफ़	45
5.	'सेवासदन' उपन्यास की प्रमुख समस्याएँ	प्रो० अंजु शर्मा	62
6.	'सेवासदन' उपन्यास में चित्रित नारी	प्रो० अंजु शर्मा	74
7.	'सेवासदन' के प्रमुख पात्र	प्रो० अंजु शर्मा	90
8.	'सेवासदन' उपन्यास का समीक्षात्मक अध्ययन	प्रो० अंजु शर्मा	119
9.	प्रेमचन्द की कहानियों का विकास–क्रम	प्रो० अंजु शर्मा	129
10.	प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श और यथार्थ	प्रो० अंजु शर्मा	141
11.	प्रेमचन्द की कथा–शैली	प्रो० अंजु शर्मा	146
12.	निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना	प्रो० अंजु शर्मा	154
13.	निर्धारित कहानियों के प्रमुख पात्र	प्रो० अंजु शर्मा	173
14.	निर्धारित कहानियों का उद्देश्य	प्रो० अंजु शर्मा	194

M.A. HINDI	**Lesson No. 1**
COURSE CODE : HIN-402	**Semester-IV**

प्रेमचन्द : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 प्रेमचन्द का व्यक्तित्व

1.4 प्रेमचन्द का साहित्य

- 1.4.1 प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य
- 1.4.2 प्रेमचन्द की कहानियाँ
- 1.4.3 प्रेमचन्द का नाटक साहित्य
- 1.4.4 प्रेमचन्द द्वारा रचित विविध साहित्य
- 1.4.5 प्रेमचन्द द्वारा अनूदित साहित्य
- 1.4.6 प्रेमचन्द का वैचारिक साहित्य
- 1.4.7 पत्रकारिता और प्रेमचन्द

1.5 सारांश

1.6 कठिन शब्द

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप –

- प्रेमचन्द के जीवन के बारे में जान सकेंगे।
- उनके व्यक्तित्व से परिचित होंगे।
- उनकी जीवन दृष्टि क्या रही है, इस विषय में जानेंगे।
- प्रेमचन्द के द्वारा रचे गए सम्पूर्ण साहित्य के बारे में जान सकेंगें।
- उपन्यास सम्राट कहे जाने वाले प्रेमचन्द ने न सिर्फ उपन्यासों में अपितु कहानियों में भी भरपूर ख्याति अर्जित की। उपन्यासों और कहानियों में ख्याति प्राप्त करने वाले प्रेमचन्द ने विविध साहित्य की भी रचना की इससे अवगत होंगे।

1.2 प्रस्तावना

किसी भी लेखक के सम्पूर्ण साहित्य को जानने के लिए उनके व्यक्तित्व और उनकी जीवन के प्रति दृष्टि को जानना आवश्यक हो जाता है। प्रेमचन्द जनता के लिए लिखते थे। प्रेमचन्द के साहित्य को पढ़ने से पाठकों को देहातों में रहने वाले किसानों के भौतिक और अध्यात्मिक जीवन और देश की सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

1.3 प्रेमचन्द का व्यक्तित्व

प्रेमचन्द का जन्म बनारस से लगभग चार मील दूर लमही नाम के गांव में 31 जुलाई, 1880 को कायस्थो के कुल में हुआ। इनके पितामह मुंशी गुरुसहाय पटवारी थे। इनके पिता मुंशी अजायबलाल डाक मुंशी थे और उनका वेतन लगभग पच्चीस रुपये मासिक था। माँ आनन्दी देवी सुन्दर–सुशील और सुघड़ महिला थी। अभी प्रेमचन्द आठ वर्ष के ही थे कि इनकी माता का देहान्त हो गया। विधुर जीवन की कठिनाई को देखकर इनके पिता ने दूसरी शादी कर ली। विमाता से प्रेमचन्द जी को स्नेह न मिल सका।

प्रेमचन्द का बचपन गांव में बहुत ही गरीबी में व्यतीत हुआ। बचपन में इनकी शिक्षा–दीक्षा लमही में हुई और एक मौलवी साहब से उन्होंने उर्दू और फ़ारसी पढ़ना सीखा। 13 वर्ष की आयु में प्रेमचन्द का नाम गोरखपुर के मिशन स्कूल में छठी कक्षा में लिखवाया गया और उसके दो वर्ष बाद ये क्वींस कॉलिज में पढ़ने लगे। सन् 1898 में प्रेमचन्द ने क्वींस कॉलिज से मैट्रिक की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। द्वितीय श्रेणी में पास होने के कारण इनको इस कालेज में प्रवेश नहीं मिला। तब उन्होंने नवस्थापित सैंट्रल हिन्दू कॉलिज में प्रवेश के लिए प्रयत्न किया। किन्तु गणित में कमजोर होने के कारण वे सफल न हो सके। सन् 1910 ई॰ में जब गणित ऐच्छिक विषय हो गया तब प्रेमचन्द ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से इण्टरमीडिएट की परीक्षा द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण की। इसके नौ वर्ष बाद 1919 ई॰ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रेमचन्द ने अंग्रेज़ी, फारसी और इतिहास विषय लेकर बी.ए. की परीक्षा भी द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की।

जब प्रेमचन्द पन्द्रह वर्ष के थे, उनका विवाह हो गया किन्तु इनका वैवाहिक जीवन सुखद नहीं रहा। पत्नी उम्र में बड़ी, बदसूरत और झगड़ालू थी इसी कारण पत्नी से प्रेमचन्द की अधिक देर तक नहीं बनी। प्रेमचन्द ने दूसरी शादी एक बाल विधवा से कर ली। इनकी दूसरी पत्नी का नाम शिवरानी था। प्रेमचन्द के जीवन को आगे बढ़ाने में इनकी पत्नी शिवरानी देवी का बहुत योगदान रहा । उनसे एक लड़की कमला और दो लड़के श्रीपतराय और अमृतराय हुए। शिवरानी देवी के साथ प्रेमचन्द का दाम्पत्य जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत हुआ।

प्रेमचन्द अभी 16 वर्ष के ही थे कि इनके पिता का देहान्त हो गया। घर–गृहस्थी का सारा बोझ प्रेमचन्द के कन्धों पर पड़ गया। आमदनी का कोई साधन न था। घर की जमा पूंजी पिता की बीमारी और क्रिया–कर्म में खर्च हो गई थी। घर की दशा शोचनीय थी। गृहस्थी को चलाने के लिए ही बनारस में इन्होंने एक लड़की को ट्यूशन पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।

पिता की मृत्य हो जाने के कारण प्रेमचन्द को नौकरी की चिन्ता हुई। मैट्रिक में पढ़ते हुए ही वे किसी काम की खोज करने लगे। सन् 1899 में एक पुस्तक बिक्रेता के यहाँ इन की भेंट एक प्राइमरी स्कूल प्रधानाध्यापक से हुई थी। उन्होंने प्रेमचन्द को अपने विद्यालय में अठारह रुपये मासिक वेतन पर सहायक अध्यापक रखा। वहां इनसे अतिरिक्त कार्य लिया जाता था जिससे अप्रसन्न होकर इन्होंने वहां से 2 जुलाई 1900 में त्याग पत्र दे दिया। इनको 1902 ई॰ में इलाहाबाद में अध्यापन प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। इस प्रशिक्षण में इन्होनें प्रथम श्रेणी प्राप्त की जिससे प्रभावित होकर शिक्षा विभाग के अधिकारियों ने इनको मॉडल स्कूल इलाहाबाद में प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्त किया। प्रेमचन्द जी ने सन् 1904 ई॰ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ही स्पेशल वर्नाक्यूलर की परीक्षा हिन्दी–उर्दू में उत्तीर्ण की। जब प्रेमचन्द इलाहाबाद माडल स्कूल में प्रधानाध्यापक के पद पर थे तो इनका तबादला कानपुर हो गया। प्रेमचन्द मई 1905 से जून 1909 तक कानपुर रहे। जून 1909 में इनका तबादला महोबा (जिला हमीरपुर) में हो गया वहां यह डिस्ट्रिक बोर्ड के सब–इन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त किये गये। सन् 1921 में प्रेमचन्द ने महात्मा गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण नौकरी से इस्तीफा दे दिया। बाद में प्रेमचन्द कानपुर के हाईस्कूल में हैडमास्टर का कार्य करने लगे। 1922 ई॰ में प्रेमचन्द ने हेडमास्टर का कार्य भी छोड़ दिया।

सन् 1923 में इन्होंने सरस्वती प्रेस की स्थापना की किन्तु प्रेस में घाटा होने के कारण इन्होंने प्रेस को बन्द कर दिया। सन् 1927 में वे 'माधुरी' पत्रिका के सह–सम्पादक के रूप में कार्य करने लगे और तीन वर्ष बाद सन् 1930 में प्रेमचन्द ने अपनी पत्रिका 'हंस' का प्रकाशन शुरू किया। सन् 1932 में इन्होंने 'जागरण' पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया। इन दोनों पत्रिकाओं (हंस, जागरण) में इनको हानि उठानी पड़ी। सन् 1934 में प्रेमचन्द बम्बई की फिल्म कम्पनी 'अजन्ता सीने टोन' के लिए काम करने लगे। किन्तु फिल्म कम्पनी की नीतियाँ इन्हें अच्छी नहीं लगी और प्रेमचन्द फिल्म कम्पनी को छोड़कर बनारस में लौट आए।

प्रेमचन्द ने अपना सारा जीवन साहित्य साधना में व्यतीत किया। प्रेमचन्द जी ने उपन्यास, कहानी, नाटक, बाल साहित्य, जीवनी आदि लिखी। उन्होंने सदैव अपने को कलम का मज़दूर माना। सर्वप्रथम प्रेमचन्द

ने नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखना प्रारम्भ किया। किन्तु बाद में इन्होंने उर्दू के साथ–साथ हिन्दी में भी लिखना आरम्भ कर दिया। उन्होंने उर्दू में नवाबराय के नाम से 'सोजे वतन' कहानी संग्रह लिखा। यह कहानी संग्रह देश प्रेम की भावना से परिपूर्ण होने के कारण अंग्रेज़ी सरकार ने उसे ज़ब्त कर लिया तो बाद में उन्होंने प्रेमचन्द के नाम से लिखना प्रारम्भ कर दिया। यह नाम इनके मित्र दयानारायण निगम ने दिया था। प्रेमचन्द ने साहित्य का सृजन धन कमाने के उद्देश्य से नहीं किया बल्कि इनका उद्देश्य तो जनता को जागरूक बनाना था। अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरूद्ध आवाज़ उठाना था। प्रेमचन्द सरस्वती के सच्चे पुजारी थे। उन्होंने धन की कभी चिन्ता नहीं की।

प्रेमचन्द ने अपने जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव देखे, किन्तु उन्होंने जीवन में कभी हार नहीं मानी प्रत्येक कठिनाई का सामना किया। प्रेमचन्द जी अत्यन्त सरल स्वभाव के सीधे सादे आदमी थे। ये खुले गले का खादी का कुरता और ढीली–ढाली धोती पहनते थे। उनके सम्पर्क में जो व्यक्ति आता वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था।

सन् 1936 में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक हुई, जिस में मुंशी प्रेमचन्द को इस संस्था का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

प्रेमचन्द ने अपने जीवन को "सपाट, समतल मैदान" कहा था। उनके जीवन में कुछ भी असाधारण और सामान्य न था। अपनी आत्मकथा के टुकड़े में प्रेमचन्द लिखते हैं "मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं–कहीं गड्ढे तो है, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खण्डहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं उन्हें तो यहां निराशा ही होगी।"

प्रेमचन्द जी ने अपने को सदा मज़दूर समझा। बीमारी की हालत में भी मृत्यु के कुछ दिन पहले तक भी वे कमजोर शरीर को लिखने के लिए मजबूर करते रहे। मना करने पर कहते, 'मैं मजदूर हूँ , मजदूरी किए बिना मुझे भोजन करने का अधिकार नहीं'। उनके इस वाक्य में अभिमान का भाव भी था और अपने नाकद्रदान समाज के प्रति एक व्यंग्य भी। उनके हृदय में इतनी वेदनाएँ, इतने विद्रोह भाव और इतनी चिनगारियां भी थी कि उन्हें संभाल नहीं सकते थे। विनय की वे साक्षात् मूर्ति थे, परन्तु यह विनय उनके आत्माभिमान का कवच था। वे बड़े ही सरल थे, परन्तु दुनिया की धूर्त्तता और मक्कारी से अनभिज्ञ नहीं थे। उनका साहित्य इस बात का प्रमाण है। लाखों और करोड़ों की तादाद में फैले हुए भुक्खड़ों दाने–दाने को और चिथड़े–चिथड़े को मुहताज लोगों की वे आवाज़ थे। धार्मिक ढकोसलों को वे ढोंग समझते थे, पर मनुष्यता को वे सबसे बड़ी वस्तु मानते थे, यही प्रेमचन्द का अपना जीवन–दर्शन है। सन् 1936 में प्रेमचन्द बीमार हो गए इलाज के लिए ये लखनऊ गये, किन्तु वहां भी ठीक न हो सके 8 अक्टूबर 1936 को प्रेमचन्द का देहान्त हो गया।

1.4 प्रेमचन्द का साहित्य

प्रेमचन्द बहुमुखी प्रतिभा–संपन्न साहित्यकार थे और वे फारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी एवं हिन्दी के ज्ञाता थे। उनका आरंभिक लेखन अधिकांशतः उर्दू में हुआ था, जिसका उन्होंने बाद में हिन्दीकरण किया। उन्होंने अपने 'रंगभूमि' तक के

उपन्यास उर्दू में लिखे और बाद में उन्हें हिन्दी रूप दिया। प्रेमचन्द के उर्दू से हिन्दी में आने के कंई कारण थे – हिन्दी से वह राष्ट्रीय रंगमंच से जुड़े, उर्दू की तुलना में हिन्दी में धन–यश अधिक था और वे उर्दू की साम्प्रदायिकता से भी व्यथित और पीड़ित थे। प्रेमचन्द की ख्याति यद्यपि कथाकार के रूप में हुई, किन्तु उन्होंने उपन्यास – कहानी के साथ नाटक, लेख, संस्मरण, लघुकथा, पुस्तक–समीक्षा, पत्र, भूमिका, संपादकीय पत्र, भाषण, बाल साहित्य आदि अन्य साहित्यिक – विधाओं में भी विपुल साहित्य की रचना की। प्रेमचन्द की उपन्यास एवं कहानी में इतनी प्रसिद्धि हुई कि हिन्दी संसार एवं लोक–मानस ने उन्हें इन दोनों विधाओं में 'सम्राट' के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। प्रेमचन्द के संबंध में यह महत्वपूर्ण है कि वे हिन्दी–उर्दू दोनों भाषाओं को अपनी सर्जनात्मकता के लिए चुनते हैं और इन भाषाओं के आदान–प्रदान से एक नया भाषिक संस्कार एवं भाषिक सृष्टि होती है और हिन्दी को एक नया रूप मिलता है।

1.4.1 प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य

प्रेमचन्द ने उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में उपन्यास लिखे हैं।

उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द का हिन्दी में पर्दापण सेवासदन (1918) के साथ हुआ। इससे पहले वे उर्दू में असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य (1903–05), 'हमखुर्मा व हमसवाब' (1906) 'किसना' (1908) 'जलव–ए–ईसार' (1912) आदि उपन्यास लिखे थे। 'हमखुर्मा और हमसवाब' उर्दू उपन्यास का हिन्दी रूपांतर प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह नाम से प्रकाशित हुआ। 'जलव–ए–ईसार' प्रेमचन्द का तीसरा उर्दू उपन्यास था जो 1921 में हिन्दी में 'वरदान' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। प्रेमचन्द का पहला उपन्यास सेवासदन (1918) पहले उर्दू में 'बाजारे हुस्न' शीर्षक से लिखा गया था परन्तु उर्दू रूप हिन्दी रूपांतरण के बाद प्रकाशित हुआ। प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम (1922) और रंगभूमि (1925) पहले उर्दू में 'गौशए आफियत' और 'चौगाने हस्ती' नाम से लिखे गये थे, पर साथ–साथ उनके हिन्दी रूपांतर भी स्वयं प्रेमचन्द के द्वारा ही होते रहे। प्रेमचन्द का हिन्दी में लिखा पहला उपन्यास कायाकल्प (1926) था।

जब प्रेमचन्द ने उर्दू में उपन्यास और कहानियाँ लिखना आरंभ किया था उस समय हिन्दी में देवकीनंदन खत्री के ऐयारी तिलिस्म प्रधान उपन्यासों की धूम मची हुई थी परन्तु प्रेमचन्द इनके प्रभाव में नहीं आए। असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य में उन्होंने मंदिरों और तीर्थस्थानों में फैलें भ्रष्टाचार पाखंड और प्रवंचना, वेश्याओं और चरित्रहीन स्त्रियों का चित्रण किया है। प्रेमचन्द पर आर्य समाज का प्रभाव था। वह हिन्दू समाज को आधुनिक रूप में देखना चाहते थे और समानता के पक्षधर थे जिसमें अमीर–गरीब, स्त्री–पुरुष, जंमीदार–किसान', भगवान इंसान में कोई फर्क न हो। इसी से प्रभावित होकर उन्होंने आरंभिक उर्दू उपन्यास लिखे। जहाँ उन्होंने असरारे मआबिद में रहस्य को उद्घाटित किया तो वही हमखुर्मा हमसवाब में विधवा–विवाह का आर्यसमाजी जोश के साथ समर्थन किया।

प्रेमचन्द ने लोकप्रियता पाने के लिए 'मानस' उपन्यास में नये रूप में परिकल्पना की जो मुख्य रूप से यूरोपीय उपन्यासों पर आधारित थी।

अपने पहले उपन्यास 'सेवासदन' (1918) में प्रेमचन्द ने वेश्या जीवन से जुड़ी समस्याओं का चित्रण किया है। हिन्दी उर्दू में इसके पूर्व वेश्या जीवन पर कई उपन्यास लिखे जा चुके थे। सेवासदन उपन्यास में स्त्रियों का वेश्यावृत्ति स्वीकार करने का मूल कारण तिलक–दहेज की प्रथा, पति द्वारा पत्नी की उपेक्षा, उसके प्रति अविश्वास और क्रूर व्यवहार तथा समाज की उपेक्षा और सहानुभूति माना गया है।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों में मध्यवर्ग को प्रमुख विषय के रूप में केन्द्रित नहीं किया गया परन्तु कृष्णचन्द्र, गजाधर, पदम सिंह, मदन सिंह जैसे पात्रों के परिवारों के चित्रण द्वारा प्रेमचन्द ने समकालीन मध्यवर्ग पर प्रकाश डाला है तथा उससे संबंधित समस्याओं जैसे आर्थिक स्थिति, मूल्य संकट, नैतिक दुर्बलता आदि का चित्रण किया है।

सेवासदन उपन्यास के साथ हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक क्रांतिकारी बदलाव आया। सेवासदन से ऐसे उपन्यासों का सूत्रपात हुआ जिनमें घटनाओं का स्थान कार्य व्यापार ले लेते हैं। जब तक सामान्य प्रतीत होने वाले कार्यव्यापारों को उनके प्रेरक भावों से सम्बन्ध नही किया जाता उनमें रोचकता पैदा नहीं होती। भावनाओं से जुड़ जाने पर कार्य व्यापारों के मूल में निहित भावनाएँ ही पाठक की जिज्ञासा का विषय बन जाती हैं।

शिल्प की दृष्टि से सेवासदन में कोई नवीनता नहीं है परन्तु पूर्ववर्ती उपन्यासों से सेवासदन का एक अन्तर यह है कि किस्सागो अब पहले की तुलना में अप्रत्यक्ष हो गया है। सेवासदन के शिल्प की दूसरी विशेषता यह है कि पाठक पहले की तुलना में पात्रों के मनोजगत में प्रवेश कर जाता है।

भाषा की दृष्टि से प्रेमचन्द के लेखन में नए परिवर्तन आए। 'असरारे मआबिद' उपन्यास उर्दू फारसी गद्य से प्रभावित है। हमखुर्मा और हमसवाब में सहज और स्वाभाविक गद्य लेखन मिलता है। हिन्दी रूपांतर 'प्रेमा' की भाषा देवकीनंदन खत्री की भाषा से मिलती–जुलती है परन्तु 'सेवासदन' उपन्यास में संस्कृत गद्यकाव्य परंपरा देखने को नही मिलती।

'सेवासदन' के बाद प्रेमचन्द ने कई उपन्यास लिखे जैसे 'प्रेमाश्रम' (1922), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1932), 'गोदान' (1936) आदि। इसी समय में उन्होंने अपने उर्दू उपन्यास 'जलवा–ए–ईसार' का 'वरदान' (1921) शीर्षक से अनुवाद और 'प्रतिज्ञा' (1929) शीर्षक से 'प्रेमा' (1907) का रूपांतर हुआ। 'मंगलसूत्र' प्रेमचन्द का अधूरा उपन्यास है जो उनकी मृत्यु के बाद (1948) प्रकाशित हुआ।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत किसानों और ज़मींदारों के संबंधों का चित्रण किया है। भारत एक विदेशी पूँजीवादी ताकत का उपनिवेश था जिसका लक्ष्य देश का आर्थिक शोषण करना था। अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए ब्रिटिश शासन ने प्रशासन तंत्र, जमींदार वर्ग और साहूकार महाजन समुदाय को अपना सहायक बना रखा था।

पूर्ववर्ती उपन्यासकार ब्रिटिश शासन के सामने नत–मस्तक थे और जो ब्रिटिश शासन की वास्तविक सच्चाई को समझते थे वे उसके आतंक और दमन से डरे हुए थे। वे अपने उपन्यासों में ब्रिटिश शासन के द्वारा होने वाले आर्थिक

शोषण, शिक्षा के प्रसार, उद्योग धन्धों और कृषि के विकास, सामाजिक सुधार और स्त्रियों की स्थिति में बदलाव आदि की बातें करते थे परन्तु शासन का विरोध करने की हिम्मत उनमें नहीं थी। प्रेमचन्द ने अपनी उर्दू कहानियों (सोज़े वतन 1908) में राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त किया जिसके कारण उनका (सोज़े वतन) सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। प्रेमचन्द के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा का भाव था। 'जलवा–ए–ईसार' में उन्होंने देशभक्ति को विषय का केन्द्र बनाया। 'प्रेमाश्रम' और उसके बाद के उपन्यासों में प्रेमचन्द ने देश की पराधीनता के यथार्थ को चित्रित किया है। ब्रिटिश शासन की शोषण नीति से बढ़ती किसानों की निर्धनता, उनकी दयनीय स्थिति तथा अमानवीय परिस्थितियों का चित्रण प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों में मिलता है। आर्थिक शोषण का प्रमुख आधार ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाया गया भूमिकर था जिसे निर्दयतापूर्वक वसूला जाता था। जिसके कारण किसान कर्ज में डूबे रहते थे। इसी का यथार्थ चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यास कर्मभूमि, गोदान, कायाकल्प आदि में मिलता है। लगानबंदी आंदोलन स्वतंत्रता संग्राम का महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। किसानों के इस संघर्ष का चित्रण इन उपन्यासों में मिलता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वाधीनता की लड़ाई का खुले रूप में चित्रण नहीं मिलता परन्तु उनकी कुछ कहानियाँ स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन, शराबबंदी आंदोलन पर आधारित हैं। रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि उपन्यासों में जो सेवा समितियां हैं उनका उद्देश्य सरकार का तख्ता पलटना नहीं बल्कि सामाजिक सुधार करना और जमींदारों तथा सरकारी कर्मचारियों से अनुनय विनय करते हुए किसानों की दुःख–तकलीफों को दूर करने का प्रयास करना है। प्रेमचन्द ने सरकारी दमन का प्रभावशाली चित्रण किया है। साथ ही उस शिक्षित वर्ग की आलोचना की है जो अपने स्वार्थ के लिए सरकार का समर्थन करता है और जनता का शोषण। कर्मभूमि में अछूतों के मन्दिर प्रवेश और निम्न वर्ग के लोगों के आवास की समस्या को तत्कालीन जनान्दोलन का विषय बनाया है। प्रेमचन्द का सारा उपन्यास साहित्य ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का विरोध करता है। देशी राजाओं, महाजनों, पूँजीपतियों, सरकारी अमलों आदि का विरोध ब्रिटिश शासन का ही विरोध था। किसानों, मज़दूरों, दलितों, स्त्रियों, वेश्याओं, साम्प्रदायिकता की शिकार जनता आदि के प्रति गहरी सहानुभूति भी मुक्ति आंदोलन का ही विस्तार था। कायाकल्प, गबन और कर्मभूमि में कईं ऐसे प्रसंग हैं जो स्वतन्त्रता आंदोलन से जुड़े हुए हैं। इस तरह प्रेमचन्द ने सरकारी कोप से बचते हुए आज़ादी की लड़ाई, जो उस समय की सबसे बड़ी और तीखी सच्चाई थी को अपने उपन्यासों में चित्रित किया।

प्रेमचन्द ने समकालीन मध्यवर्गीय समाज जो अन्तर्विरोधों तर्कहीन सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ नैतिक धारणाओं से ग्रस्त था उसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और उसका अध्ययन विश्लेषण करके अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। सेवासदन में प्रेमचन्द ने मध्यवर्ग के जीवन को कथ्य का विषय बनाया और इसका विस्तार रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन आदि में मिलता है। सेवासदन के कृष्णचन्द्र और पद्मसिंह शर्मा, रंगभूमि के ताहिर अली, निर्मला के उद्यभानु लाल और मुंशी तोताराम, गबन के मुँशी दयानाथ और इन्दुभूषण आदि की समस्याएँ मध्यवर्गीय अन्तर्विरोधी समस्याएं चित्रित करती हैं। सेवासदन के कृष्णचन्द्र ईमानदार दरोगा हैं परन्तु बेटी का विवाह करने के लिए उन्हें अपनी ईमानदारी छोड़नी पड़ती है। रिश्वत लेते हुए वह पकड़े जाते हैं और उनकी समस्याएँ शुरू होती हैं। निर्मला के वकील साहब आय से ज्यादा खर्च करते हैं जिसके फलस्वरूप निर्मला के विवाह की समस्या पैदा होती है और अन्ततः

उसका विवाह अधेड़ तोताराम से हो जाता है जो स्वयं भी मध्यवर्गीय नैतिक मूल्यों की असंगतियों से ग्रस्त हैं। गबन में पूरी समस्या मध्यवर्गीय अन्तर्विरोधों की समस्या है। सेवासदन में पं. उमानाथ की पत्नी द्वारा कृष्णचन्द्र और उनके परिवार की उपेक्षा, रंगभूमि में ताहिर अली के परिवार में उनकी विमाताओं की कपट लीला, कायाकल्प में मुंशी वज्रधर की स्वार्थपन और खुशामद, निर्मला में मुँशी तोताराम का अपने ही पुत्रों के प्रति टुच्चा रवैया और कर्मभूमि में अमरकांत का चारित्रिक ढुलमुलपन मध्यवर्गीय जिंदगी की सच्ची तस्वीरें हैं।

भारतीय जीवन के यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष समाज और परिवार में नारी की स्थिति से जुड़ा है। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती प्रबुद्ध उपन्यासकारों ने नारी सुधार के प्रति अपनी सहानुभूति जतायी परन्तु नारी संबंधी परंपरागत दृष्टिकोण में किसी क्रान्तिकारी बदलाव के पक्षधर नहीं थे।

प्रेमचन्द के समय में भी नारी की स्थिति चिंताजनक थी। उसे न तो पारिवारिक संपत्ति में कोई हक था और न वह स्वतंत्र रूप से जीविका अर्जित करने में समर्थ थी। शिक्षा से वंचित स्त्री की जगह केवल गृहिणी के रूप में, घर में थी या घर के बाहर वेश्या के कोठे पर। लड़कियों के विवाह में तिलक दहेज जुटाना और उनका विवाह होना भी जरूरी था। विवाह के बाद समाज स्त्रियों के प्रति कठोर रवैया अपना लेता था। सेवासदन और निर्मला में प्रेमचन्द ने इस यथार्थ को मार्मिक रूप में चित्रित किया है। गबन में पति की मृत्यु के बाद रतन की दुर्दशा उस समय में समाज में विधवा की असहाय स्थिति को दर्शाती है। रंगभूमि की अभिजातीय वर्गीय इन्दु की विवशता यह सिद्ध करती है कि स्त्री चाहे जितनी मर्जी संपन्न हो दासता की जंजीरों में जकड़ी हुई थी।

प्रेमचन्द के नारी पात्र सामाजिक स्थिति के प्रति आक्रोशित हैं परन्तु विद्रोह करने की स्थिति में नहीं, कारण है प्रेमचन्द का नारी विषयक पुराने आदर्शों का मोह। सेवासदन की सुमन आरंभ में कितनी तेजवान है जिसके मन में पुरुषों के प्रति विद्रोह भावना है परन्तु अन्त में वह परंपरागत आदर्शों की बलि हो जाती है। सेवासदन की शान्ता, प्रेमाश्रम की श्रद्धा और विद्या, रंगभूमि की इन्दु, निर्मला की निर्मला आदि प्रेमचन्द की आदर्श–नारी की प्रतिमा हैं। प्रेमचन्द नारी की सम्मानपर्वूक स्थिति चाहते थे। उन्होंने विधवा से विवाह करके समाज में विधवा–विवाह का समर्थन किया। गोदान में गोबर तथा सिलिया और मातादीन के विवाह के रूप में उन्होंने विधवा विवाह का ही नहीं अन्तर्जातीय विवाह का भी चित्रण किया है। मातादीन और सिलिया के विवाह में प्रेमचन्द एक सामाजिक क्रांति का आह्वान करते दिखाई देते हैं।

सन् 1930 में गाँधी ने विदेशी वस्तुओं की दुकानों, शराबघरों, सरकारी संस्थानों पर धरना देने का संदेश दिया। जिसमें महिलाओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया और जेल गई। प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी भी जेल गई। इसका प्रभाव प्रेमचन्द के उपन्यासों के नारी पात्रों पर भी दिखाई देता है। गबन की जालपा का चरित्र नारी जागरण को स्पष्ट करता है। कर्मभूमि में सुखदा हरिजनों के 'मंदिर प्रवेश आन्दोलन' का नेतृत्व करती हुई जेल जाती है। सुखदा के अतिरिक्त सकीना, बुढ़िया पठानिन रेणुका देवी, मुन्नी आदि ब्रिटिश सरकार का विरोध करती हुई जेल जाती हैं। नैना जुलूस का नेतृत्व करती शहीद हो जाती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी के किसी अन्य उपन्यासकार की रचना में भारतीय नारी का ऐसा जागृत रूप नहीं मिलता।

महात्मा गाँधी ने मानवीय संवेदना की दृष्टि से ही नहीं, राजनीतिक व्यवहारिकता के अन्तर्गत भी अछूतोद्धार आंदोलन का आरंभ किया था। उन्होंने अछूतों को 'हरिजन' की संज्ञा देकर, उनके प्रति उच्च वर्ग की मानवीय सहानुभूति जगा कर और आंदोलन छेड़ उनकी सामाजिक स्थिति को बदलने का प्रयास किया। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में हरिजनों के मन्दिर प्रवेश के आन्दोलन का चित्रण कर्मभूमि उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास में अमरकांत हरिजनों के गाँव में बस कर उनके सुधार के लिए प्रयत्न करता है। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप हरिजन शिक्षा का महत्व जानते हुए बच्चों को स्कूल भेजने के साथ, ताड़ी–शराब पीना छोड़ देते हैं। अपने अधिकारों के प्रति भी उनमें जागरुकता पैदा होती है। गोदान के हरिजन तो सिलिया के ब्राह्मण प्रेमी मातादीन का धर्म–भ्रष्ट कर अपनी विद्रोह भावना का साहसपूर्ण परिचय देते हैं।

प्रेमचन्द के समय में एक ज्वलंत यथार्थ साम्प्रदायिक तनाव से जुड़ा हुआ था। अंग्रेज स्वतंत्रता आंदोलन को कमजोर करने के लिए हिन्दू–मुसलमानों में फूट डालने की कोशिश करते रहे। कट्टरपंथी धार्मिक नेताओं और अपना स्वार्थ साधने वाले बुर्जआ वर्ग हिन्दू–मुसलमानों के सांप्रदायिक दंगों से अपना स्वार्थ साधते रहे। इस मिलीभगत के कारण 1925 के बाद भारत के विभिन्न भागों में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए थे। प्रेमचन्द ने अपने समय की इस सच्चाई का चित्रण अपने उपन्यास कायाकल्प में किया।

प्रेमचन्द साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे। प्रेमचन्द समाज के जिस वर्ग में भी साम्प्रदायिकता, धार्मिक उन्माद और पाखंड देखते हैं उस पर निर्मम प्रहार करते हैं। इस प्रसंग में वे हिन्दू, मुसलमान या ईसाई किसी के प्रति कोई रियायत नहीं करते। वे अपने लेखों और टिप्पणियों द्वारा उन सभी तत्वों की निन्दा करते हैं जो साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारने की कोशिश करते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्र हिन्दू और मुसलमान होने से पहले मनुष्य होते हैं और संघर्ष को रोकने के लिए अपने आप को कुर्बान कर देते हैं। कायाकल्प का चक्रधर ऐसा ही पात्र है। कायाकल्प का दूसरा पात्र ख्वाजा महमूद अपने हिन्दू मित्र की बेटी के लिए अपने बेटे को माफ़ नहीं करता। इस प्रकार प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिक सच्चाई के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है।

प्रेमचन्द की आलोचना इस बात के लिए की गई है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में आदर्शवादी और बनावटी समाधान प्रस्तुत किए हैं इसका कारण यह है कि उस समय प्रेमचन्द के सामने इसका बेहतर अन्य कोई विकल्प नहीं था। गोदान से पूर्व लिखे गए उपन्यासों में प्रेमचन्द द्वारा प्रस्तुत समस्याओं के समाधान उनके युग के अन्तर्विरोधों की देन है।

प्रेमचन्द का प्रमुख उद्देश्य अपने समय के जीवन को उसकी समस्याओं और संघर्षों के साथ प्रस्तुत करना है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में नाना प्रकार के पात्र हैं जो वास्तविक हैं। प्रेमचन्द के कथा संसार की एक अन्य विशेषता यह है कि उनमें से 'नायक' निरन्तर अपदस्थ होता गया है। रंगभूमि और गोदान इसके उदाहरण हैं। रंगभूमि का पात्र सूरदास अन्धा, अनपढ़, भिखारी और दलित है। वह उपन्यास के नायक की छवि से परे है। होरी जैसा पात्र जन्मना और कर्मणा दोनों दृष्टियों से अति साधारण है। प्रेमचन्द के उपन्यासों से नायक के टूटने या उसे तोड़ने की शुरुआत हुई है।

प्रेमचन्द के उपन्यास चरित्र प्रधान नहीं होते परन्तु गोदान उपन्यास का पात्र होरी यथार्थ की भूमि पर गढ़ा गया है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास में पाठकों को आत्मीय लगने वाले पात्रों को गढ़ा है।

हिन्दी उपन्यास के इतिहास में प्रेमचन्द की शिल्प विषयक उपलब्धि यह है कि उन्होंने अन्य उपन्यासकारों की तरह पाठकों को संबोधित करने की परम्परा को त्यागा है।

प्रेमचन्द ने कथाप्रस्तुति की दृश्यात्मक, परिदृश्यात्मक प्रविधि को अपने उपन्यासों मे विशेष रूप से गोदान में शिखर पर पहुँचा दिया है।

हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द के आगमन तक कथानक का सुगठित होना उसकी श्रेष्ठता की कसौटी थी परन्तु प्रेमचन्द ने यह माना कि कथानक मनोरंजन प्रधान कथापुस्तकों के लिए उपयुक्त हो सकता है पर उपन्यास की संरचना के लिए सुगठित कथानक परिहार्य नहीं होता। प्रेमचंद ने सेवासदन उपन्यास में कथानक को ढीला छोड दिया। प्रेमाश्रम में भी इसकी झलक देखी जा सकती है पर रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि और गोदान में कथानक को शिथिल करने का प्रयास किया गया। गोदान में ग्राम और नगर कथाएँ एक–दूसरे से संबंधित होने के साथ सामान्तर रूप से अग्रसर होती हैं और प्रेमचन्द ने उन्हें जोड़ने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

प्रेमचन्द की भाषा हिन्दी उपन्यास की भाषिक परंपरा का सहज पर सर्जनात्मक विकास है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के लिए बोलचाल की गद्य शैली का प्रयोग किया है। उर्दू में कहानियाँ और उपन्यास लिखने के अभ्यास ने उन्हें भाषिक सर्जनात्मक की दिशा में अग्रसर कर दिया था। उनकी भाषिक सृजनशीलता की जड़ें आम जनता की सजीव भाषिक परंपरा में ही हैं। इसी कारण उनमें मौलिकता और ताज़गी मिलती है।

प्रेमचन्द अपने कथासंसार को सजीव बनाने के लिए भाषा का प्रयोग बहुत सावधानी से करते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्र आर्थिक–सामाजिक स्थिति अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं। प्रेमचन्द की भाषा में शब्द और अर्थ का सर्वोत्तम सामंजस्य, अर्थों की सांकेतिक संभावनाओं, लक्षणा और व्यंजना की समृद्धि, शैलीय उपकरणों का सार्थक प्रयोग बिम्ब निर्माण की क्षमता आदि मिलकर एक अद्भुत प्रभाव पैदा करते हैं।

अतः कथ्य वैविध्य, विजन, चरित्रसृष्टि, शिल्प और भाषा सभी दृष्टियों से प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को एक ऐसे शिखर पर पहुँचा दिया जो आज भी एक मंजिल के मानदंड के रूप में मान्य है।

1.4.2 प्रेमचन्द की कहानियाँ

प्रेमचन्द की प्रकाशित कहानियों की संख्या लगभग तीन सौ से ऊपर है। इनमें 292 हिन्दी कहानियों की एक सूची प्रेमचन्द विश्वकोश खंड–2 में है और इसके साथ डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने 228 उर्दू कहानियों की एक सूची दी है।

प्रेमचन्द की लगभग चालीस उर्दू कहानियाँ 1908 से 1915 के बीच प्रकाशित हुई। इन कहानियों के तीन संकलन– सोजे वतन (1908), प्रेम पचीसी भाग–1 (1914), और भाग–2 (1918) भी प्रकाशित हुए। सोजे वतन की कहानियों में देशद्रोह का भाव प्रमुख है, विक्रमादित्य का तेगा, रानी सारन्धा, राजा हरदौल, आल्हा, राजहठ, बांका जमीनदार आदि कहानियाँ देशप्रेम के भाव से ओत–प्रोत थीं।

1.4.3 प्रेमचन्द का नाटक साहित्य

उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने तीन नाटक भी लिखे हैं। प्रेमचन्द ने लेखन का आरंभ एक नाटक से किया।

प्रेमचन्द का पहला नाटक 'संग्राम' था जो 1923 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद उनके दो और नाटक प्रकाशित हुए – 'कर्बला' (1924) और 'प्रेम की वेदी' (1933)। संग्राम नाटक किसान और जमींदार के संबंधों पर आधारित एक सामान्य कोटि का नाटक है। जमींदार ठाकुर सबल सिंह गाँव के एक किसान हलधर की पत्नी राजेश्वरी को देखकर उस पर आसक्त हो जाता है और उसे हासिल करने के लिए उसके पति हलधर को षड़यंत्र के जरिये जेल भिजवा देता है। इस पर राजेश्वरी प्रतिशोध की भावना से भर कर जमींदार को तबाह कर देने का संकल्प लेती है। वह जमींदार का प्रस्ताव मान लेती है और उसके द्वारा उपलब्ध करायी गयी हवेली में रहने लगती है पर यह रहस्य अधिक दिनों तक गोपनीय नही रह पाता। सबल सिंह का छोटा भाई भी राजेश्वरी का आशिक है। इस पर सबल सिंह अपने भाई की हत्या का षड़यंत्र रचता है। उधर हलधर जेल से छूटकर जमींदार और पत्नी से बदला लेने के लिए डाकू बन जाता है। कंचन सिंह अपराध–बोध से अशान्त होकर आत्महत्या कर लेता है। सबल सिंह अपने भाई की मृत्यु का समाचार पाकर आत्महत्या की कोशिश करता है। हलधर दोनों की प्राणरक्षा करता है। सबल सिंह की पत्नी आत्महत्या कर लेती है और सबलसिंह जीवन से उदासीन होकर तीर्थयात्रा के लिए निकल जाता है। हलधर को भी अपनी पत्नी की सच्चरित्रता का प्रमाण मिल जाता है। दोनों साथ रहने लगते हैं। सबलसिंह के तीर्थयात्रा पर चले जाने के बाद जमींदारी प्रथा की समाप्ति और जमीन पर किसानों के आधिपत्य की घोषणा से नाटक की सुखमय समाप्ति होती है।

'प्रेमाश्रम' की तरह ज़मींदारों के हृदय परिवर्तन पर प्रेमचन्द का अगाध विश्वास 'संग्राम' में भी परिलक्षित होता है।

'कर्बला' नाटक इस्लाम के इतिहास की एक क्रूर घटना पर आधारित है। इस नाटक का उद्‌देश्य भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सद्भाव पैदा करना था। 'कर्बला' के संग्राम में हिन्दू योद्धाओं ने भी हजरत हुसैन के पक्ष में प्राणोत्सर्ग किये थे। 'कर्बला' की भाषा 'सरासर उर्दू' थी जो देवनागरी लिपि में लिखी गई थी।

'प्रेम की वेदी' (1933) के केन्द्रीय कथ्य में प्रेम को संसार के सभी संबंधों से श्रेष्ठ माना गया है। इसकी नायिका मिस जेनी नाटक के अन्त में कहती है – "आज मैं सारे ढकोसलों को इन सारे बनावटी बंधनों को प्रेम की वेदी पर अर्पण करती हूँ। यही ईश्वर का धर्म है। धन का धर्म, विद्या का धर्म, राष्ट्र का धर्म संघर्ष में हो सकता है। खुदा का धर्म भी प्रेम और मैं इसी धर्म को स्वीकार करती हूँ। शेष धोखा है।"

इस नाटक की कथा निम्न मध्यवर्गीय ईसाई परिवार से संबंधित है। माँ और बेटी में विवाह संबंधी मान्याताओं को लेकर गहरा मतभेद है। माँ परंपरागत मान्यताओं की समर्थक है जबकि पुत्री विवाह को पुरुष की गुलामी मानती है। मिस जेनी के माध्यम से प्रेमचन्द ने समाज में उभरती आधुनिक नारी चेतना को वाणी देने की कोशिश की है।

प्रेमचन्द के नाटक उन्हें एक सफल नाटककार के रूप में प्रतष्ठित करने में असफल रहे हैं कारण उनकी प्रतिभा एक कथाकार की प्रतिभा थी। प्रेमचन्द का संबंध रंगमंच के साथ न के बराबर था।

1.4.4 प्रेमचन्द द्वारा रचा गया विविध साहित्य

प्रेमचन्द ने उर्दू पाठकों को ध्यान में रखकर अकबर गेरीबाल्डी, गोपालकृष्ण गोखले, डॉ. सर रामकृष्ण भंडारकर, तैयब जी, मौ. अब्दुल हलीम, शरर, रणजीत सिंह राजा टोडरमल, राजा मान सिंह, राणा जंग बहादुर, राणा प्रताप आदि की छोटी–छोटी जीवनियाँ लिखी थीं जो जमाना के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुई थीं। ये जीवनियाँ 1940 में प्रकाशित कलम, तलवार और त्याग (दो भाग) शीर्षक संग्रह में भी शामिल की गयी थी। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द की महात्मा शेखसादी (1917) और दुर्गादास (1938) शीर्षक जीवनी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई।

प्रेमचन्द की दिलचस्पी बाल साहित्य मे थी। प्रेमचन्द का बाल–साहित्य रचना विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ था। गुब्बारे पर चीता, मिट्ठू, शेर और लड़का, साँप की मणि, मगर का शिकार आदि उनकी बाल कथाएँ हैं जो संग्रह के रूप में जंगल की कहानियाँ (1936) में उपलब्ध हैं। 'कुत्ते की कहानी' बालकथा पुस्तक के रूप में 1936 में प्रकाशित हुई थी। प्रेमचन्द ने रामचर्चा नामक पुस्तक जो 1928 में लिखी थी पहले उर्दू में और 1938 में हिन्दी में प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द ने मराठी से अनूदित बाल कहानियों का एक संकलन बाल नीति कथा (1925) भी संपादित किया था। बच्चों के लिए कीड़े–मकोड़े (1925) नामक पुस्तक का भी संपादन किया था।

प्रेमचन्द का पत्र साहित्य भी बहुत समृद्ध है। प्रेमचन्द के पत्रों के संकलनकर्ताओं में उनके सुपुत्र अमृतराय और मदन गोपाल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1962 ई. में अमृतराय ने उनके पत्रों के दो संकलन चिट्ठी पत्री–1 और चिट्ठी पत्री–2 शीर्षक से प्रकाशित किए। चिट्ठी पत्री–1 में प्रेमचन्द के मुख्यतः धनपतराय और गौणतः नवाबराय और प्रेमचन्द के नाम से उर्दू के प्रसिद्ध मासिक पत्र जमाना के संपादक मुंशी दयारामन निगम के नाम लिखे 282 पत्र संगृहीत हैं। ये पत्र 30 जनवरी 1905 से 5 अगस्त 1936 तक की अवधि में लिखे गए थे। चिट्ठी पत्री–2 में पत्रों की संख्या 282 है।

यह पत्र जो मुंशी निगम के अतिरिक्त अख्तर हुसैन, उपेन्द्रनाथ अश्क, उषा देवी मिश्रा, जैनेन्द्र कुमार, दशरथ प्रसाद, शिवपूजन सहाय आदि दर्जनों व्यक्तियों को संबोधित थे। प्रेमचन्द के जीवन और व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हैं। प्रेमचन्द की लेखन प्रक्रिया, उनके साहित्यिक विकास, उर्दू से हिन्दी में आगमन, हिन्दी में रचना और प्रकाशन काल के निर्धारण में इन पत्रों की अहम भूमिका है जिसके कारण अमृतराय को 'कलम का सिपाही' के रूप में प्रेमचन्द की जीवनी लिखने में सफलता मिली।

1.4.5 प्रेमचन्द द्वारा अनूदित साहित्य

मौलिक सर्जनात्मक लेखन के साथ–साथ प्रेमचन्द की अनुवाद में भी सक्रिय रुची थी। उन्होंने तोलस्तोय की कहानियों से प्रभावित होकर उनकी कहानियों का अनुवाद और रूपांतर करना शुरू कर दिया। इनका संकलन 'टालस्टॉय की कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था।

1920 में प्रेमचन्द ने जार्ज इलियट के प्रसिद्ध उपन्यास साइलस मारनर का सुखदास शीर्षक से रूपांतर किया। जो इसी वर्ष प्रकाशित भी हुआ। 1923 में प्रेमचंद का दूसरा अनूदित उपन्यास अहंकार प्रकाशित हुआ जो अनातोले फ्रॉस के प्रसिद्ध उपन्यास 'थाया' का रूपांतर था।

1925 में प्रेमचन्द ने पं. रतननाथ सरसार की प्रसिद्ध कृति फसान–ए–आजाद का 'आजाद कथा' शीर्षक से संक्षिप्त रूपांतर प्रस्तुत किया जो दो खंडों में प्रकाशित हुआ। बाद में सरस्वती प्रेस से भी प्रकाशन हुआ।

1919 में प्रेमचन्द ने बेल्जियम के प्रसिद्ध नाटककार मॉरिस मेटरलिंक के नाटक साइटलेस का उर्दू अनुवाद शबेतार शीर्षक से प्रस्तुत किया जो 1919 में जमाना में प्रकाशित हुआ। 1930 में प्रेमचन्द ने जॉन गॉल्सवर्दी के तीन नाटकों, द सिल्वर बॉक्स, स्ट्राइक और जस्टिस के क्रमशः चांदी की डिबिया, हड़ताल और न्याय शीर्षक से अनुवाद किए जो इसी वर्ष प्रकाशित हुए। मृत्यु से कुछ समय पहले प्रेमचन्द ने बर्नार्ड शॉ के नाटक बैक टु मैथ्युसेलह के प्रथम भाग इन द बिगनिंग का अनुवाद 'सृष्टि का आरंभ' शीर्षक से किया था जो हंस के मार्च–अप्रैल 1937 के अंक में और पुस्तककार 1938 में प्रकाशित हुआ। 1931 में ही प्रेमचन्द ने पं. जवाहरलाल नेहरू की प्रसिद्ध पुस्तक फादर्स लेटर्स टू डॉटर का अनुवाद 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' शीर्षक से प्रस्तुत किया।

1.4.6 प्रेमचन्द का वैचारिक साहित्य

सर्जनात्मक साहित्य के साथ–साथ प्रेमचन्द का वैचारिक साहित्य भी बहुत समृद्ध है। उन्होंने विभिन्न पत्रिकाओं के लिए उर्दू–हिन्दी में दर्जनों लेख लिखे। हंस और जागरण के लिए सैंकड़ो टिप्पणियाँ भी लिखीं जो अमृतराय द्वारा संपादित विविध प्रसंग, खंड–एक, दो और तीन में संकलित हैं।

विषय की दृष्टि से प्रेमचन्द के लेखों और टिप्पणियों को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है – (1) साहित्य विषयक, (2) साहित्येतर विषयक।

साहित्यविषयक लेखों में 'उपन्यास 1–2', उपन्यास का विषय, 'उपन्यास रचना', 'कहानीकला – 1,2,3', 'कहानी कैसी लिखनी चाहिए', 'भारत का कहानी साहित्य', 'साहित्य का उद्देश्य, साहित्य और मनोविज्ञान', साहित्य की नई प्रवृति, साहित्य की प्रगति, साहित्य में समालोचना, राष्ट्रभाषा हिंदी और उसकी समस्याएँ आदि महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचन्द ने सवा सौ पुस्तकों की समीक्षाएँ लिखीं। इनमें सियाराम शरण कृत अन्तिम अकांक्षा, जय शंकर प्रसाद कृत आँधी, कंकाल, तितली और स्कन्दगुप्त, बेचन शर्मा उग्र कृत शराबी आदि शामिल हैं। इन समीक्षाओं में प्रेमचन्द की समालोचनात्मक प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

साहित्येतर विषयक निबंधों में जमाना (फरवरी 1919) में प्रकाशित उर्दू लेख दौरे–जदीदो कदीम' और हंस के सितंबर 1936 में प्रकाशित 'महाजनी सभ्यता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन निबन्धों में समाज और दुनिया के बारे में प्रेमचन्द का प्रगतिशील और वैज्ञानिक दृष्टिकोण बहुत शक्त और तल्ख रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

प्रेमचन्द की साहित्येतर विषयक टिप्पणियों में विषय वैविध्य देखने को मिलता है। इन टिप्पणियों में ब्रिटेन की राजनीति, भारत में ब्रिटिश शासन, अंग्रेजी भाषा, सभ्यता और संस्कृति, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति, निःशस्त्रीकरण, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र पूंजीवाद, प्रांतीयता, रंगभेद, अछूत समस्या, आतंकवाद,, न्याय व्यवस्था आदि विषयों पर प्रेमचन्द के विचार दर्शनीय हैं।

1.4.7 पत्रकारिता और प्रेमचन्द

हिन्दी पत्रकारिता को भी प्रेमचन्द की महत्त्वपूर्ण देन है। मार्च 1930 में उन्होंने हंस नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन–प्रकाशन आरंभ किया। इसका नामकरण हिन्दी के महान कवि जयशंकर प्रसाद ने किया था।

हंस में प्रेमचन्द की लगभग तीन दर्जन कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। प्रेमचन्द हंसवाणी से सम्पादकीय लिखते थे जिनकी संख्या लगभग 237 है। हंस में प्रेमचन्द के 16 लेख तथा नीर–क्षीर के अर्न्तगत लगभग सवा–सौ पुस्तकों की समीक्षा की गई। 'हंस' के तीन महत्त्वपूर्ण विशेषांक 'स्वदेशांक' 'अभिनन्दनांक' और 'काशी अंक' थे जो क्रमशः अक्तूबर–नवंबर 1932, अप्रैल 1933 और अक्तूबर–नवंबर 1933 में प्रकाशित हुए थे।

हंस से अंग्रेजी सरकार ने दो बार 1932 और 1936 में जमानत माँगी थी। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से 'हंस' भारतीय साहित्य का मुखपत्र बनाया गया। मुंशी प्रेमचन्द और कन्हैयालाल मुँशी दोनों हंस के संपादक बने। भारतीय साहित्य के मुखपत्र के रूप में 'हंस' का पहला अंक अक्तूबर 1935 में निकला। जून 1936 के अंक में सेठ गोविंददास के एक नाटक के प्रकाशित होने पर सरकार ने पुनः 'हंस' से जमानत मांग ली , पर गाँधी जी ने जमानत देने से अस्वीकार कर दिया पर प्रेमचन्द ने जमानत दे दी और हंस का प्रकाशन जारी रहा। अक्तूबर 1936 में प्रेमचन्द का निधन हो जाने पर हंस शिवरानी देवी के संपादकत्व में निकलता रहा। जिसका प्रकाशन 1937 में मई अंक 'प्रेमचन्द स्मृति अंक' के रूप में हुआ। इसके संपादक बाबू विष्णु राव पराडकर थे। बाद में 'हंस' श्रीपत राय और अमृतराय के संपादन में भी निकला।

प्रेमचन्द ने 'जागरण' साप्ताहिक का भी संपादन प्रकाशन किया था। प्रेमचन्द के संपादकत्व में जागरण का पहला अंक 22 अगस्त 1932 को निकला और 28 मई 1934 तक लगातार प्रकाशित होता रहा। 4 जून 1934 को संपूर्णानन्द ने जागरण का संपादकत्व संभाला और 13 अंकों तक उसका संपादन किया। उसके बाद जागरण बन्द हो गया।

प्रेमचन्द हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रेमचन्द जैसी कथ्य की गहरी संवेदना उनके बाद के उपन्यासकारों में नहीं दिखाई देती है। कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द अप्रतिस्पर्धेय माने जा सकते हैं।

सर्जनात्मक साहित्य के साथ–साथ वैचारिक साहित्य की रचना कर प्रेमचन्द ने अपनी प्रखर चिंतन की क्षमता प्रदर्शित की है। उनके साहित्य विषयक निबंध मौलिक चिन्तन का प्रमाण हैं। उन्होंने अपने लेखों, संपादकीय टिप्पणियों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, समाज व्यवस्था , राष्ट्रीय समस्याओं, नारी जागरण द्वारा गंभीर चिंतनयुक्त विचार व्यक्त किए हैं।

प्रेमचन्द का पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। हंस और जागरण जैसी पत्रिकाओं के संपादन–प्रकाशन के साथ साहित्यिक और राजनीतिक पत्रकारिता का स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है।

1.5 सारांश

यह निश्चित ही है कि प्रेमचन्द 'मनुष्यता' के अमर कथाकार थे। जब तक समाज में अनीति, अन्याय, अत्याचार और अविचार है तब तक इनकी कृत्तियाँ मशाल का काम देंगी और जब मुक्ति के प्रकाश से मनुष्यता का मुख उज्ज्वल होगा, तब वे शोषित–पीड़ित जनता की जीवन गाथा से उसके जीवन व्यापी संघर्ष से हमारा परिचय कराती रहेंगी। प्रेमचन्द का जीवन तपस्वियों के सदृश था साहित्य–सेवा के लिए ही उनका जीवन था। साहित्य के लिए उन्होंने जीवन पर्यन्त लेखनी को अलग न किया। वे एक सफल तथा सच्चे उपन्यासकार माने जाते हैं। इस बात का निर्णय उनके साहित्य अथवा उनके उपन्यासों से हो जाता है।

प्रेमचन्द का आधुनिक साहित्यकारों में बड़ा ही सम्मानपूर्ण स्थान है और वे हिन्दी के महान एवं कालजयी साहित्यकार हैं। उनके साहित्य–चिन्तन में मौलिकता और आधुनिकता दोनों हैं। वे भारत के परंपरागत चिन्तन और पश्चिम के साहित्य–सिद्धातों, दोनों को आत्मसात् करते है और अपने युगानुरूप एक नया साहित्यदर्शन देते हैं। प्रेमचन्द के साहित्य के गंभीर अवगाहन और विवेचन के समय इस साहित्य–चिंतन को दृष्टि–पथ में रखना आवश्यक है। इससे हम सिद्धांत एवं रचना के संबंध को समझ सकेंगे तथा यह भी कि प्रेमचन्द अपने समकालीनों से कैसे भिन्न और विशिष्ट थे।

1.6 कठिन शब्द

1. धूर्त्तता	6. निर्वैयक्तिकता
2. प्रशस्त	7. पुनरुत्थानवादी
3. उत्सर्ग	8. ध्रुवान्त
4. वैविध्य	9. रसज्ञ
5. सायास	10. अवसादपूर्ण
11. रूपांतरण	12. अभिजातीय

13. नैतिक दुर्बलता	14. हरिजन
15. किस्सागो	16. कट्टरपंथी
17. औपनिवेशक	18. निर्मम
19. लगानबंदी	20. अवगाहन

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. प्रेमचन्द के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालों।

प्रश्न. प्रेमचन्द की साहित्य साधना पर टिप्पणी करें।

प्रश्न. प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य का विश्लेषण करें।

प्रश्न. प्रेमचन्द की कहानियों में समाज का कैसा चित्रण हुआ है।

प्रश्न. प्रेमचन्द के नाट्य–साहित्य पर चर्चा कीजिए।

प्रश्न. प्रेमचन्द के विविध साहित्य पर दृष्टिपात कीजिए।

प्रश्न. प्रेमचन्द के अनूदित एवं वैचारिक साहित्य का विश्लेषण कीजिए।

प्रश्न. पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द की भूमिका स्पष्ट करें।

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व – हँसराज 'रहबर'
2. प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ० रघुवर दयाल वार्ष्णेय
3. प्रेमचन्द – सं० सत्येन्द्र
4. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रजा

----- 0 -----

गोदान : कृषक जीवन का महाकाव्य

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2. प्रस्तावना

2.3 गोदान : कृषक जीवन का महाकाव्य

2.4. गोदान में शोषण के विविध रूप

- 2.4.1. सामन्तीय शोषण
- 2.4.2. पूंजीवादी शोषण का चित्रण
- 2.4.3. पुलिस द्वारा शोषण
- 2.4.4. गांव के पंचों द्वारा शोषण
- 2.4.5. महाजनी वर्ग द्वारा शोषण
- 2.4.6. असन्तोष, विद्रोह और वर्ग चेतना
- 2.4.7. दलित वर्ग का संघर्ष

2.5. सारांश

2.6 कठिन शब्द

2.7. अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8. पठनीय पुस्तकें

2.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरात आप जानेंगे –

– गोदान कृषक जीवन का महाकाव्य है।

– गोदान में कृषक जीवन का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है।

– होरी के माध्यम से लेखक भारतीय किसान की दुर्दशा का वर्णन करता है।

– उपन्यासकार का उद्देश्य कृषक जीवन की आर्थिक विषमता और वर्ग चेतना को प्रस्तुत करना है।

2.2. प्रस्तावना

प्रेमचन्द के उपन्यास– साहित्य में ही नहीं, हिन्दी के समस्त उपन्यासों में गोदान का अन्यतम महत्व है। भारतीय ग्राम्य जीवन का उसे प्रभावित करने वाले नागरिक जीवन के संदर्भ में इतना व्यापक चित्रण अन्य किसी औपन्यासिक रचना में नहीं हुआ है। गोदान में प्रेमचन्द ने होरी के रूप में भारतीय कृषक जीवन का प्रतीकात्मक चित्रण करते हुए जो महान विडम्बनात्मक परिणति उपस्थित की है, वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में बेजोड़ है। कृषक जीवन से जुड़ी समस्याओं का विवेचन इस प्रकार किया गया है :–

2.3 गोदानः कृषक जीवन का महाकाव्य

किसान की शोचनीय आर्थिक स्थिति का चित्रण गोदान में हुआ है उपन्यास में होरी जैसे सम्पन्न और प्रतिष्ठित किसान की विपन्नता कितनी मर्मस्पर्शी है यह निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है, "माघ के दिन थे। महावत लगी हुई थी। घटाटोप अन्धेरा छाया हुआ था। एक तो जाड़े की रात दूसरे माघ की वर्षा। मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। अन्धेरा तक न सूझता था। होरी भोजन करके मुनिया के मटर के खेत की मेंड पर अपनी मंडैया पर लेटा हुआ था। चाहता था कि शीत को भूल जाए और सोता रहे। लेकिन तार–तार कम्बल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंकों, गीली पुआल, इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तम्बाकू भी नहीं मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था पर शीत में वह भी बुझ गया। बेवाय फटे पैरों को पेट में डालकर, हाथों को जांघों के बीच में दबा कर और कम्बल में मुँह छिपाकर अपनी ही गर्म सासों से अपने को गर्म करने का प्रयास कर रहा था। पांच वर्ष हुए यह मिर्जई बनवायी थी। धनिया ने एक प्रकार से यह जबरदस्ती बनवायी थी, वही जब एक बार काबुली से कपड़े लिए थे, जिसके पीछे कितनी सांसत हुई। कितनी गालियाँ खानी पड़ी और यह कम्बल तो उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ इसी में सोता था। जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही कम्बल उसका साथी है पर अब वह भोजन को चबाने वाले

दाँत ही नहीं, दुखने वाले दाँत हैं। जीवन में तो ऐसा कोई दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो।" आर्थिक विपन्नता ने भारतीय कृषक के जीवन को कितनी विषम स्थिति तक पहुँचा दिया है, यह उक्त विवेचन से दृष्टव्य है।

निर्धनता एवं विपन्नता का सम्बन्ध कृषकों के ऊपर होने वाले विविध शोषक वर्गों के अत्याचार से भी है। ज़मींदार तत्कालीन शासन व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी थे। पुलिस, अदालत एवं सरकारी कर्मचारी सभी उनके शुभेच्छु थे। ज़मींदारों का स्वार्थ दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता था। ज़मींदार राय साहब विचारों से प्रगतिशील होकर भी कृषकों का हित न देखकर स्वार्थ सिद्धि में रत थे। मेहता से पूँजीवाद की निन्दा करते हुए राय साहब कहते हैं –किसी को भी दूसरों के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं हैं। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मौज करें अधिक लोग पिसें और खपें कभी सुखद नहीं हो सकती। "मेहता राय साहब के विचार और व्यवहार में अन्तर देखते हुए कहता है – "आपकी जबान में जितनी बुद्धि है काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती।" जागीरदारी सभ्यता का यह प्रतिनिधि बातें बनाना खूब जानता है। उसके तर्क की भित्ति स्वार्थ है और धर्म एवं राजनीति को वह अपने स्वार्थ–साधन का यन्त्र बनाता है।

गोदान में वीभत्स रस की प्रचुर सामग्री पाई जाती है। इसमें घृणा के अनेक आलम्बनों का प्रसार है। यद्यपि इस रचना का प्रधान रस करूण ही है, यद्यपि बीज भाव घृणा ही है। महाजनी शोषण, जमींदारी शोषण, धार्मिक शोषण और वर्ग विषमता की यह मुँह बोलती तस्वीर है। "गोदान" कृषक–जीवन की अत्यन्त करूण कहानी है। करूण परिस्थितियाँ अधिकतर शोषण, अत्याचार और अन्याय का परिणाम हैं.। अतः इस उपन्यास में यद्यपि प्रधान रस करूण ही है किन्तु उसके साथ–साथ वीभत्स रस की व्याप्ति भी है। वीभत्स रस और करूण रस का सह–अस्तित्व और उदात्त प्रसार ही "गोदान" की बड़ी शक्ति है। वीभत्स रस के अनेक प्रकार के आलम्बन प्रकट हुए हैं। गरीबों का शोषण करने वाले, बेगार लेने वाले, नज़र–नज़राने, डाँड तथा अपने धार्मिक या सामाजिक विनोद के लिए गरीबों से जबरदस्ती चँदा लेने वाले रायसाहब अमरपालसिंह, उनके बेईमान, आचारभ्रष्ट और गरीब किसानों पर अत्याचार करने वाले, लगान–वसूली की रसीद न देकर दुबारा वसूल करने वाले, बेगार लेने वाले और दरपर्दा व्यभिचार करने वाले नोखेराम–जैसे कारिन्दे, मंगरू शाह पंडित दातादीन तथा झिंगुरीसिंह जैसे निर्दयी सूदखोर महाजन, पटेश्वरी जैसे स्वार्थी और लोभी पटवारी, परम्परा–पंथी अन्यायी और स्वार्थी पंच, रिश्वतखोर, स्वार्थी और अन्यायी पुलिस दारोगा, धर्म की ओट में शोषण करने वाले चालबाज़ तथा छुआछूत ऊँच–नीच, और जात–पात का भेद रखने वाले स्वार्थी पंडित दातादीन और उनके लम्पट पुत्र मातादीन किसानों की ऊख कम तोलने वाले, मजदूरों का शोषण करने वाले और रसिक लम्पट बेईमान मिल मालिक खन्ना, तिलकधारी, ढोंगी और लम्पट ब्राह्मण, कश्मीरी गपड्डु की स्वछन्द लड़कियाँ, ओंकारनाथ जैसे–स्वार्थी और दुर्बल–प्रकृति पत्रकार आदि अनेक पात्र घृणा के पूर्व आलम्बन हैं।

2.4 "गोदान" में शोषण के विविध रूप

2.4.1. सामन्तीय शोषण

जमींदारी पद्धति द्वारा शोषण। इसके अन्तर्गत रायसाहब अमरपालसिंह जैसे ज़मींदार और उनके कारिन्दे आते हैं। रायसाहब अन्यायपूर्वक लगान वसूल करता है, बेदखल कराता है और असामियों को तंग करता है उनसे बेगार लेता है, डॉड, नज़र–नज़राने वसूल करता है। उसका एक वीभत्स चित्र देखिये : रायसाहब अपने धार्मिक और सामाजिक ढोंग और विनोद के लिए धनुष–यज्ञ की तैयारियाँ करा रहे हैं। अपने असामियों से बेगार ले रहे है। एक चपरासी आकर कहता है – "सरकार बेगारों ने काम करने से इन्कार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे।" "रायसाहब के माथे पर बल पड़ गये। आँखें निकालकर बोले – "उन दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया गया, तो आज यह नई बात क्यों ? एक आने रोज के हिसाब से मजदूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है, और इस मजदूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।"

यह अन्यायी, ढोंगी ज़मींदार जो अभी–अभी होरी के आगे नीति और धर्म की बातें कर रहा था, एकदम कैसा बदल गया। ये ज़मींदार जो अपनी झूठी शान रखने के लिए ज़मीन–आसमान के कुलाबे मिलाते हैं, कभी राष्ट्रवादी बनते हैं और कभी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए राज–भक्त, जिनका दान–धर्म कोरा पाखण्ड है, गरीबों का खून चूस–चूस कर जो अपने लम्बे–चौड़े परोपजीवी कुनबे को अन्याय से पालता है, जो पत्र–पत्रिकाओं का मुँह बन्द रखने के लिए पँचगुणा चन्दा देता है, हमारी तीव्र घृणा जगाता है। राजा सूर्य प्रतापसिंह भी ऐसे ही धूर्त हैं। मेहता उनके बारे में कहता है – "लखनऊ में आप किसी दुकानदार, किसी अहलकार, किसी राहगीर से पूछिये उनका नाम सुनकर गालियाँ देगा।"

और यह नोखेराम ! कारिन्दा है। "वेतन तो दो रुपये से ज्यादा न था, पर एक हजार साल की ऊपर की आमदनी थी, सैंकड़ों आदमियों पर हुकूमत, चार–चार प्यादे हाजिर, बेगार में सारा काम हो जाता था।" बेईमान और धूर्त ने लगान का सारा हिसाब चुकता कर दिया। पर यह कारिन्दा दो साल की बाकी निकालकर प्यादा भेज देता है। क्योंकि रसीद तो उसने दी नहीं थी, क्या सबूत है कि लगान चुका दिया ? होरी सन्नाटे में आ जाता है। गोबर गर्म होकर नोखेराम के पास गया और सबके सामने पूछा – "यह क्या बात है कारिन्दा साहब, कि आपको दादा ने हाल तक का लगान चुकता कर दिया, और आप अभी दो साल की बाकी निकाल रहे है ? यह ? कैसा गोलमाल है ? नोखेराम जब रौब दिखाता है तो वह फटकारता हुआ साफ कह देता है– "........... इसी गाँव से एक सौ सहादतें दिला कर साबित कर दूँगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे–सादे किसान हैं, कुछ बोलते नहीं, तो तुमने समझ लिया किसान काठ के उल्लू हैं। रायसाहब वहीं रहते हो !" नोखेराम सटपटा गए। इन नोखेराम की सीरत के साथ ही लगे हाथ इनकी सूरत भी देख लीजिए – "नौखेराम नाटे–मोटे, खल्वाट, लम्बी नाक और छोटी–छोटी आँखों वाले साँवले आदमी थे।

बड़ा–सा पग्गड़ बाँधते, नीचा कुरता पहनते। उन्हें तेल की मालिश कराने का बड़ा आनंद आता था, इसीलिए उनके कपड़े हमेशा मैले, चीकट रहते थे।" मानो मन की मैल अन्दर न समाकर बाहर पुती जा रही हो।

यह पहले दर्जे का दुश्चरित्र है। भोला की पत्नी लोहरी को वह रख ही लेता है। गाँव का पंच बनकर गरीबों को डाँटता है, रिश्वत में दलाली खाता है और महाजनी करता है सो अलग।

महाजनी शोषण का भी बड़ा ही सजीव चित्रण "गोदान" में मिलता है। महाजनी संस्कृति का विकास हो रहा है। जिसके पास चार पैसे हुए, वही महाजन बन रहा है। गाँव में एक नहीं, कई महाजन हैं – मंगरूशाह दुलारी सुआइन, पं० दातादीन, बिसेसरशाह, पटेश्वरी पटवारी और नोखेराम सब महाजन बने हुए हैं। शहर के पूँजीपति सेठ का एजेण्ट बना हुआ झिंगुरीसिंह भी गाँव में विद्यमान है। ये लोग किसान को भारी सूद पर कर्ज देते हैं। कर्ज देते वक्त दस के बदले पांच हाथ पर रखते हैं : कागज, लिखाई, दस्तूरी, नजर सब पहले ही काट लेते हैं और ब्याज की रकम दिनों–दिन बढ़ती जाती है। बीस के एक सौ साठ हो जाते हैं। पचास के तीन सौ ! किसान सब का ऋणी बन जाता है। उसकी ऊख तैयार होती है। ""झिगुरीसिंह के सभी रिनियाँ थे, और सबकी यह इच्छा थी कि झिंगुरीसिह के हाथ रुपये न पड़ने पायें, नहीं तो वह सब का सब हजम कर जायेगा और जब दूसरे दिन असामी फिर रूपये मांगने जायेगा तो नया कागज नया नज़राना, नयी तहरीर। दूसरे दिन शोभा आकर बोला– "दादा कोई ऐसा उपाय करो कि झिंगुरीसिंह को हैजा हो जाये। ऐसे गिरे कि फिर न उठे।"

होरी ने मुस्काकर कहा – क्यों उसके बाल बच्चे नहीं हैं।

"उसके बाल–बच्चे को देखें कि अपने बाल बच्चों को देखें ? वह तो दो–दो मेहरियों को आराम से रखता है, यहाँ तो एक को रूखी रोटी भी मयस्सर नहीं, सारी जमा ले लेगा। एक पैसा भी घर न आने देगा। .... न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं।

होरी बोला – इस जनम में तो कोई आसा नहीं है, भाई । हम राज नहीं चाहते, भोग–विलास नहीं चाहते, खाली मोटा–झोटा पहनना और मोटा–झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।""

कैसी विषमता है ! करूण और वीभत्स रस का कैसा सुन्दर सह–अस्तित्व है ! निपट दरिद्र किसान के आलम्बनन्त से करूण–रस और शोषक महाजन से बीभत्स रस का कैसा सुन्दर संचार हो रहा है। इन महाजनों से गला छुड़ाना मुश्किल है। शोभा कहता है – "पैसे वाले उधार देकर न दें, तो सूद कहाँ से पायें। एक हमारे ऊपर दावा करता है, तो दूसरा हमें कुछ कम सूद पर रुपये उधार देकर अपने जाल में फँसा देता है।"

महाजनों ने तो ऊख कटती देखी, तो पेट में चूहे छोड़े। एक तरफ से दुलारी दोड़ी, दूसरी तरफ से मंगरूशाह, तीसरी ओर से दातादीन, पटेश्वरी, और झिंगुरी के प्यारे। "मंगरूशाह होरी को डांट कर कहते हैं – पहले हमारे रुपये दे दो होरी, तब ऊख काटो। .... यह न समझना कि तुम मेरे रुपये हज़म कर आओगे, मैं तुम्हारे मुर्दे से भी वसूल कर लूगा।"

प्रेमचन्द ने इन महाजनों की काली करतूत ही प्रकट नहीं की, इनकी काली भौंदी आकृति के भी चित्र दिये है, जिनसे इनका धिनौना रूप और भी प्रकट हो जाता है। मंगरूशाह का चित्र है – "काला रंग तोंद कमर के नीचे लटकती हुई दो बड़े–बड़े दांत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी, गले में चादर, उम्र अभी पचास से ज्यादा नहीं, पर लाठी के सहारे चलते थे। गठिया का मरज हो गया था। खाँसी भी आती थी।"

शोभा मंगरूशाह से कहता है – "पचास रुपये के तीन सौ रुपये लेते तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं आती ?"

किसान की ऊख मिल में पहुँची,। तौल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिए। हर एक की ऊख तौलते थे, दाम का पुरजा लेते थे, खजानची से रुपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को दे देते थे। असामी कितना ही रोये, चीखे, किसी की न सुनते थे।"

होरी को एक सौ बीस रुपये मिले। उनमें से झिंगुरीसिंह ने अपने पूरे रुपये सूद–समेत काटकर कोई पचास रुपये होरी के हवाले किये।" ये महाजन तो ताक में थे ही, होरी "बाहर निकला कि नोखेराम ने ललकारा। होरी ने जाकर पचासों रुपये उनके हाथ पर रख दिये और बिना कुछ कहे जल्दी से भाग गया। उसका सिर चक्कर खा रहा था। शोभा को भी इतने ही रुपये मिले थे। वह बाहर निकला, तो पटेश्वरी ने घेरा। शोभा ने लाख कहा–" मेरे पास अब जो कुछ बचा है, वह बाल–बच्चों के लिए है। पर पटेश्वरी को इससे क्या ? धमकी देकर तुरन्त उगलवा लेता है। किसान की सारे साल की मेहनत का उसे यही फल मिला कि उसके पास एक कोड़ी भी नही रही। सारा साल फिर इन महाजनों से ऋण लेकर, फिर–फिर कागज़ के तहरीर के, कटौती, के, नज़र नजराने के रूपये कटवा कर सौ के पचास पल्ले पाओ और तिस पर सवाया सूद दो। यही चक्कर हर साल चलता है। गिरधर के शब्द कितने मार्मिक हैं, व्यथा और घृणा से लबालब भरे हुए – "झिंगुरी ने सारे का सारा ले लिया, होरी काका ! चबैना को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का ! रोया, गिड़गिड़ाया पर इस पापी को दया न आई ...... एक इकन्नी मुहँ में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली सोचा साल–भर पसीना गारा है, तो एक दिन ताड़ी तो पी लूँ। .... बीस लिए थे, उसके एक सौ साठ भरे कुछ हद है। कितनी लूट है। बिसेसरशाह आने रुपये से कम सूद नहीं लेता।

और यह महाजन दुश्चरित्र भी है। मातादीन झुनिया से मीठी–मीठी बातें करने के लिए किसी–न–किसी बहाने रोज घर आता है। नोखेराम व्यभिचार करता है। नोहरी को उसने एक तरह अपनी रखैल बना लिया है। पटेश्वरी अपनी विधवा कहारिन को रखे हुए है।

दातादीन ने बैल के लिए तीस रूपये होरी को उधार दिये थे। अब दो सौ माँगता है। गोबर कहता है – "मुझे खूब याद है, तुमने बैल के लिए तीस रुपये दिये थे। उसके सौ हुए। और अब सौ के दो सौ हो गए। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट–लूट कर मजूर बना डाला और आप उनकी जमीन के मालिक बन बैठे। तीस के दो सौ। कुछ हद है। और जब वह कहता है, एक रूपया सैंकड़ा सूद के हिसाब से छाछठ बनते हैं। "उसके सत्तर ले लो। इससे बेसी में एक कौड़ी न दूँगा।" तो यह महाजन धर्म की दुहाई देता है, क्योंकि वह भगवान का विशेष कृपा–पात्र है। यह कहता है – "यह समझ लो, मैं ब्राह्मण हूँ मेरे रूपये हजम करके तुम चैन न पाओगे।"

यही नहीं, यह महाजन भी अपने रुपये के बल पर किसान से बेगार लेता है। दातादीन होरी से अपने खेत सेंतमेंत में जुतवाता है। होरी से बड़े रौब से कहता है – "क्या आज भी तुम काम करने न चलोगे होरी। अब तो तुम अच्छे हो गये ।" गोबर ने बीच में ही कहा, "अब यह तुम्हारी मजूरी न करेंगे। हमें अपनी ऊख भी तो बोनी हैं।"

दातादीन ने सूरती फांकते हुए कहा– "काम कैसे नहीं करेंगे, साल के बीच में काम नहीं छोड़ सकते।" गोबर ने जम्हाई लेकर कहा – "उन्होने तुम्हारी गुलामी नहीं लिखी है। जब तक इच्छा थी, काम किया। अब इच्छा नहीं है, नहीं करेंगे कोई। इसमें जबरदस्ती नहीं कर सकता।"

"तो होरी काम नही करोगे ?"

"ना ।"

"तो हमारे रूपए सूद–समेत दे दो ......।" गोबर फिर फटकारता हुआ कहता है – "अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रूपए उधार दे दिये और उससे सूद में जिन्दगी – भर लेते रहो। मूल ज्यों–का–त्यों। यह महाजनी नहीं है, खून चूसना है।"

हास्य–युक्त घृणा का भव्य रूप देखना हो तो होली के अवसर पर गोबर की चौपाल में हुई गिरधर की नकल पढ़िये। महाजन का इससे बढ़िया मजाक और क्या होगा ? ठाकुर झिंगुरीसिंह की नकल हुई, जिसमें ठाकुर ने दस रूपए का दस्तावेज लिखाकर पांच रूपए दिये, शेष नजराने और तहरीर और दस्तूरी और ब्याज में काट लिये। किसान खीझ कर व्यंग्य से कहता है – "अब यह पांच भी मेरी ओर से रख लीजिये।"

"कैसा पागल है।"

"नहीं सरकार एक रूपया छोटी ठकुराईन का नजराना है, एक रूपया बड़ी ठकुराईन का। एक रूपया छोटी ठकुराईन के पान खाने का, एक बड़ी ठकराईन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपके क्रिया करम के लिए।" बढ़िया नकल है ! अन्तिम शब्दों में घृणा पूर्ण स्फुट हो गई है।

2.4.2. पूंजीवादी शोषण का चित्रण

पूंजीवादी शोषण भी बढ़ रहा है। शहर के पूँजीपति खन्ना ने महाजनी कोठी खोल रखी है। उन्हीं का एजेण्ट गाँव में झिंगुरीसिंह है। ये किसान को उधार देते हैं और फसल अपने पास मँगा कर अपने रूपये ब्याज–समेत काट लेते हैं। महाजनी अलग और बेईमानी अलग। खन्ना की मिल में किसान की ऊख तुलती है। वह स्वयं मानता है– आप नहीं जानते मिस्टर मेहता, मैंने अपने सिद्धांतों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी हैं, कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे, कैसे नकली बाट रखे।" यह मिल–मालिक मजदूरों का भी शोषण करता है। आप एक हजार रूपया महीना वेतन लेता है, कमीशन अलग शेयर का लाभ अलग। पर मजदूरों की मजदूरी घटा देता है। वह सोचता है कि वह मिल का संचालन भी तो करता है। मजूर केवल हाथ से काम करते हैं। डायरेक्टर अपनी बुद्धि से, विद्या से, प्रतिभा से काम करता है। .....दोनों शक्तियों का मोल बराबर तो नहीं हो सकता। मजदूरों को यह संतोष क्यों नहीं होता कि यह मंदी का समय है, और चारों तरफ बेकारी फैली रहने के कारण आदमी सस्ते हो गए हैं। उन्हें तो एक की जगह पौन भी मिले तो सन्तुष्ट रहना चाहिए।"" शोषक का कैसा तर्क हैं।

2.4.3. पुलिस द्वारा शोषण

अब ब्रिटिश पुलिस–पद्धति के प्रतिनिधि रिश्वतखोर दारोगा की काली करतूत देखिए। हीरा ने ईर्ष्यावश होरी की गाय को जहर दे दिया और स्वयं भाग निकला। पुलिस दारोगा तो ऐसे अवसरों की तलाश में ही होते हैं, खबर पाते ही आ धमके । उन्हें तहकीकात से क्या गरज, अपना हलुआ–मांदा बनाने से ही मतलब है। दरोगा जी होरी से पैसा ऐंठने के लिए तलाशी लेने का बात बतलाते हैं। दब्बू होरी अपनी मरजाद रखना चाहता है। गाँव के पंच भी लूट–खसूट में दारोगा के साथ लग जाते हैं। वे होरी को कहते हैं – "निकालो जो कुछ देना है, यों गला न छूटेगा।" पर बेचारा होरी दे तो कहाँ से, जहर खाने को भी उसके पास एक पैसा नहीं। पंचों में सलाह होती है, और दारोगा को देने के लिए तीस रूपये होरी को उधार दे दिये जाते हैं। इनमें आधा हिस्सा चार पंचों का ठहरा। होरी ने रूपये लिए और अंगोछे के कोर में बाँध, प्रसन्न मुख आकर दारोगा की ओर चला।

"सहसा धनिया झपटकर आगे आई और अगोंछी एक झटके के साथ उसके हाथ से छीन ली। . ..... सारे रुपये जमीन पर बिखर गये। नागिन की तरह फुंकार कर बोली– ये रूपये कहाँ लिए जा रहा है, बता। भला चाहता है तो सब रूपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ। घर के पुरानी रात–दिन मरें और दाने–दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को न मयस्सर हो और अंजुली भर रूपये लेकर चला है इज्जत बचाने। .... दारोगा तलासी ही तो लेगा। ले–ले जहाँ चाहे तलासी। एक तो सौ रूपये की गाय गयी, उस पर पलेथन ! वाह री तेरी इज्जत।"

"होरी खून का घूंट पी कर रह गया। सारा समूह थर्रा उठा। नेताओं के सिर झुक गये और दारोगा का मुँह जरा–सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी लताड़ न मिली थी..... मगर दारोगा जी इतनी जल्दी हार मानने वाले न थे खिसियाकर बोले–मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फंसाने के लिए खुद गाय को ज़हर दिया है।

"धनिया हाथ मटका कर बोली – "हां, दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली। .... तुम्हारे तहकीकात में यही निकलता है, तो यही लिखो। पहना मेरे हाथों में हथकड़ियाँ ! देख लिया तुम्हारा न्याय और अक्कल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है। दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।"

नेताओं ने रूपये चुनकर उठा लिए थे और दारोगा जी को वहाँ से चलने का इशारा कर रहे थे। धनिया ने एक ठोकर और लगाई–जिसके रूपये हों, ले जाकर उसे दे दो, हमें किसी से उधार नहीं लेना है। और जो देना है उसी से लेना । मैं दमड़ी भी न दूंगी, चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही चढ़ना पड़े। हम बाकी चुकाने को पच्चीस रूपये मांगते थे, किसी ने न दिया। आज अंजुरी–भर रूपये ठनाठन निकाल दे दिये। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाँट–बखरा होने वाला था। सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद–ब्याज, डेढ़ी–सवाई, नजर–नजराना, घूस–घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो।""

रिश्वतखोर दारोगा और गाँव के बेईमान पंचों की काली करतूतों का कैसा सजीव चित्र है। वीभत्स–रस की यहाँ पूर्ण व्यजंना हुई है। होरी की पत्नी धनिया काव्यगत आश्रय है, दारोगा और पंच आलम्बन। दारोगा और पंचों की सांठ–गांठ, दारोगा का धनिया को धमकाना आदि उद्दीपक कार्य है। धनिया का झपटना, हाथ मटका कर फटकारना आदि शारीरिक तथा धिक्कारपूर्ण कथन वाचिक अनुभाव है। अमर्ष, क्रोध, व्यंग्य, शोक, आंशका, साहस आदि संचारी भाव भी स्पष्ट हैं।

शहर के हाकिम, जब भी परोक्ष रूप से किसान का शोषण करते हैं। बेदखली इजाफा आदि की जो कारवाई ज़मीदार अपनी असामियों के विरूद्ध करता है, ये हाकिम रिश्वत खाकर, डालियाँ लेकर, झट किसानों के खिलाफ डिग्री दे देते हैं। "कब दावा दायर हुआ, कब डिग्री हुई, उसे (होरी को) बिल्कुल पता न चला। कुर्कअमीन उसकी ऊख नीलाम करने आया, तब उसे मालूम हुआ।" और बात–की–बात में सारे गाँव के देखते ऊख मंगरूशाह की हो गई। धनिया गालियाँ देती रह गई। वह कहती है – जो गाली खाने का काम करेगा, उसे गालियाँ मिलेगी ही। .... मंगरूशाह ने मर मर कर जेठ की दुपहरी में सिंचाई और गोड़ाई की थी ?" रामसेवक ब्रिटिश नौकरशाही का पर्दाफाश करता हुआ कहता है। "थानेदार और कानिसिटिबल तो जैसे दामाद हैं। जब उनका दौरा – गाँव में हो जाये, किसानों का धर्म है कि वह उनका आदर–सत्कार करें, नज़र–न्याब दें, नही तो एक रिपोर्ट में गाँव का गाँव बँध जाये। कभी कानूनगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी, कभी जज, कभी कलक्टर, कभी कमिश्नर, किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर रहना

चाहिए। उनके लिए रसद–चारे, अण्डे, मुर्गी, दूध–घी का इन्तजाम करना चाहिए। ...... एक न एक हाकिम रोज़ नये बढ़ते जाते हैं। ...... न जाने किस किस महकमे के अफसर, हैं, नहर के अलग, जंगल के अलग, ताड़ी–शराब के अलग....।"

2.4.4. गाँव के पंचों द्वारा शोषण

गाँव के पंचों की काली करतूत का चित्र ऊपर दिया जा चुका है। बिरादरी का भय और पंच भी होरी का शोषण कर रहे हैं। ये पंच अपनी दलाली खाने के लोभ से जब–तब किसान को लुटवाते रहते हैं। पटेश्वरी ने मंगरू को सुझाया कि अगर इस वक्त होरी पर दावा कर दिया जाये, तो सब रूपये वसूल हो जायें।" और वह स्वयं नालिश करने का जिम्मा ले लेता है। अपनी दलाली के लोभ से उसे भड़का कर, उससे अदालत का खर्चा लेकर नालिश कर देता है। वह असामियो को आपस में लड़ाकर भी रकमें मारता है।

समाज की गली–सड़ी परम्पराओं और मर्यादाओं में जकड़ा हुआ किसान इन समाज वालों के शोषण का शिकार होता है। होरी का पुत्र गोबर अहीर की लड़की झुनिया से प्रेम करता है। वह उसे अपने घर ले आता है। होरी और धनिया झुनिया को आश्रय देते हैं। बस समाज की नाक कट गई, बिरादरी की मौत आ गई। झिंगुरीसिंह पचास साल के हैं, दो–दो जवान पत्नियाँ रखे हुए हैं। पटेश्वरी अपनी विधवा कहारिन को दरपर्दा रखे हुए हैं। दातादीन ने जवानी में ऊधम मचाया था। अब उनका बेटा मातादीन सिलिया चमारिन को फँसाये हुए है। झिंगुरी ने ब्राह्मणी रख ली पर इन्हें कोई कुछ नहीं कहता। पैसे वाले हैं, पंच है ! पर यही पंच होरी पर सौ रूपये नकद और तीस मन अनाज डांड लगाते हैं। क्यों उसका बेटा झुनिया विधवा को लाया ? ऐसी कुलच्छनी को क्यों उन्होंने अपने घर में जगह दी ? और पंचों को परमेश्वर मानने वाला और बिरादरी के भूत से डरने वाला होरी टूट जाता है, पर पंचों का फैसला सिर–माथे पर लेता है। धनिया अवश्य अपनी घृणा और क्षोभ व्यक्त करती है– "पंचों, गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। ...... मेरा सराप तुमको भी जरूर– से जरूर लगेगा।" कैसी तीव्र घृणा फूट निकली है। इन समाज–बिरादरी के ठेकेदार धूर्त्त शोषकों के प्रति। धनिया की गालियाँ, सराप, फटकार–धिक्कार स्थान–स्थान पर इन समाज दोषी शक्तियों को घृणा के भिन्न–भिन्न आलम्बनों के प्रति हमारी तीव्र घृणा को पुष्ट करती है।

2.4.5. महाजनी वर्ग द्वारा शोषण

कृषकों के शोषण के लिए मात्र जमींदार ही उत्तरदायी नहीं वरन् पटवारी कानूनगो कारिन्दे एवं मुखिया भी सहायक थे। गोदान महाजनी शोषण की विशद् गाथा है। होरी जमींदार और महाजन में भेद करते हुए बताता है–"जमींदार तो एक है, मगर महाजन तीन–तीन हैं, सहुआइन अलग, मंगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग।" पांच साल हुए होरी ने मंगरू साह से साठ रूपये उधार लिये थे। बैल लाने के लिए। उसमें से वह साठ दे चुका था, परन्तु वह साठ रूपये अब भी बने हुए थे। दातादीन पंडित से उसने तीस रूपये लिए थे आलू बोने के लिए। दुर्भाग्य से आलू चोर खोद ले गए परन्तु उन तीस रूपयों से तीन सौ हो गए।

दुलारी विधवा सहुआइन नोन–तेल–तमाखू की दुकान करती थी, इकन्नी रूपया का ब्याज लेती थी। इनके भी सौ रूपये हो गए थे। फसल होते ही माल सब महाजनों को तौल देना पड़ता और ब्याज फिर बढ़ने लगता।

महाजनों के अनेक प्रकार हैं। गाँव में एक महाजन झिंगुरी सिंह भी थे जो शहर के एक बड़े महाजन के एजेंट थे। उनके नीचे और कई आदमी थे जो आस–पास घूम–घूम कर लेन देन करते थे। झिंगुरी सिंह बड़े हंसोड़ आदमी थे गाँव को अपनी सुसराल बनाए थे, औरतों से साली–सलहज का नाता जोड़े थे। नाटे, मोटे खल्वाट काले, लम्बी, नाक, बड़ी मूछों वाले झीगुरीसिंह रूपये देते समय पक्का कागज़ लिखाते, नजराना, दस्तूरी स्टाम्प की लिखाई लेते और एक साल का ब्याज पेशगी काट लेते थे। किसानों की ऊख तैयार थी और वे उसे एक मिल में बेचने जा रहे थे परन्तु जब बेचेंगे तब वहाँ झीगुरीसिंह भी होंगे और पैसे ले लेंगे। असामियों को फिर जरूरत पड़ेगी और फिर जब मांगने जायेंगे तो फिर नया कागज़ और नया नज़राना होगा। इस भय से आपस में सलाह कर रहे थे कि ऊख पहले बेच दी जाए, रूपया बाद में किसी दिन घात देखकर ले आवेंगे। किसान खेत में ऊख काटने गए, वैसे ही महाजनों का झुण्ड भी पहुँचा। रूपया वसूल करना था, इसलिए दुलारी सहुआइन बन ठनकर आई।" पाँव में मोटे–मोटे चांदी के कड़े पहने, कानों में सोने के झुमके आँखों में काजल लगा, बूढ़े यौवन को रंगे रंगाये।" यमदूत की तरह मंगरू शाह पहुँचे। काला रंग तोंद कमर के नीचे लटकती हुई दो बड़े–बड़े दांत खाने को निकले हुए। गठिया का मरज हो गया था। खांसी भी आती थी। कुकर्म का जैसे साक्षात् अवतार खड़ा हो।

मिल के फाटक पर झिंगुरीसिंह ने आसन लगा रखा था। ऊख तौलकर खंजाची से रूपये वसूल करते और अपना पावना काट कर असामी को रूपये देते। होरी को 120 रूपये मिले। उसमें से झीगुरीसिंह ने अपने रूपये काटकर उसे पच्चीस रूपये दिए। वहाँ से चला तो बाहर नोखेराम मिले। होरी बाकी के रूपये उन्हें देकर वहाँ से भागा। शोभा और पटेश्वरी का झगड़ा हो गया। शोभा अभी रूपये देना न चाहता था, पटेश्वरी के धमकाने पर वह मुलायम पड़ा। होरी और शोभा को आगे गिरधर मिला। यहाँ की एक छोटी सी घटना महाजनी शोषण का ऐसा कटु चित्र खींचती है, जैसे कि दूसरा लेखक पोथे के पोथे रचने पर भी नहीं खींच सका। प्रेमचन्द के शब्द–चित्रण को देखिए। – "सामने से गिरधर ताड़ी पिए झूमता चला आ रहा था। दोनों को देखकर बोला–झिंगुरिया ने सारा–का–सारा ले लिया होरी काका। चबैना को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का। रोया–गिड़गिड़ाया, पर इस पापी को दया न आई।"

शोभा ने कहा– "ताड़ी तो पिए हुए हो, पर कहते हो, एक पैसा भी न छोड़ा।" गिरधर ने पेट दिखाकर कहा–"सांझ हो गई, जो पानी की बूंद भी कंठ ते गई हो तो गो–मांस बराबर। एक इकन्नी मुँह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली। सोचा, साल भर पसीना गिराया है तो एक दिन ताड़ी भी पी लूं मगर सच कहता हूँ, नसा नहीं है। एक आने में क्या नसा होगा। हाँ झूम रहा है जिससे लोग समझे खूब पिए हुए हैं। बड़ा अच्छा हुआ काका बेबाक हो गई। बीस लिए थे, उसके एक सौ साठ भरे हैं, कुछ हद है।"

परिस्थिति इस सीमा तक उसे घसीट ले गई है। जब केवल उन्माद छोड़ उसके लिए और कोई चारा नही रह गया। शायद शोभा के लिए कोई ताड़ी का निषेध न करेगा क्योंकि उसे इकन्नी में नशा न हुआ था, केवल दिखने को झूम रहा था। साल भर की मेहनत का यही फल था।

और होरी की परिस्थिति देखिए। घर पहुँचे तो सब आदर–स्वागत को न छोड़े कि ऊख के रूपये लाया होगा। रूपा पानी लेकर दौड़ी, सोना चिलम भर लाई, धनिया ने चबेना और नमक लाकर रख दिया। होरी से न मुँह हाथ धोते बनता था न चबेना चबाते। "ऐसा लज्जित और ग्लानित था, मानो हत्या करके आया हो।" गोदान– में एक जगह कुछ किसान स्वांग करते हैं, स्वांग में वह महाजन का चरित्र भी करते हैं। स्वांग से महाजन के प्रति उनके हृदयस्थ भावों का पता चलता है। एक किसान उधार लेने गया। कागज़ लिखे जाने पर ठाकुर महाजन ने उसके हाथ में पांच रूपए रख दिए। उसने कहा, यह तो पांच ही हैं तो उत्तर मिला, "पांच नहीं है दस हैं। घर जाकर गिनना।" पांच दस के बराबर इस प्रकार थे। एक रूपया नजराने का, एक कागद का, एक दस्तूरी का, एक सूद का, पांच नगद। किसान से कहा– "अब यह पांचों भी मेरी ओर से रख लीजिए।" पूछा क्यों तो उसने कहा–"एक रूपया छोटी ठकुराइन का नज़राना है। एक रूपया बड़ी ठकुराइन का, एक रूपया छोटी ठकुराइन के पान खाने का, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक वह आपके क्रिया करम के लिए।" इस अतिरंजित चित्र के व्यंग्य से किसान की जलन का अनुमान किया जा सकता है।

क्या कानून बनाकर महाजनी शोषण का अन्त किया जा सकता है ? महाजन कहता है नहीं। जब तक देश में गरीबी है तब गरीबों को उसकी जरूरत रहेगी। वह अपने आसन पर उतने ही विश्वास से बैठा है जितने से ज़मींदार। प्रेमचन्द झिंगुरीसिह की वार्ता द्वारा यही बताते हैं कि कानून आदि भी पैसे वालों का पक्ष ही लेते हैं। झिंगुरीसिंह दातादीन से कहता है–"कानून और न्याय उसका है जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई ज़मींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करें, मगर होता क्या है। रोज ही देखते हो। ज़मींदार मुसक बँधवाकर पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। प्रचलित व्यवस्था में महाजन और ज़मीदार बड़े मजे से आधा सांझा कर लेते हैं। महाजन सूद पर रूपये देता है। ज़मीदार लगान लेता है। ज़मीदार भी खुश, महाजन भी खुश।

ज़मींदार के लगान के अतिरिक्त कन्या का विवाह किसान के लिए दैवी व्याधि से कम नहीं होता। होरी को भी लड़की का ब्याह करना था। उसने रुपये उधार लिए । रुपये कमाने के लिए एक सड़क पर कंकड़ो की खुदाई की मजूरी करने लगा। बहुत दिन के बाद उसका भाई हीरा आया और होरी को देखकर बोला तुम तो बहुत दुबले हो गए दादा ? होरी ने उत्तर दिया–मोटे वह होते हैं जिन्हें न रिन की सोच होती है न इज्जत की। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। मोटे होने की बात, होरी के लिए जीना भी दूभर ही था। गर्मी की जलती लू में काम करते करते एक दिन उसका जी खराब हो गया। मरने के समय लोगों

ने कहा–गोदान कर दो। धनिया भीतर गई और सुतली के बेचने से जो पैसे बचे थे उन्हें पति के ठंडे हाथ में रखवाकर उसने खड़े दातादीन से कहा–महाराज घर में न गाय है न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं। यही इनका गोदान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

2.4.6. असन्तोष, विद्रोह और वर्ग चेतना

गोदान में वर्ग–विषमता के साथ–साथ प्रेमचन्द ने गरीबों के असन्तोष, वर्ग–भावना और विद्रोह का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। धनिया, गोबर, गिरधर, शोभा आदि पात्र स्थान–स्थान पर विद्रोह की भावना प्रकट करते हैं। गोबर तो असन्तोष एवं विद्रोह की मूर्ति ही है। जब होरी रायसाहब से मिलकर आता है तो गोबर कहता है " यह तुम रोज–रोज़ मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो ? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नज़र नज़राना सब तो हम से भराया जाता है। फिर किसी को क्यों सलामी करो।" प्रेमचन्द ने इस प्रसंग में दो पीढ़ियों के मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण किया है। "इस समय यही भाव होरी के मन में भी आ रहे थे, लेकिन लड़के के इस विद्रोह–भाव को दबाना जरूरी था" स्पष्ट है कि होरी की पीढ़ी दब्बू है, भाग्यवाद पर विश्वास करती है। अपने विद्रोह के भाव को यह पीढ़ी अपनी भाग्यवादी मनोवृत्ति से दबा लेती है।

गोदान में होरी की अपेक्षा धनिया, गोबर, शोभा आदि में असन्तोष और विद्रोह की भावना प्रचण्ड है। पर ये सब सामूहिक विद्रोह के लिए तैयार नहीं होते। इतना असन्तोष और विद्रोह व्यक्तिगत विद्रोह ही बना रहता है। होरी रायसाहब की वकालत करता हुआ कहता है कि अपनी मरजाद सबको पालनी पड़ती है, ज़मींदार की जान को भी सैकड़ों रोग लगे रहते हैं तो गोबर प्रतिवाद करता है। होरी के कहने पर "तुम्हारी समझ में हम और वह बराबर है।" गोबर का उत्तर है "भगवान ने तो सब को बराबर ही बनाया है।" होरी बेटे को समझाते हुए कहता है "यह बात नहीं है बेटा छोटे बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए थे उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नही संचा तो भोगें क्या ?" स्पष्ट है कि 'गोदान' में होरी की पीढ़ी प्रबल है। अभी नई पीढ़ी ने अर्थात गोबर ने संघर्ष आरम्भ नहीं किया है। एक अन्य स्थान पर शोभा होरी से कहता है–'न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं'। तो होरी कहता है 'इस जन्म में तो कोई आशा नहीं है भाई। हम राज नहीं चाहते, भोग विलास नहीं चाहते, खाली मोटा–झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।" यह सब जानते हुए भी वह शोभा को विद्रोह करने के बजाय यह सलाह देता है–'कुसल इसी में है कि झिंगुरीसिंह के हाथ–पाँव जोड़ो। हम जाल में फँसे हुए हैं। जितना ही फड़फड़ाओगे, उतना ही और जकड़ते जाओगे।" शोभा होरी की बात को अस्वीकार करता है–"तुम तो दादा, बूढ़ों की सी बातें कर रहे हो। कठघरे में फँसे बैठे रहना तो कायरता है। फन्दा और जकड़ जाए, बला से पर गला छुड़ाने के लिए जोर तो लगाना ही पड़ेगा। यही तो होगा कि झिंगुरीसिंह घर द्वार नीलाम करा देंगे। करा ले नीलाम। मैं तो चाहता हूँ कि हमें कोई रुपये न दे, हमें भूखों मरने दे, लातें खाने दे, एक पैसा भी उधार न दे लेकिन पैसे वाले उधार

न दे तो सूद कहाँ से पायें।"

'गोदान' में होरी की अपेक्षा धनिया, गोबर, शोभा, गिरधर आदि में असन्तोष और विद्रोह की भावना प्रचण्ड है। पर ये सब सामूहिक विद्रोह के लिए तैयार नहीं होते, संगठित नहीं होते। इनका असन्तोष और विद्रोह व्यक्तिगत निष्क्रिय विद्रोह ही बना रहता है। दारोगा की धाँधली पर धनिया का विरोध, नोखेराम की बेईमानी पर गोबर की फटकार आदि कुछ प्रयास अपवाद ही है। गोबर जब शहर से कुछ कमा कर गाँव में आता है तो गाँव के शोषकों की खूब भर्त्सना करता है। जब दातादीन पूछता है 'अब तो रहोगे कुछ दिन ?' तो गोबर तमाचा–सा लगाता हुआ कहता है–"हाँ, अभी तो रहूँगा कुछ दिन। उन पंचों पर दावा करना है, जिन्होंने डाँड के बहाने मेरे डेढ़ सौ रुपये हज़म किये हैं। देखूँ कौन मेरा हुक्का पानी बन्द करता है और कौन बिरादरी मुझे जात बाहर करती है।" गोबर के युवक साथी भी गोबर से कहते हैं–'कर दो नालिस गोबर भैया! बुड्ढ़ काला साँप है–जिसके काटे का मन्तर नहीं। तुमने अच्छी डाँट बताई। पटवारी के कान भी गरमा दो। बड़ा मुतफन्नी है दादा! और गोबर की शह पाकर होली का प्रोग्राम बनने लगा कि "......रंगों के साथ कालिख भी बने और मुखियों के मुँह पर कालख ही पोती जाए। फिर स्वांग निकले और पंचों की भद्य उड़ाई जाये।" वे सब इन शोषकों को खूब भिगो–भिगो कर लगाते हैं। होली की रात इन महाजनों, शोषकों और मुखियों की खूब नकलें हुई। "रात–भर मँडैती होती रही और सताए हुए दिल कल्पना में प्रतिशोध पाकर प्रसन्न होते रहे।" गोबर दातादीन को मनमाना सूद देने से जबाव दे देता है। वह बेईमानी से दोबारा लगान की वसूली चाहने वाले नोखेराम की खबर लेता है। वह होरी को जाता हुआ साफ कहता है– "मैं कल चला जाऊँगा, लेकिन इतना कहे देता हूँ कि किसी से एक पैसा उधार मत लेना और किसी को कुछ मत देना। मँगरू, दुलारी, दातादीन सभी से एक रुपया सैंकड़े सूद कराना होगा।" पर होरी का धर्म–भीरू मन "इसे नीति हाथ से छोड़ना" ही समझता है।

भोला भी अपना असन्तोष होरी की ही मनःस्थिति के रूप में प्रकट करता है–"कौन कहता है कि हम–तुम आदमी हैं। हममें आदिमयत है कहाँ ? आदमी वे हैं जिनके पास धन है, अख्तियार है, इलम है, हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं।" होरी दूसरों का खून चूस–चूस कर मोटा होने को बेहयाई कहता है। गो–हत्यारा हीरा अपने किये पर पछताता और क्षमा याचना करता हुआ जब होरी से मिलता है तो कहता है, "तुम भी तो बहुत दुबले हो गये दादा!" तो होरी जवाब देता है–"तो क्या यह मेरे मोटे होने के दिन हैं ? मोटे वह होते हैं जिन्हें न रिन का सोच होता, न इज्जत का। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन से क्या सुख ? सुख तो तब है कि सभी मोटे हों।"

2.4.7. दलित वर्ग का वर्ग संघर्ष

अब अछूत कहे जाने वाले दलित वर्ण के लोगों का वर्ग–संघर्ष उद्धृत करके इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। मातादीन ब्राह्मण ने गरीब चमारिन युवती सिलिया को फँसा लिया। सिलिया दिल–जान से उसे प्यार करने लगी। पर स्वार्थी लम्पट मातादीन अपने धर्म की रक्षा के बहाने उसे खिलौना बनाकर ही रखता है। चमारों ने देखा कि हमारी लड़की को भ्रष्ट करके भी यह नेमी–धर्मी बना हुआ है, क्रोध करके मातादीन के सिर चढ़ आते हैं। वे उसे घेर लेते हैं। सिलिया का बाप हरखू स्पष्ट कहता है–"......हम आज या तो मातादीन को चमार बना के छोड़ेंगे या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी–न–किसी के घर तो जायेगी। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है, मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे। तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें ब्राह्मण बना दो, हमारी सारी बिरादरी रखने को तैयार है। जब यह सामारथ नहीं है तो फिर तुम ही चमार बनो, हमारे साथ खाओ–पीओ, हमारे साथ उठो बैठो। हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धर्म हमें दो।"

दातादीन ने लाठी फटकार कर कहा–"मुँह सँभाल कर बातें कर हरखुआ तेरी बिटिया वह खड़ी है, ले जा जहाँ चाहे ! हमने उसे बाँध नहीं रखा है......।"

सिलिया की माँ उँगली चमका कर बोली–"वाह वाह पण्डित, खूब नियाब कहते हो! तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गयी होती और तुम इस तरह की बातें करते, तो देखती। हम चमार हैं, इसलिए हमारी कोई इज्जत नहीं ! हम सिलिया को अकेली न ले जाएँगे, उसके साथ मातादीन को भी ले जायेंगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी धर्मी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे ! बड़ी चुड़ैल है कि यह सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती।"

हरखू ने अपने आदमियों को ललकारा – "सुन ली इन लोगों की बात कि नहीं ? अब क्या खड़े ताकते हो ?"

"इतना सुनना था कि दो चमारों ने लपककर मातादीन के हाथ पकड़ लिये। तीसरे ने झपट कर उसका जनेऊ तोड़ डाला और दो चमारों ने मातादीन के मुँह में एक बड़ी–सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया।"

2.5. सारांश

निश्चय ही 'गोदान' में चमार जाति का यह संघर्ष वर्ग संघर्ष का उत्तम उदाहरण है। कृषक–वर्ग के संघर्ष का समूची रचना में एक भी उदाहरण इतना सजीव नहीं है। आश्चर्य ही है कि प्रेमचन्द ने मजदूरों और चमारों का प्रासंगिक वर्ग–संघर्ष तो इतना खुला, स्पष्ट और सजीव दिखाया है, पर कृषकों के सामूहिक

संघर्ष का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। कृषकों के जीवन की विषमता और वर्ग–चेतना प्रस्तुत करना ही उनका उद्देश्य बना रहा।

2.6 कठिन शब्द

1. प्रश्रय
2. अंजन
3. प्रतिछबित
4. प्रयाण
5. कारिंदा
6. पंकिलता
7. सुतली
8. अंजन
9. सुतली

2.7. अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'गोदान' कृषक जीवन का महाकाव्य है स्पष्ट कीजिए –

____

____

____

____

____

____

प्रश्न. 'गोदान' में शोषण के विविध रूपों का चित्रण हुआ है– युक्ति–युक्त उत्तर दीजिए।

____

____

____

____

____

प्रश्न. 'गोदान' में लेखक ने पुलिस के भ्रष्ट रूप का चित्रण किया है – स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न. 'गोदान' असन्तोष, विद्रोह और वर्ग चेतना का महाकाव्य है – स्पष्ट कीजिए।

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. गोदान – प्रेमचंद
2. कथाकार प्रेमचंद – जाफर रज़ा।
3. प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय
4. गोदान का महत्व – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
5. प्रेमचन्द – सं– सत्येंद्र
6. प्रेमचन्द के साहित्य में हाशिए का समाज– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – शुभ्रा सिंह

----- 0 -----

'गोदान' में आदर्श और यथार्थ

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3. 'गोदान' में आदर्श और यथार्थ

3.4. सारांश

3.5 कठिन शब्द

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7. पठनीय पुस्तकें

3.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे

- गोदान उपन्यास में आदर्शवाद नामक विचारधारा को व्यक्त किया गया है।
- प्रेमचन्द ने गोदान उपन्यास में आदर्श और यथार्थ का चित्रण किया है।
- प्रेमचन्द की इस कृति में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की परिणति हुई है।

3.2 प्रस्तावना

आदर्शवाद नामक विचारधारा का वाङ्मय की विविध विधाओं में बहुलता से प्रयोग किया गया है। साहित्य क्षेत्र में इस विचारधारा से यह आशय है कि जो साहित्य, मनुष्य को अपने सम्पूर्ण जीवन में इन्हीं उत्कृष्ट तत्वों के माध्यम से प्राप्त उपलब्धियों की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा दे। यह उपलब्धियाँ मनुष्य को सुख और सन्तोष प्रदान करती हैं। यह विचारधारा संयम त्याग और आत्मपीड़न को कल्याणप्रद बताकर उसका समर्थन करने लगती है। मानव शनैः शनैः इस विचारधारा पर प्रबल रूप से विश्वास करने लगता है कि ब्राह्य और शारीरिक सुखों के द्वारा स्थायी सुख की प्राप्ति असम्भव है। इस प्रकार के जीवन में उदात्त

तत्वों को प्रश्रय देने वाली इस विचारधारा की वृत्ति अन्तर्मुखी है। डॉ० प्रताप नारायण टण्डन का आदर्शवाद के सम्बन्ध में विचार है –स्थूल रूप से आदर्शवाद जगत और जीवन में पायी जाने वाली वास्तविकता को साहित्य में प्रतिछवित करने का विरोधी होता है। यह जीवन चित्रण में वास्तविकता के स्थान पर उदात्तता के समावेश का समर्थन करता है। आदर्शवाद में समाविष्ट भावनात्मक और कल्पनात्मक तत्वों को ही आदर्शवाद का आधार और प्रेरक मानना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि ये वास्तव में वे तत्व हैं जो जीवन को सृजनशील बना कर ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों से विमुख और इस प्रकार सार्थक बनाते हैं। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि आदर्शवादी विचारधारा समाज में व्याप्त कुरीतियाँ समस्याओं का तिरस्कार करके कल्याणकारी भावनाओं को ही वर्णित करने पर बल देती हैं। आदर्शवाद उन्हीं मानव मूल्यों को चित्रित करता है जो शिवम् है, शुभ सन्देश सूचक हैं एवं सृजनात्मक हैं आदर्श भाव और कल्पना की ऊँचाईयों को ही संस्पर्श करने के लिए प्रयत्नरत रहता है। यह विचारधारा उच्चनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सौन्दर्यपरक प्रतिमानों को स्वीकार करके उन्हीं के अनुरूप जीवन और समाज को नये सांचे में ढालकर उनका रूप विधान परिवर्तन करने की प्रेरणा देती है और इस प्रकार इसका मूल स्वर नैतिक होता है।

यथार्थवाद एक साहित्यिक विचारधारा के रूप में पाश्चात्य चिन्तन की उपज है। सिद्धान्ततः मानव की सहज ज्ञान की शक्तियों के वातावरण को समझने तथा अध्ययन करने की क्रिया को ही यथार्थवाद का मूल स्वीकार किया जाता है। पाश्चात्य साहित्य में इसका विकास राजनैतिक, दार्शनिक विचारकों के सिद्धान्तों को ग्रहण करने के उपरान्त ही हुआ। यह विचारधारा आदर्शवाद की विरोधी है। यह साहित्य में यथातथ्य वर्णन करने को प्रश्रय देती है। आधुनिक युग में इस प्रवृत्ति के विकास की सम्भावनाएँ सामने आयीं और इसके ही अनेक रूप साहित्य में विकसित होने लगे जिसे अति यथार्थवाद तथा समाजवादी यथार्थवाद की संज्ञा दी गयी। डॉ० सुरेश सिन्हा के शब्दों में – "अतः यथार्थवाद वह साहित्यिक मिश्रण है जो चयन शक्ति एवं सृजनात्मकता से पाठकों की यथार्थ समझने की शक्ति को विकसित करता है। यह हमारी मानसिक उदात्तता की प्रेरणा का प्रतीक बनकर उभरता है और हमें काल्पनिकता की कृत्रिमता से हटा कर जीवन की सत्यता की ओर मोड़ता है। "यथार्थवाद व्यक्ति को समाज का अभिन्न अंग स्वीकार कर उसकी अखण्डता के प्रति आस्थावान है और इस प्रकार यह स्थूलता की ओर उन्मुख होता है। डॉ० प्रताप नारायण टण्डन ने यथार्थवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– सैद्धान्तिक रूप से इस विचारधारा को आदर्शवाद और नीतिवाद का विरोधी इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसकी मान्यताएँ आदर्शात्मक तथा नीतिपरक दृष्टिकोण की विरोधी हैं। इस विचारधारा के अनुसार आधुनिक युग में निजी तथा आदर्श के सिद्धान्त अव्यवहारिक तथा रूढ़िवादी हो गये हैं। इसलिए इसके समर्थक इनका विरोध करते हुए अचेतन की विविध सम्भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए उन्हीं की अभिव्यक्ति पर गौरव करते हैं। "किसी भी उपन्यास में यदि लेखक जीवन के सत्य का अंकन करने के साथ ही साथ मानव जीवन का समग्र रूपात्मक चित्र खींचने का इच्छुक है तो उसे यथार्थवाद अनुगमन नहीं करता वरन् जीवन में व्याप्त तथ्यों को खण्ड–खण्ड करके अपनी इच्छानुसार

यथार्थवाद सृजनशील मान्यता को प्रश्रय देता है। किसी भी उपन्यास में यदि एक ही विचारधारा का आधिक्य हो जाता है तो वह कृति उत्कृष्ट नहीं मानी जाती।

3.3. गोदान में आदर्श और यथार्थ

यथार्थ को प्रेमचन्द ने साहित्य की कसौटी स्वीकार किया है अनुभूति की यथार्थता और ईमानदारी पर भी पर्याप्त बल दिया है। उनका मन्तव्य है कि 'साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो। जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाईयां और अनुभूतियाँ व्यक्त की गयी हों।

प्रेमचन्द ने अपनी अन्तिम एवं सर्वोत्कृष्ट औपन्यासिक कृति "गोदान" में कृषकों की समस्याओं को यथार्थ की कठोर भूमि पर चित्रित किया है। इसमें वह आदर्शवाद के मोह से पूर्णरूपेण मुक्त जान पड़ते हैं। अब तक प्रेमचन्द ने यह अनुभव कर लिया है कि इन सब नीतियों से कृषकों की स्थिति में सुधार सम्भव नहीं है। होरी के चरित्र निर्माण में लेखक ने अपनी समस्त कला उंडेल दी है। वह जीवन भर शोषण के अमानवीय चक्र में पिसता रहा, कष्ट भोगता रहा, मर गया, पर जीवन में एक छोटी सी गाय रखने की इच्छा पूरी न कर सका। उसका परिवार नष्ट हो जाता है। जब वह जीवन यात्रा से प्रयाण करता है तब न तो उसकी पत्नी के पास गोदान करने के लिए पैसे हैं, न बछिया और न ही गाय। यह भारतीय कृषक की दारुण स्थिति का सूचक है। जीवन के इन सब कटु अनुभवों को देखकर ही लेखक ने कृषक की वास्तविक स्थिति चित्रित करके यह बताया कि – 'देखो यह है समाज की दशा।'

"गोदान" में होरी एवं धनिया का जीवनव्यापी संघर्ष भारतीय कृषक की करूण गाथा को सजीव करता है। होरी एवं धनिया के जीवन भर के संघर्ष एवं परिश्रम का अत्यन्त कारूणिक परिणाम मिलता है। वह जीवन भर परिश्रम करने के उपरान्त भी समृद्ध नहीं हो पाते और अन्त में कृषक मृत पड़ा हुआ है, उसकी पत्नी धनिया बीस आने पैसे की राशि गोदान के लिए सुरक्षित किये हुए हैं कोई धर्म के नाम पर, कोई न्याय के नाम पर, उसका शोषण करता है। जीवन भर लू, धूप एवं कठोर वर्षा में परिश्रम करने वाले कृषक को अन्ततोगत्वा मज़दूर बनाना पड़ता है।

लेखक ने इसमें यह अंकित किया है कि देखो यह है तुम्हारी समाज व्यवस्था जिसमें होरी जैसे कर्मठ किसान पिसने के लिए विवश हैं और फिर भी उन्हें सुख की उपलब्धि नहीं होती।

"गोदान" तक आते–आते प्रेमचन्द का दृष्टिकोण एकदम परिवर्तित हो गया था। उन्होंने यथार्थ जीवन की कविनाइयों एवं संघर्षों से जूझकर जो मान्यताएं प्रतिस्थापित की वह अब मिथ्या जान पड़ने लगीं। मानवता की विजय के प्रति उनका अन्तिम विश्वास अब खण्डित होने लगा। समस्याओं, कठिनाइयों से लोहा लेने वाले प्रेमचन्द स्वयं होरी के रूप में पिसते गये। जीवन संग्राम में हार होने पर भी होरी अपना विजय पर्व मनाता

रहा। होरी निरन्तर संघर्षरत रहा। इस कारण भारत का जितना वास्तविक चित्र इस कृति में अंकित हुआ है वैसा अन्य किसी उपन्यास में नहीं उपलब्ध होता । जीवन संघर्ष से निरन्तर हार मानते रहने के उपरान्त जब वह अपनी छोटी कन्या रूपा का विवाह निर्धनता के कारण रूपये कर लेकर प्रौढ़ आयु के विधुर से करता है तो उसके सारे जीवन सम्बन्धी विश्वास डिग जाते हैं। उस समय "उसका सिर ऊपर न उठ सका मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गड्ढे में गिर पड़ा है। और गिरता चला जाता है। आज तीस साल से जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है जो आता है उसके मुहँ पर थूक जाता है। वह चिल्ला–चिल्ला कर कह रहा है, 'भाईयो मैं दया का पात्र हूँ, मैंने नहीं जाना कि लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीरकर देखो इसमें कितना प्राण रह गया है। कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो कभी तूने विश्राम के दर्शन किये ? कभी तू छाँह में बैठा। उस पर यह अपमान। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था मानो टूक–टूक उड़ गया हो।"

गोदान आरम्भ से अन्त तक समस्त यथार्थवादी रचना है। किन्तु यह यथार्थवाद भी निरुद्देश्य, नग्न या प्रेरणाहीन यथार्थवाद नहीं है यह कल्पना–विहीन कोरा यथार्थवाद भी नहीं है। "गोदान" में जीवन की आदर्श प्रेरणाएँ बराबर पाई जाती हैं। अत गोदान को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचना कहा जा सकता है।

गोदान पूर्ण रूप से यथार्थवादी है। इस उपन्यास में होरी के जीवन की विडम्बना दिखाना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य है। होरी एक किसान है– "भारतीय किसान ! गाय की लालसा भारतीय किसान की स्वाभाविक लालसा है। वह गाय को माता कहता है। "गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्शन हो जाये तो क्या कहना।" जीवन की यही विडम्बना है। वह आजीवन अपनी यह छोटी सी साध ही पूरी नहीं कर पाता। मरते–मरते उसी होरी से, जो जीवन में गाय को अपने द्वार पर नहीं बाँध सका –अपनी लालसा को मन में ही लेकर मर गया, गोदान कराने की बात कही जाती है। मृत्यु की छाया से ग्रस्त होरी की अधूरी साधना का चित्र प्रेमचन्द ने बहुत सुन्दरता से प्रस्तुत किया है। सारी उमर जीवन से संघर्ष करता हुआ जो बेटे और नन्हे से पोते के लिए एक गाय भी नहीं जुटा सका, उसी की अवचेतना धनिया को न पहचानकर कहती है – तुम आ गये गोबर, मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है देखो। मृत्यु का यह कितना मनोवैज्ञानिक चित्र है। "धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते ही देखा था, आँधी की तरह आते भी देखा था।" जब होरी की चेतना लोटी और धनिया को पहचाना, तो क्षीण स्वर में बोला–मेरा कहा सुना माफ करना धनिया अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी।"

जीवन की कितनी बड़ी ट्रेजेड़ी है ! कई "आवाजें आई, हाँ, गो–दान करा दो, अब यही समय है।" और धनिया ने आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने लाकर पति के ठण्डे हाथ में रख, सामने खड़े दातादीन को दे दिये और कहा– "महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे है, यही इनका गोदान है।" और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

यह है 'गोदान' की अन्तिम झाँकी। आरम्भ होता है लालसा से। मध्य है लालसा। पूर्ति का असफल और करूण संघर्ष। यह लालसा भी कितनी तुच्छ है। किसी बड़े महल बनाने की, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताने की अथवा पूँजीपति बनने की लालसा नहीं है। एक गरीब किसान की एक स्वाभाविक लालसा है, जिसके परिवार को घी–दूध अंजन लगाने को नहीं मिलता, दवा–दारू के अभाव में जिसके तीन–तीन बच्चे जीवन की आँख खोलते ही मृत्यु के अंक में चले जाते हैं। होरी अपने मालिक की चिरौरी करने चला है, क्योंकि इसी खुशामद के प्रसाद से 'अब तक उसकी जान बची हुई है। जब दूसरों के पावों तले गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।' जाते समय रास्ते में पगडण्डी के दोनों ओर हरियाली देखकर उसने मन में कहा – भगवान कहीं गौं से बरखा कर दे और डांडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। ...... उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार–पांच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस–तरसकर रह जाता है। .... साल भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाय। बछुवे भी अच्छे बैल निकलेगें।.... फिर, गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्शन हो जायँ, तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आयेगा।

और सारी कथा गवाह है कि यह साध कभी पूरी नही होती। पूरा करने का एक बार का प्रयत्न हजार मुसीबतें दे गया। ज़मींदार, उसका कारिन्दा, पटवारी, पुलिस, महाजन, मिल का मालिक आदि न जाने कितने शोषक उसे उबरने ही नहीं देते। जिसे दो जून पेट–भर खाने को भी न मिले, जिसकी पूरी फसल खेत में ही बंट जाय, घर में एक दाना भी आकर न पड़े, जो कोड़ी–कोड़ी के लिए दूसरों का मोहताज हो, वह अपनी गाय की साध कैसे पूरी करता ! अन्त में यही लालसा लेकर बल्कि कहना चाहिए इसी लालसा की पूर्ति के लिए होरी अपनी जान दे देता है।

गाय की लालसा वास्तव में एक प्रतीक है। एक ओर तो यह कृषक की स्वाभाविक लालसा है, दूसरी ओर लेखक का उद्देश्य इसमें यह बताना भी है कि अनेक संघर्षों के बाद इतनी तुच्छ लालसा भी जिस किसान की अधूरी रह जाती है, उसके जीवन की इससे करुण ट्रेजेडी और क्या हो सकती है। प्रेमचन्द जी ने स्पष्ट कहा है– हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या ज़मीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हे से हृदय में कैसे समातीं। 'इस लालसा को पूरा करने का विचार गोबर के मन में भी आता है। जब गोबर झुनिया को घर छोड़कर शहर की ओर जाता है तो यह संकल्प करता है कि शहर में खूब कमायेगा, मजदूरी करेगा। ''सबसे पहले वह एक पछाई गाय लायेगा, जो चार–पांच सेर दूध देगी और दादा (होरी) से कहेगा, तुम गऊ माता की सेवा करो। इससे तुम्हारा लोक भी बनेगा और परलोक भी।'' इस प्रकार गोबर भी पिता की गाय की लालसा पूरी करने की सोचता है, पर कर नहीं पाता। अन्त में ठेकेदार की मजदूरी करते हुए भी होरी अपने पोते मगंल के लिए गाय लेने की सोचता है। रूपा अपनी ससुराल में पहुँचकर पूर्व–स्मृति में मग्न है – उसके दादा की यह लालसा (गाय की) कभी

पूरी न हुई। जिस दिन वह गाय आयी थी, उन्हें कितना उछाला हुआ था– तब से फिर उन्हें इतनी कमाई ही न हुई कि कोई दूसरी गाय लाते, पर वह जानती थी, आज भी वह लालसा होरी के मन में उतनी ही सजग है। अतः गाय की लालसा और उसकी करूण अपूर्ति उपन्यास की मूल संवेदना बनी हुई है।

'गोदान' नामकरण से ही कितना यथार्थ विवेचन है यह। लेखक का उद्देश्य, मुख्य–कथा का मर्म और उपन्यास की मूल संवेदना स्पष्ट हो जाती है। यह नाम अत्यन्त उपयुक्त एवं सार्थक है जैसा कि पहले कहा जा चुका है, "गोदान" नामकरण व्यंजनापूर्ण भी है। मरते हुए होरी से गोदान की मांग एक बड़ा सामाजिक व्यंग्य है। फिर यह दान भी दातादीन पण्डित लेता है जो सारी उमर होरी का शोषण करता रहा। धनिया के घर में केवल बीस आने थे और वह उन्हें ही दातादीन को देकर होरी का गोदान करा देती है।

"गोदान" में क्या घटनाओं की दृष्टि से, क्या चरित्र और क्या उद्देश्य की दृष्टि से सर्वत्र यथार्थवादी प्रवृत्ति पाई जाती है। प्रेमचन्द ने समाज की पंकिलता के यथार्थ चित्रण में कोई दुराव छिपाव की नीति नही अपनाई। नोहरी का प्रसंग, मालती–खन्ना का रोमांस, धर्म का ढकोसला, अनेक प्रकार का शोषण आदि सब प्रसंग और घटनायें यथार्थवादी यथातथ्य शैली में प्रस्तुत की गई हैं। किन्तु प्रेमचन्द अपनी प्रतिक्रिया सर्वत्र प्रकट करते जाते हैं। इन सब बुराइयों के प्रति भर्त्सना प्रकट करते हुए उन्होंने पाठक की घृणा को ही जगाया है। इस प्रकार किसी भी कुत्सित घटना से पाठक का मानसिक स्खलन नहीं होता । सिलिया और मथुरा का प्रसंग लीजिए सिलिया सोना को अपनी खुशखबरी सुनाने, रात के समय उनके घर जाती हैं। अँधेरे में, घर के आंगन, में, मथुरा सिलिया से मिलता है। उसकी मानवीय दुर्बलता का प्रेमचन्द ने बहुत ही यथार्थ वर्णन किया है। नग्न यथार्थवादी लेखक होता तो यहाँ अपना संयम खो बैठता किन्तु प्रेमचन्द ने मानव–मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण करके भी यथार्थ के दंश को बचा लिया, पंकिलता में नहीं बहे और यही बचाव प्रेमचन्द के यथार्थवाद को महान बनाता है। प्रेमचन्द पाठक का मानसिक पतन नहीं चाहते। यहीं प्रेमचन्द की आदर्शवादी दृष्टि स्पष्ट हो जाती है। इसे आदर्शवादी दृष्टि भी इसीलिए कहा जाता है कि पाठक इस यथार्थ से भी स्वस्थ प्रेरणा ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रेमचन्द का यथार्थवाद कहीं भी नग्न, अरूचिकर अश्लील या अभद्र नहीं बन पाया। होरी किसान की कहानी पूर्णतया यथार्थ करूण–कहानी है। प्रेमचन्द उसे लुटते–पिटते–मरते छोड़ देते हैं, किसी सुधारक नेता की कल्पना नहीं करते। वह अपनी जीवन–डोंगी को स्वयं खेता है। हम पहले कह चुके हैं कि उद्देश्य की दृष्टि से प्रेमचन्द "गोदान" से सर्वथा यथार्थवादी रहे हैं। अपने युग की वास्तविक स्थिति का ही उन्होंने चित्रण किया है वह चाहते तो गोबर के "क्रान्तिकारी रूप की कल्पना आसानी से कर सकते थे, उन्होंने इसका कुछ आभास भी देना चाहा था, पर एक वस्तुवादी कलाकार के नाते उन्होंने ईमानदारी से इस कल्पना को भी यथार्थ से आगे नहीं बढ़ाया। अतः घटनाओं और प्रसंगों की दृष्टि से ही नहीं, अपितु उद्देश्य की दृष्टि से भी प्रेमचन्द यहाँ पिछला आदर्शवादी दृष्टिकोण बिल्कुल छोड़ चुके हैं।

पात्रों के चरित्र–चित्रण की दृष्टि से भी यह तथ्य सामने आता है। प्रेमचन्द के चरित्र–चित्रण पर विचार करते हुए हम स्पष्ट कह सकते हैं कि प्रेमचन्द की चरित्र–सृष्टि सर्वथा यथार्थ है। उन्होंने न तो किसी

देवता की कल्पना की है, न दानव की। सभी पात्र यथार्थ मानव हैं– अपनी दुर्बलताओं और सबलताओं, अपने "कु" और "सु" से मण्डित इसी धरती के यथार्थ मानव। हम पूछते हैं क्या होरी जैसे दरिद्र किसान को नायक बना कर कोई आदर्शवादी लेखक अपनी रचना कर सकता है। होरी का नायकत्व प्राचीन काल से चली आ रही महान् (Sublime) की भावना के सर्वथा विपरीत नहीं तो और क्या है ? प्रेमचन्द ने सभी पात्रों का यथार्थ चरित्र–चित्रण किया है। मातादीन, मालती आदि के परिवर्तन में भी अत्यन्त यथार्थता है। यद्यपि प्रेमचन्द की चरित्र–सृष्टि तटस्थता पूर्ण शैली में निर्मित हुई है, प्रेमचन्द ने किसी पात्र के प्रति पक्षपात नहीं किया, अपने आदर्श आदि से आग्रह से किसी को मनमाने नहीं चलाया, तथापि यह चरित्र–चित्रण ऐसा है, जिससे अच्छे पात्रों के चरित्रों से प्रेरणा मिलती है और बुरों की बुराईयों से घृणा जागती है। यही प्रेमचन्द के यथार्थ चरित्र–चित्रण का बल है। यही उनकी आदर्शवादिता है।

3.4. सारांश

अतः गोदान में प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं, स्वस्थ प्रेरणापूर्ण यथार्थवादी हैं। उनकी औपन्यासिक चेतना के यथार्थोन्मुख आदर्शवादी से आदर्शोन्मुख यथार्थवादी में परिणति का स्पष्ट प्रमाण "गोदान" है।

3.5 कठिन शब्द

1. दुर्बलता	6. यथार्थ
2. सबलता	7. पंकिलता
3. आग्रह	8. व्यजनापूर्ण
4. तटस्थता	9. संवेदना
5. शैली	10. लालसा

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'गोदान' में अभिव्यक्त आदर्शवाद पर प्रकाश डालें।

2. 'गोदान' में चित्रित यथार्थवाद पर प्रकाश डालें।

3. 'गोदान' उपन्यास में आदर्श और यथार्थ का चित्रण हुआ है – इस कथन से आप कहा तक सहमत हैं स्पष्ट कीजिए।

3.7 पठनीय पुस्तकें

- गोदान – प्रेमचन्द
- कथाकार प्रेमचन्द – जाफर रज़ा।
- प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय
- गोदान का महत्व – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
- प्रेमचन्द – सं– सत्येंद्र
- प्रेमचन्द के साहित्य में हाशिए का समाज– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – शुभ्रा सिंह

---- 0 ----

'गोदान' के प्रमुख पात्र : होरी, धनिया, गोबर, मालती

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3. 'गोदान' के प्रमुख पात्र

- 4.3.1 होरी
- 4.3.2 गोबर
- 4.3.3 धनिया
- 4.3.4 मालती

4.4 कठिन शब्द

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6. पठनीय पुस्तकें

4.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप अवगत होंगे–

– होरी के माध्यम से भारतीय किसान युग–युग से सामन्तवाद और जमींदारी पद्वति का शिकार बना चला जा रहा है।

– किसान का जीवन सम्मान और आदर के अभाव का जीवन रहा है।

4.2 प्रस्तावना

उपन्यासों में पात्रों एवं चरित्र चित्रण का अत्यधिक महत्व होता है। वे हमारे जीवन का वास्तविक यथार्थ रूप प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में उपन्यास रचना किसी निश्चित उद्देश्य को समाने रखकर होती है केवल मनोरंजन या कल्पनालोक का निर्माण करना ही उपन्यासकार का दायित्व नहीं है। आज उसका दायित्व सत्य का अन्वेषण करना, मूल्य निर्माण और दिशा निर्देशन का भी है। अपने अनुभवों को भी पाठकों तक पहुंचाना उसका उद्देश्य होता है। इन पात्रों का वास्तविक होना आवश्यक है क्योंकि तभी उपन्यासकार का उद्देश्य भी सफल होता है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में पात्रों का चरित्र–चित्रण, उनकी वास्तविकता, पात्रों की संख्या और पात्रों की व्यक्तिगत या सामाजिक विशेषताओं को मुखरित किया है और यह बताने का प्रयास किया है कि यह पात्र अपने समाज और वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही कारण है कि प्रेमचन्द के उपन्यास गोदान के पात्रों में वास्तविकता और जीवन के प्रति सच्चाई है। संघर्ष के प्रति ईमानदारी है और सबसे बड़ी बात यर्थाथता है।

4.3 'गोदान' के प्रमुख पात्र

4.3.1 होरी

चरित्र की वह मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ जिनसे वह भारतीय किसान का प्रतीक होता है : उपन्यास का नायक होरी कृषक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। यह प्रेमचन्द की अमर चरित्र सृष्टि है। उसका चरित्र–चित्रण प्रेमचन्द की अत्यन्त सफल श्रेष्ठ कला का परिचायक है। भारतीय साहित्य में सम्भवतः पहली बार एक दरिद्र व्यक्ति का नायक के रूप में इतना सजीव चित्रण हुआ। यद्यपि उसके चरित्र की व्यक्तिगत विशिष्टता भी कुछ बातों में दिखाई देती है, परन्तु अधिकांशतः वह कृषक वर्ग के प्रतिनिधि–रूप में चित्रित किया गया है। उसकी सम्पूर्ण मनोभूमि कृषक की मनोभूमि है। वह जो कुछ सोचता–विचारता, करता धरता है, उस सब के मूल में उसके कृषक–संस्कार ही दिखाई देते हैं। इसी कारण 'गोदान' कृषक–संस्कृति की लोक–परम्परा का प्रतीक उपन्यास बन गया है।

आरम्भिक पृष्ठों में कोई हमें उसके चिर–पुरातन कृषक रूप का दिग्दर्शन हो जाता है। "होरी कदम बढ़ाये चला जाता है। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा–भगवान कहीं भी से बरखा दे और डाँडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा।...उसकी खूब सेवा करेगा....गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्शन हो जायें, तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी कब वह शुभ दिन आयेगा!" गाय की लालसा भारतीय किसान की जन्म संस्कारगत लालसा है। गऊ को वह माता मानता है। उसके बछड़े भी उसका अमूल्य धन होते हैं। और अपनी लहलहाती खेती को देखकर प्रसन्न होना और भगवान से उसकी सही सलामत वृद्धि और पूर्ति की कामना–प्रार्थना कृषक की शाश्वत सार्वभौमिक प्रवृत्ति है।

भारतीय किसान युग–युग से सामन्तवाद और ज़मींदारी पद्धति का शिकार बना चला आ रहा है। अपनी दयनीय दशा को वह भगवान की देन समझता है। वह भाग्यवादी बन गया है। होरी के मानसिक संस्कार इसी ढाँचे में ढले हैं। अपनी दयनीय दशा का उसे दुःख तो है, पर इसे भगवान की मर्जी या भाग्य की बात समझकर वह असन्तुष्ट और विद्रोही नहीं होता, अपितु अपने मालिकों की खुशामद और उनका कृपा–पात्र बनने में ही अपना भला समझता है। होरी अपने ज़मींदार से मिलने जाता है। धनिया के विरोध करने पर वह कहता है–"इसी मिलते–जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। जब दूसरों के पाँव तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पावों को सहलाने में ही कुसल है।" जब गोबर अपने पिता की खुशामदी मनोवृत्ति की आलोचना करता है तो होरी अपने बेटे के विद्रोह भाव को दबाता हुआ कहता है–"सलामी करने न जायें, तो रहे कहाँ ? भगवान ने गुलाम बना दिया है तो अपना क्या बस है।" किसान की नई पीढ़ी में विद्रोह और असन्तोष तीव्र है। असन्तोष होरी की पुरानी पीढ़ी में भी व्याप्त है, पर वह अपनी भलाई विद्रोह में नहीं, मित्रता में, समझता है, अकड़ने से निबाह नहीं होगा। गोबर कहता है भगवान ने तो सब को बराबर ही बनाया है। पर होरी कहता है–"यह बात नहीं है बेटा, छोटे बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे, उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगे क्या ?" इस प्रकार भगवान की लीला में होरी का अटल विश्वास है जन्म–जन्मान्तरवाद, कर्मवाद और भाग्यवाद पर उसकी निष्ठा है। ये समूचे कृषक वर्ग का ही विश्वास है।

अपने छोटे–मोटे स्वार्थों को कृषक हर समय सामने रखता है। वह उधार को मुफ़्त समझता है। होरी जानता था, घर में रुपये नहीं हैं, अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है, लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता तो तकाज़े, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती उसने होरी को भोला से गाय उधार लेने के लिए प्रोत्साहित किया। 'उसे अभी चार सौ रुपये देने थे लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ़्त समझता था।' होरी भोला को सगाई दिलाने का झांसा देता है। उसकी प्रशंसा करता है। वह चालाकी से उसकी गाय हथियाना चाहता है। यह सब उसकी नीति में बुराई न थी। वह गाय की लालसा पूरी करना चाहता है। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई तो साल–दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई तो होरी का क्या बिगड़ता है ? यह तो होगा कि भोला बार–बार तगादा करने आयेगा बिगड़ेगा गालियाँ देगा लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल न था। अब भी लेन–देन में उसके लिये लिखा पढी होने और न होने में कोई अन्तर न था।...ईश्वर का रुद्र सदा उसके सामने रहता था। पर यह छल उसकी नीति में न था। यह केवल स्वार्थ सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन–रात करता रहता था। घर में दो–चार रूपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रूई में कुछ बिनौले भी देना उसकी नीति में जायज़ था। इस प्रकार का स्वार्थ गरीब किसान की रग–रग में समाया रहता है। अपने

भाईयों से होरी दो–चार रुपयों के लोभ से बेईमानी करता है। वह दमड़ी बंसोर को सांझे के बाँस बेचने में भाईयों से धोखा करना चाहता है। ठकुर–सुहाती उसकी प्रवृत्ति बन गई है। होरी अपना स्वार्थ गांठने के लिए दुलारी–सहुआइन, नोहरी आदि की ठकुर–सुहाती करता है।

परन्तु वह चाहे जितना स्वार्थी हो, अपने छोटे–मोटे लोभ–लाभ के लिए वह भले ही थोड़ा सा छल–कपट कर लेता हो उसका मन कुत्सित नहीं। किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव–ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक–एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाये, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान। होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था। 'जब भोला भूसे की कमी के संकट से गाय बेचने की विवशता जाहिर करता है तो उसकी संकट कथा सुनते ही होरी की मनोवृत्ति बदल गई। वह गाय लेने से जवाब दे देता है। संकट की चीज़ लेना उसके लिए पाप है। वह साफ़ कहता है–"भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, और मैं लूँगा। मेरे हाथ न कट जायँगे ?...किसी भाई का नीलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वही इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।" जिस भाई से वह दो रुपये की बेईमानी करना चाहता है उसके लिए जान भी दे सकता है, खून पसीना एक कर सकता है। हीरा के भाग जाने पर वह उसके खेतों में खुद काम करता है, उसकी गृहस्थी का पूरा ध्यान रखता है। हीरा के वापस लौट आने पर वह उसे गले लगा लेता है, उसके अपराध को क्षमा कर देता है। वह निराश्रिता सिलिया को अपने पास आश्रय देता है। इस प्रकार किसान की क्षुद्र दुर्बलताएँ तथा उच्च संस्कारों की मानवीय सबलताएँ सब होरी में पाई जाती हैं।

किसान का जीवन सम्मान और आदर के अभाव का जीवन रहा है। इसी से वह थोड़ा–सा सम्मान पाकर ही फूल जाता है। वह दूसरों से अपने को विशिष्ट समझ कर प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब होरी रायसाहब को मिलने जाता है तो 'दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम–राम करते और सम्मान–भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे,...उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान–लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर देती थी। धनुष–यज्ञ में वह राजा जनक का माली बना फूला नहीं समाता। जब गाय घर आती है तो वह उसे बाहर बाँधना चाहता है ताकि द्वार पर ऐसी बढ़िया गाय बँधी देखकर लोग कहें कि यह होरी महत्तो का घर है। इस गर्व–भावना से वह दातादीन के आगे खिल्ली उड़ाता है कि गाय मैंने भोला से नकद ली है।

किसान–धर्म–भीरू और समाज बिरादरी–भीरू भी होता है। धर्म के ब्राह्मणी रुप पर उसका विश्वास होता है। जाति–पाति और छुआछूत को वह ग्रहण किये रखता है। होरी इसी परम्परागत संस्कारों के आश्रय ब्राह्मण दातादीन को विशिष्ट मानता है। उसके रुपये वह कैसे रख सकता है ? ईश्वर का रूद्र रूप उसे हरदम डराता रहता है। जब गोबर दातादीन को एक रुपया सैंकड़ा ब्याज़ के हिसाब से रुपये देना चाहता

है तो होरी इसे नीति के विरुद्ध समझ कर कहता है–"हमे नीति हाथ से नहीं छोड़नी चाहिए। जिस दर पर रुपया लिया है वही देना चाहिए और फिर ब्राह्मण के रुपये !" जब सिलिया का पिता हरखू और भाई मातादीन को पकड़ कर उसके मुँह मे हड्डी छुआते हैं तो ब्राह्मण के प्रति इस अन्याय को न सहकर कहता है, 'अच्छा, अब बहुत हुआ हरखू। भला चाहते हो तो यहाँ से चले जाओ।'

पंचों और बिरादरी पर उसका अडिग विश्वास होता है। जब झुनिया को रख लेने पर बिरादरी में हो–हल्ला मचता है और पंचायत होरी पर डाँड लगा देता है तो होरी पंचों का फैसला स्वीकार करता है–'पंच में परमेश्वर रहते हैं। उनका जो न्याय है, वह सिर–आँखों पर। अगर भगवान की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़कर भाग जायें, तो हमारा क्या बस।' धनिया इस अन्याय का विरोध करती हुई कहती है–"मैं न एक दाना अनाज दूँगी, न एक कोड़ी डाँड।...हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायेगी।" तब होरी उसे रोकता हुआ कहता है–"धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूँ, चुप रह। हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डाँड लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर।...आज मर जायें, तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी।"

यह दरिद्र किसान भी अपनी एक मर्यादा मानता है। उस मर्यादा का पालन उसके लिए बहुत आवश्यक है। अपने बाप–दादा के दिये मकान–खेतों से उसका मोह होता है। वह खेती करना ही अपनी मर्यादा समझता है, मजूरी में उसे चाहे जितना अधिक मिले पर वह अपनी मर्यादा छोड़ना बुरा समझता है। होरी गोबर से कहता है–हमीं को खेती से क्या मिलता है ? एक आने नफरी की मजूरी भी जो नही पड़ती। जो दस रूपये महीने का भी नौकर है, वह भी हम से अच्छा खाता–पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें, तो और क्या करें ?....फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। "वह कुल मर्यादा का निर्वाह करना धर्म मानता है। अपनी लड़की सोना के विवाह में दहेज देना उसकी कुल मर्यादा है। चाहे उधार लेकर ही दहेज देना पड़े, पर कुल–मर्यादा कैसे छोड़े। बाप दादों की जायदाद जाने का उसे अपार दुःख होता है वह सोचता है, एक वे सपूत होते हैं जो बाप–दादों की जायदाद की रक्षा और वृद्धि करते हैं, एक वह अयोग्य और अभागा है कि उसे बचा भी नहीं पाता। मकान रहन रखने का उसे दुःख है। तीन बीघा ज़मीन ही पूर्वजों की निशानी बची है, उसकी भी बेदखली का दावा हो जाता है। वह इस निशानी को बचाने के लिए रूपा की शादी अधेड़ रामसेवक से कर देता है। वह सोचता है कन्या की ऐसी बेमेल शादी भी उसकी कुल–मर्यादा के विरुद्ध है, पर क्या करें, खेतों के निकलने में भी तो मर्यादा बिगड़ती है। दारोगा द्वारा तलाशी होने में भी उसकी कुल मर्यादा जाती है।

यह किसान होरी धर्म–भीरू है, बिरादरी से डरता है, ईश्वर से डरता है, राजा से डरता है, सरकार–हाकिमों से भय खाता है। पुलिस–दारोगा से काँपता है, तलाशी को हव्वा समझता है, परन्तु वैसे साहसी है। समाज की दूषित व्यवस्था से दबा होने पर भी प्रकृति से कायर नहीं है। जब धनुष–यज्ञ के प्रसंग पर मेहता पठान बनकर आता है, तो जहाँ सब शहरी 'जवाँमर्द' भयभीत हो जाते हैं, वहाँ होरी पठान से भय

नहीं खाता, वह उसे पछाड़ देता है। 'होरी गंवार था, लाल पगड़ी देखकर उसके प्राण निकल जाते थे, लेकिन मस्त साँड पर लाठी लेकर पिल पड़ता था। वह कायर न था, मरना और मारना जानता था, मगर पुलिस के हथकण्डों के सामने उसकी एक न चलती थी। बँधे–बँधे कौन फिरे, रिश्वत के रुपये कहाँ से लाये ? बाल बच्चों को किस पर छोड़े। 'झगड़ा करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध था। मगर जब मालिक ललकारते हैं तो फिर किसका डर ? तब तो वह मौत के मुँह में भी कूद सकता है। उसने झपटकर खान की कमर पकड़ी और ऐसा अड़ंगा मारा कि खान चारों खाने चित ज़मीन पर आ रहे...।'

होरी का सारा जीवन पेट की रोटियों की चिन्ता में बीतता है। वह लुटता है, मालिक–महाजनों की झिड़कियाँ सहता है, घर में कभी बेटे की व्यंग्य भरी बातें सुनता है, कभी पत्नी की फटकार पाता है, अपने भाईयों की जली–कटी सुनता है, पर सब कुछ सहते हुए भी परिश्रम पूर्वक कर्म करना उसकी सहज प्रवृत्ति बन गई है। इतनी कर्मशीलता कृषक की संस्कारगत प्रवृत्ति है, मरना–खपना उसके भाग्य में ही बदा है। होरी मातादीन से कहता भी है : किसान और किसान के बैल इनको जमराज ही पिंसिन दे, तो मिले। इतनी जान खपाने पर भी वह अपनी पत्नी, पुत्र पतोहू, पोत्र किसी को सुखी नहीं कर सका। सुख का एक क्षण भी उसकी गृहस्थी में नहीं आया। यही उसके जीवन की ट्रेजेडी अन्त में लड़की रूपा के बेमेल ब्याह की चोट, बेटी बेचने का दुःख सबसे घातक सिद्ध होता है। इस चोट ने उसे अपनी शक्ति से बाहर मजूरी का परिश्रम करने को उत्तेजित किया, जो उसके प्राण लेकर ही रहा।

इस प्रकार होरी एक सीधा–सरल, भोला–भाला, साफ हृदय का किसान है। उसके छोटे से हृदय में मानव–प्रेम की अथाह भावधारा है। वात्सल्य से भरा उसका हृदय अपनी सन्तान का ही नही, झुनिया, सिलिया जैसी निराश्रिताओं के लिए भी उदार बन जाता है। अपने भाईयों पर वह अब भी जान देता है। हीरा के मुँह से अपनी आलोचना और बुराई सुनकर वह झगड़ने नहीं जाता, अपितु आत्म–पीड़ा का अनुभव करता हुआ गाय लौटाने को तैयार हो जाता है। उसकी कृषक–प्रकृति झगड़े से दूर भागती है। चार बातें सुनकर भी चुप रह जाना ही उसके सरल स्वभाव का नियम है। अपनी पत्नी से खीझते–झगड़ते रहने पर भी वह उसके अटूट प्रेम–बन्धन में बँधा हुआ है। वह एक आदर्श ग्रामीण पति है।

ये सब चारित्रिक विशेषताएँ होने के साथ–साथ होरी में कुछ निजी व्यक्तिगत विशेषताएँ उसका चरित्र है। मुख्यतः उसकी अतिशय उदार भावना, पेट में बात न पचा पाने तथा भोला, धनिया, दुलारी आदि सब को अपने पक्ष में कर लेने की व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताएँ उसको सजीव रूप प्रदान करती हैं।

4.3.2. गोबर

होरी का बेटा गोबर नई पीढ़ी का युवक है। विषम आर्थिक दशा के कारण असन्तोष और विद्रोह उसकी प्रकृति बन चुका है। वह 'सांवला, लम्बा, इकहरा युवक है।' असन्तोष और विद्रोह छाया रहता था। अपने पिता से उसे चिढ़ है। वह स्पष्ट कहता है–"यह तुम रोज–रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते

हो ? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियां सुनाता है, बेगार देना ही पड़ती है, नज़र–नज़राना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो ?"

वर्ग चेतना उसमें बहुत बढ़ी चढ़ी है उस के अनुसार यह छोटे–बड़े की विषमता मनुष्य ने ही उत्पन्न की है, भगवान ने तो सबको बराबर ही बनाया। कर्मवाद या पूर्वजन्म की बातों को भी वह दिल बहलाने की बातें मानता है। जिसके हाथ में लाठी है, वही गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है। "बड़े लोग दान धर्म–भगवद् भजन आदि गरीबों के सिर पर ही करते हैं, न करे तो पाप का धन कैसे पचे ?"

वह होरी के धर्मात्मापन पर व्यंग्य करता है। भोला को मुफ्त में भूसा देना उसे अच्छा नहीं लगता। जब होरी बताता है कि भोला गाय दे रहा था, मैंने संकट में पड़े आदमी की गाय लेना अच्छा न समझा, तो वह कहता है–"तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गति कर रहा है। साफ–साफ तो बात है। अस्सी रूपये की गाय है, हमसे बीस रुपये का भूसा ले और गाय हमें दे। साठ रुपये रह जायेंगे, वह हम धीरे–धीरे दे देंगे।"

गोबर अन्याय को सहन नहीं कर सकता। शहर में रह लेने पर उसका विद्रोह सक्रिय हो जाता है। वह दातादीन को एक रूपये सैंकड़े के हिसाब से ही ब्याज देना चाहता है। वह होरी को साफ कहता है किसी को एक पैसा मत दो, सब महाजनों से एक रुपया सैंकड़ा ब्याज कराना होगा। नोखेराम की बेईमानी पर वह उसे ऐसा फटकारता है कि नोखेराम देखता रह जाता है। वह सब शोषकों की खबर लेता है। सारे गाँव के युवक उसे नेता बना लेते हैं। होली के दिन वह अपने द्वार पर मण्डली जमाता है। रात–भर शोषक महाजनों और ग्राम स्तम्भों की नकलें होती हैं। वह उन पंचों पर दावा करना चाहता है, जिन्होंने उस पर डाँड लगाया था। वह सबके सामने अपनी हेकड़ी जमाता है। वह अधिक दिन रहे तो इन शोषकों का मिजाज ठीक कर दे। उसकी विद्रोही प्रकृति मजदूर संघर्ष में भी पीछे नहीं रहती। झुनिया के मना करने पर भी वह आग में कूद पड़ता है और बुरी तरह घायल होता है।

आरम्भ में वह एक अल्हड़ युवक दिखाई देता है। प्रेम और पुरुष–स्त्री के सम्बन्धों में वह झुनिया से पीछे ही था। "गाँव में जितनी युवतियाँ थीं, वह या तो उसकी बहनें थीं या भाभियाँ। भाभियां अलबत्ता कभी कभी उससे ठिठोली किया करती थीं, पर वह केवल सरल विनोद होता था। झुनिया से बढ़ावा पाते ही उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोय हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा। जब झुनिया उसे उत्तर में कहती है कि दस द्वारों जाने वाले भिक्षुओं को मैं नहीं मानती। मन्दबुद्धि गोबर उसका आशय नहीं समझ पाता है। "झुनिया ने भी सदय भाव से उसकी ओर देखा, कितना भोला है कुछ समझता ही नहीं।" जब झुनिया 'सर्वस्व देने' की बात कहती है तो वह कहने लगता है–"मेरे पास क्या है झुनिया ?"

परन्तु एक बार यौवन जाग जाने पर वह उसके नशे में डूब जाता है। झुनिया को वह जब अपने साथ ले जाता है तो ताड़ी पीने लगता है, अपनी यौनक्षुधा को तृप्त करने के लिए वह वक्त–बेवक्त झुनिया को तंग करता है। वह आधी रात बीते घर आने लगता है। गर्भ–भार से दबी, दुखी झुनिया की वह उपेक्षा

करने लगता है। यहाँ तक कि वह झुनिया के प्रसव के प्रति बेपरवाही करता है।

वह स्वभाव का उद्दण्डी है। अपने अभिमान और उद्दण्डता में वह इतना आगे बढ़ जाता है कि अपने माता–पिता को भी जली–कटी सुनाने लगता है। वह यहाँ तक कहने से भी नहीं झिझकता कि माँ–बाप भी पैसे के मतलबी हैं। मैं कहाँ–कहाँ तक तुम्हारी करनी भुगतूँ, मेरे भी तो बाल–बच्चे हैं। उनके मुख से इतनी बढ़ी–चढ़ी बातें कहलवाकर प्रेमचन्द जी ने कुछ अति कर दी है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी संगत–सा नहीं लगता। जो गोबर शहर जाते हुए रास्ते में यह सोचता जाता था कि वह शहर में खूब मेहनत करेगा, रुपये बचायेगा और सबसे पहले एक पछाई गाय लायेगा और दादा से कहेगा कि बस गाय माता की सेवा करो ताकि तुम्हारा यह लोक और परलोक दोनों सुधरे, जो झुनिया को घर में रख लेने पर माता–पिता की कृतज्ञता और सम्मान–भावना प्रकट करता है, वह बाद में माता–पिता से इतनी बुराई से पेश आये, यह कुछ संगत–सा नहीं लगता। फिर भी उसका स्वभाव उद्दण्डता से ओत–प्रोत है इसमें सन्देह नहीं। हो सकता है कि पैसे की गर्मी ने उसे अधिक अभिमानी बना दिया हो। चार पैसे कमाकर वह एक तरह से महाजन बन ही गया था।

चोट लगने के बाद जब झुनिया उसकी खूब सेवा–सुश्रुषा करती है, तब अच्छा होने पर उसकी मानवता जाग उठती है। अब वह झुनिया के प्रति अपने अत्याचारों से पछताता है। उससे क्षमा–याचना करता है। रूपा के विवाह में जब वह दोबारा घर आता है तो अपने माता–पिता के प्रति उसका अत्यन्त विनम्र व्यवहार उसके स्वभाव के परिवर्तन का परिचायक है। अब उसमें गम्भीरता आ जाती है। वह सोचने विचारने लग गया है। जब होरी रूपा के विवाह के अपने अपराध पर उसके सामने फूट पड़ता है तो वह पिता को सांत्वना ही देता है और उनका कोई दोष नहीं मानता। "जिसे पेट की रोटियाँ ही मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और सम्मान सब ढोंग है।" वह अब अपनी जिम्मेदारी समझने लगा है। वह सब महाजनों की किस्तें कराकर स्वयं अदा करने की बात चलाता है। उसने अब समझ लिया है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पानी होगी। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आयेगी। और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी है। अब उसमें वह पहले की उद्दण्डता और गरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। होरी को अब वह कोई काम करते देखता है, तो उसे हटाकर खुद करने लगता है, जैसे पिछले दुर्व्यवहार का प्रायश्चित करना चाहता हो। कहता है, दादा अब कोई चिन्ता मत करो, सारा भार मुझ पर छोड़ दो, मैं अब हर महीने खर्च भेजूंगा, इतने दिन तो मरते–खपते रहे, कुछ दिन तो आराम कर लो, मुझे धिक्कार है कि मेरे रहते तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़े। वह गाँव की दुर्दशा देखकर अब विशेष दुखी होता है।

इस प्रकार गोबर के चरित्र का बड़ा स्वाभाविक विकास प्रेमचन्दजी ने प्रस्तुत किया है। बीच में उसकी माता–पिता के प्रति अतिशय उद्दण्डता जरा अखरती है। अन्यथा उसके चरित्र की सभी रेखाएँ अत्यन्त स्वाभाविक एवं सजीव हैं।

4.3.3. धनिया

होरी की पत्नी धनिया ज़बान की तीखी किन्तु हृदय की अत्यन्त कोमल नारी है। घर की निरन्तर दारुण दरिद्रता ने ही उसे तीखा बनाया हुआ है, अन्यथा उसका सरल, कोमल, प्रेम–रुपी हृदय, वाणी सब उसके माधुर्य से अपरिचित नहीं हैं। जीवन मे कभी उसे सुख न मिला। घर के प्राणी दाने–दाने को तरसते रहते हैं, घी–दूध, अंजन लगाने तक को नहीं मिलता। अपने "विवाहित जीवन के इस बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि कितनी ही कतर–ब्योंत करो, कितना ही पेट–तन–काटो....मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है। उसके तीन लड़के बचपन में ही मर गये। उसका मन आज भी कहता था अगर उसकी दवा–दारू होती तो वे बच जाते, पर वह धेले की दवा भी न मंगवा सकी थी। उसकी भी उम्र अभी क्या थी! छत्तीसवाँ ही वर्ष तो था, पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थी, सारी देह ढल गई थी, वह सुन्दर गेहुआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला।...जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों ? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था.....।"

उसका हृदय मातृ–वात्सल्य, पति–प्रेम और यहाँ तक कि उदार मानवीय प्रेम से परिपूर्ण है। घर के प्राणियो पर वह जान देती है। अपने बच्चों से उसका अटूट स्नेह है। जब झुनिया को गोबर घर छोड़ जाता है, तब पहले तो उसका सती नारीत्व क्रोधित हो उठता है, वह होरी से कहती है–"मैं तुमसे कहे देती हूँ मैं उसे अपने घर में न रखूँगी। मेरे घर में ऐसी छत्तीसियों के लिए जगह नहीं है।" किन्तु जब उसे ख्याल आता है कि कुछ हो, आखिर है तो मेरे पुत्र की करतूत, मेरे पुत्र का ही अंश वह पेट में लिए है, और फिर अब इस अवस्था में बेचारी कहाँ जायेगी, तो उसका उदार मातृत्व और नारीत्व जग जाता है–सहसा उसने होरी के गले में हाथ डालकर कहा–"देखो, तुम्हें मेरी सौंह, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती, तो यह दिन ही क्यों आता। इतनी रात गये इस अन्धेरे सन्नाटे में जायेगी कहाँ, पाँव भारी है।" और वह झुनिया को अपनी पुत्र–वधू बनाकर रख लेती है। जब गोबर एक साल बाद शहर से कमा कर आता है तो अपने पुत्र को पाकर माता का हृदय फूला नहीं समाता। जीवन में पहली बार भगवान ने उस पर दया की है। वह कोमलता और उदारता की मूर्ति बन जाती है। "भीतर की शान्ति बाहर सौजन्य बन गई थी।" यही नहीं, उसका नारीत्व और भी उदार है। वह जिस उदारता, निर्भयता और स्नेह से निराश्रिता सिलिया चमारिन को आश्रय देती है, वह उसके उदार मातृत्व और नारीत्व का भव्यतम रूप है। वह कहती है–जगह की कौन कमी है बेटी! तू चल मेरे घर रह। होरी धनिया से कातर स्वर में कहता है "बोलती तो है, लेकिन पण्डित को जानती नहीं ?" इस पर उसका सत्य–नारीत्व निर्भीकता से कहता है–"बिगड़ेंगे तो एक रोटी बेसी खा लेंगे और क्या करेंगे। कोई उनकी रखैल हूँ ? इसकी इज्जत ली, बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं मेरा कोई वास्ता नहीं। आदमी है कि कसाई।"

अपने पति से उसका रोम–रोम प्रेम की अटूट गाँठे बाँधे है। अपनी दयनीय परिस्थिति से खीझ कर उसका मन पति से बात–बात पर विरोध करता है खीझता है पर थोड़ी देर की खीझ–झगड़े के बाद प्रेम दुगुने वेग से रीझ उठता है। "विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी।" वह पति के लिए अशुभ एक शब्द भी किसी से नहीं सुन सकती। जब होरी कहता है कि "साठे तक पहुँचने की नौबत ही न आयगी, पहले ही चल देंगे," तो वह मर्माहत हो उठती है। जब होरी बीमार पड़ता है तो वह सारा मन–मुटाव भूल कर उसकी जी–जान से सेवा करती है। जब होरी दातादीन की मजूरी करते हुए निढाल होकर गिर जाता है, तब उसके प्राण सूख जाते हैं। प्रेम की कितनी उदात्त, उज्ज्वल और गहन झाँकी है! इस दाम्पत्य प्रेम के आगे रीतिकालीन हजार नायिकाओं का प्रेम तुच्छ है। ऐसी पत्नी, ऐसी गृहिणी पाकर होरी अपने को धन्य समझता है। वह गदगद् कहता भी है।.."सेवा और त्याग की देवी! जुबान की तेज़ पर मोम जैसा हृदय! पैसे–पैसे के पीछे प्राण देने वाली, पर मर्यादा–रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार! वह पतिव्रता भारतीय नारी है। " कभी किसी ने उसे किसी छैला की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़ की थी। उसका ऐसा मुँह–तोड़ जबाव दिया कि आज तक नही भूले। दया, माया, ममता, सेवा, त्याग, कर्तव्य और परिश्रम की यह अनपढ़ अनघढ़ मूर्ति कितनी भव्य है, कितनी वन्दनीय।

वह बहुत परिश्रमशीला है। घर में ही नहीं, खेत खलिहान में भी वह पति के बराबर काम करती है। सर्दी–गर्मी, सोखा–वर्षा सब दिन वह खपती है, मेहनत करती है। इस मेहनत ने ही उसे स्वाभिमानिनी और रण–चण्डी निर्भीक नारी बना दिया है। उसका मन यह कभी नहीं समझ पाता कि मेहनत वह करें, दिन–रात वह मरें और उनकी मेहनत का फल दूसरे उठा जावें। इस स्थिति से उसका मन सदा विद्रोह करता है। गाय मर जाने के प्रसंग पर जब दारोगा धाँधली मचाता है और गाँव के स्तम्भ होरी को लुटवा कर अपना भी दाल–दलिया बनाना चाहते हैं, तो उसका विद्रोही मन चण्डी बन जाता है। वह जिस साहस और विक्षोभ से दारोगा और मुखिया लोगो को फटकारती है, वह उसे वीर नारी सिद्ध करता है। उसके इस चण्डी रूप की चर्चा कई दिनों तक आस–पास के गाँव में होती रही। पंचों–द्वारा डाँड लगाये जाने पर भी उसका विद्रोही हृदय ललकार उठता है। जब होरी दाना–दाना ढोकर पंचों के यहाँ पहुँचा देता है, खलिहान में केवल डेढ़ दो मन जौ रह जाता है तो चोट खाई हुई नागिन की तरह धनिया का वही मन फूँकार कर उठता है। वह पूरी शक्ति लगाकर होरी के हाथ से टोकरी पकड़ लेती है और कहती है–"इसे तो मैं न ले जाने दूँगी, चाहे तुम मेरी जान ही ले लो। मर–मरकर हमने कमाया, पहर रात–रात को सींचा, अगोरा, इसीलिए कि पंच लोग मूँछों पर ताव देकर भोग लगायें और हमारे बच्चे दाने–दाने को तरसें! तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया हैं। मैं भी अपनी बच्चियों के साथ सती हुई हूँ। "वह पंचों को खरी–खरी सुनाती है। जब भोला होरी के घर आकर आग्रह करता है कि या तो झुनिया को घर से निकाल दो या मेरे रुपये दो, नहीं तो मैं बैलों की जोड़ी ले जाऊँगा ? तो धनिया बड़े साहस और अधिकार से कहती है–"तो मेहतो, मेरी भी सुन लो।

जो बात तुम चाहते हो, वह न होगी, सौ जन्म न होगी। झुनिया हमारी जान के साथ है।" वह वीर–नारी स्वाभिमान की भी पुतली है। जीवन भर दाने–दाने को तरसते रहने पर भी उसने किसी के आगे सिर झुकाना नहीं सीखा। सिर क्यों झुकाये, अपनी मेहनत की खाते हैं, नहीं मिलती तो भूखे रहते हैं। किसी के दबैल नहीं। जब होरी और वह दातादीन की मजूरी करने पर विवश होते हैं और दातादीन सख्ती से काम लेता है और डाँटता हुआ कहता है–अगर यही हाल है तो भीख भी माँगेगी। तब धनिया का विद्रोही मन कह उठता है–"भीख माँगो तुम, जो भिखमंगों की जात हो। हम तो मजदूर ठहरे, जहाँ काम करेंगे, वहीं चार पैसे पायेंगे।"

वह मर्यादा की भी पक्की है। अन्याय और अत्याचार पर आधारित बिरादरी के बन्धन और मर्यादा दो बातें उसे कदापि मान्य नहीं। पर भलमनसाहत के रूप में वह मर्यादा की बातें करने को सदा तैयार रहती है। सोना के विवाह के अवसर पर पहले तो वह होरी को कहती है किसी से उधार लेने और दान–दहेज देने की कोई जरूरत नहीं है। यह उसके स्वाभिमानी हृदय का स्पष्ट विद्रोह है। किन्तु जब गौरी महतो का पत्र आता है तो वह बदल जाती है। वह तब कहने लगती है "यह गौरी महतो की भलमंसी है, लेकिन हमें भी तो अपनी रजाद का निर्वाह करना है। संसार क्या कहेगा। रुपया हाथ का मैल है उसके लिए कुल–मरजाद नहीं छोड़ी जाती। जो कुछ हमसे हो सकेगा, देंगे और महतो को लेना पड़ेगा।" जब होरी उसके मिजाज की आलोचना करता हुआ कहता है–"यह तूने क्या कर डाला धनिया! तेरा मिजाज आज तक मेरी समझ में न आया। तू आगे भी चलती है, पीछे भी चलती है। पहले तो इस बात पर लड़ रहीं थी कि किसी से एक पैसा कर्ज मत लो, कुछ–मरजाद का राग छोड़ दिया तेरा मरम भगवान ही जाने।" तब धनिया अपने मिजाज की विचित्रता का रहस्य खोलती हुई कहती है–"मुँह देखकर बीड़ा दिया जाता है। जब गौरी अपनी शान दिखाते थे अब वह भलमंसी दिखा रहे हैं। ईंट का जवाब चाहे पत्थर हो, लेकिन सलाम का जवाब गाली नहीं है।" दारोगा द्वारा तलाशी की धमकी के प्रसंग में, झुनिया के रखने पर बिरादरी की मर्यादा के अवसर पर सिलिया चमारिन को रखने में जाति–मर्यादा के प्रश्न पर उसकी मर्यादा–विरोधी प्रकृति स्पष्ट व्यंजित हुई है। ऐसी अन्याय पर आधारित मर्यादा का पालन करना वह नहीं चाहती। सच तो यह है कि जहाँ अन्याय है, अत्याचार है, वहीं विद्रोही धनिया है। एक तरह से धनिया होरी की पूर्ति है। अपनी विवशता और ब्राह्य दुर्बलता के कारण होरी को अन्याय, शोषण, बिरादरी आदि का सामना करना पड़ता है। यह होरी की अपूर्णता है। धनिया इस समस्त अत्याचार, अन्याय और शोषण का विरोध करती है। एक तरह से होरी या भावी किसान की वह क्रान्तिकारी आत्मा बनी हुई है, अपूर्ण होरी की पूर्ति है।

साधारण समझ–बूझ भी उसमें पर्याप्त है। कई बार वह इस दृष्टि से होरी की अपेक्षा अधिक चतुर दिखाई देती है। वह बात को जल्दी भाँप लेती है। जब गोबर गाय लेकर दोपहर तक नहीं लौटता और होरी चिन्ता करता है, तो वह बड़ी निश्चिन्तता से कहती है–'गोबर सांज को आयेगा।' उसकी सहज बुद्धि अपने पुत्र और भोला की विधवा लड़की के सम्बन्ध को भाँप लेती है। वह दारोगा और पंचों की बदमाशी समझ जाती है। गाय आने के बाद जब रात को हीरा की बात सुनकर होरी का मन क्षुब्ध हो जाता है और वह

गाय वापस लौटाने की सोचता है और धनिया से कहता है कि लोग हमारी चर्चा करते हैं, कहते हैं, भाईयों के दाबे हुए रुपयों से ही गाय लाई गई है, तो धनिया एक दम भाँप जाती है कि यह स्वर किसका है। वह निश्चित भाव से कहती है–'हीरा कहता होगा ?'

वह एक अनपढ़ औरत है। अतः ऐसी नारी में विद्यमान अन्ध–विश्वास आदि दुर्बलताएँ भी उसमें पाई जाती हैं। गाय के आने पर उसे नज़र लगने का भय है। वह गाय को बाहर बाँधने नहीं देती है। वह गाय के गले में काला धागा बाँध देती है। अपने देवरों के प्रति भी उसके मन में क्रोध और असहिष्णुता का भाव है। वह हीरा से भिड़ जाती है और उसे जेल भिजवाने पर तैयार हो जाती है। जिन देवर–देवरानियों के लिए एक समय उसने इतना किया, अपनी जान खपाई, देवरों को पुत्रों की तरह रखा, उनकी ईर्ष्या और जलन वह सह नहीं सकती। अपनी जरा सी प्रशंसा सुनकर धनिया फूल जाती है। पहले तो वह भोला को भूसा देने का बहुत विरोध करती है, पर जब होरी कहता है कि भोला तेरी बहुत प्रशंसा कर रहा था–"ऐसी लच्छमी है, ऐसी सलीकेदार है!" तो यह सुनकर धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक आती है। हृदय गद्‌गद् हो जाता है। वह एक नहीं, तीन–तीन बड़े खाँचे भूसे के भरकर देने का आग्रह करने लगती है। होरी उसके इस परिवर्तनशील स्वभाव की आलोचना करता हुआ कहता है–'या तो चलेगी नहीं या चलेगी तो छोड़ने लगेगी।'

इस प्रकार धनिया का चरित्र एक कृषक–नारी का वर्गगत सजीव रूप भी है और व्यक्तिगत विशिष्टता से ओत–प्रोत भी। अपनी परिश्रमशीलता, मातृत्व, स्नेह, दया–ममता, असन्तोष, अन्धविश्वास, सामाजिक–नैतिक विश्वास, जबान की तेजी आदि में वह सोलह आने अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, किन्तु अपनी अतिशय उदारता, अन्यतम साहस (गण्डासिंह जैसा दारोगा को भी लताड़ देने में–जिसके एक मामूली प्यादे–सिपाही की लाल पगड़ी से उसके मर्द–किसान भय खाते हैं) अपने चण्डी रूप में वह विशिष्ट है। धनिया के चरित्र में विद्रोह है, असन्तोष है, क्रोध है, होरी में नम्रता, झुकना, दबना, समझौता करना, विवश रह जाना, खून के घूँट पीना है। होरी के लिए प्रतिरोध का अर्थ है चुप रह जाना, आत्मपीड़न या विवशता जाहिर करना, पर धनिया के लिए प्रतिरोध का अर्थ है, विद्रोह अन्याय के खिलाफ खुली आवाज़ उठाना, खिल्ली उड़ाना, व्यंग्य करना, क्रोध से फुँकार मारना। उसके दग्ध हृदय से निसृत असन्तोष और विद्रोह की ज्वाला तथा ममता का पिघला हुआ मोम दोनो ही स्थान–स्थान पर शब्द रूप लिये पड़े हैं।

4.3.4 मालती

ग्राम–समाज के इन उपर्युक्त प्रमुख नारी पात्रों के अतिरिक्त 'गोदान' में शहरी जीवन के परिचायक नारी–पात्र भी अपना महत्व रखते हैं। इन शहरी नारी–पात्रों में प्रमुख है मालती। मालती का चरित्र–चित्रण भी बहुत सटीक है। प्रेमचन्द ने इन शब्दों में मालती का परिचय दिया है–"दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं–और जिनकी मुख छवि पर हँसी फूट पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इंगलैण्ड से डाक्टरी पढ़ आई हैं और अब प्रैक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की

साक्षात् प्रतिमा है। गाल कोमल, पर चपलता कूट–कूट कर भरी हुई है! झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद–प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव–भाव, मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप सा हो गया है।" मालती के इस चरित्र–चित्रण की सत्यता हमें छठे और सातवें परिच्छेद से ही ज्ञात हो जाती है। चंचलता, बुद्धि–चातुर्य, आत्माभिमान, नजाकत, स्वार्थपरता आदि उसके स्वभाव की सभी विशेषताएँ और दुर्बलताएँ धनुष–यज्ञ प्रसंग में ही स्पष्ट हो जाती हैं। विदेशी–शिक्षा के प्रभाव ने उसे तितली बना दिया है। मनोरंजन और हास–विलास ही उसके जीवन की ऊपरी सतह पर छाया हुआ है। दूसरों की हँसी उड़ाने, व्यंग्य कसने में वह बहुत तेज़ है। वह क्षण–भर में ही ओंकारनाथ को उल्लू बना जाती है। उसका मचलापन हरदम अपने चारों ओर रसिकों की जमघट चाहता है। अपने हाव–भाव से पुरुषों को नचाना वह खूब जानती है। मिल–मालिक खन्ना को उसने इसी तरह उल्लू बना रखा है। वह दिल से मेहता के प्रति आकर्षित है। स्वार्थी ऐसी कि मुसीबत सिर पर आने से भी वह हाथ आये हजार रुपये आसानी से छोड़ना नहीं चाहती। पठान को देखकर वह भयभीत हो जाती है। पर पठान की प्रेम–भरी बातों और रसीली आँखों को देखकर उसका आवारा मन आश्वस्त हो गया। उनका हृदय कुछ देर इन नर–पुंगवों के बीच में रहकर उनमें बर्बर प्रेम का आनन्द उठाने के लिए ललचा रहा था। शिष्ट प्रेम की दुर्बलता और निर्जीवता का उसे अनुभव हो चुका था। आज अक्खड़, अनघड़ पठान के उन्मत्त प्रेम के लिए उसका मन छोड़ रहा था। यद्यपि यहाँ मालती की यह मनःस्थिति नारी मनोविज्ञान के विरुद्ध प्रतीत होती है, फिर भी उसके स्वभाव की स्वच्छन्दता प्रकट करना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य रहा है। उसका हृदय संकुचित भी इतना है कि वह एक ग्रामीण कलूटी स्त्री के सेवा–भाव को भी शंका की दृष्टि से देखती है और मेहता को उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करते देखकर ईर्ष्या से जल उठती है। वह नारी–स्वच्छन्दता की हामी है। आश्चर्य है कि वह एक बार जेल भी हो आई है।

किन्तु यह मालती के चरित्र का ऊपरी पक्ष ही है। वह "बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है।...वह हँसती है इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं है कि वह चहकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है, कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।" सचमुच मालती घर का सारा दायित्व आप निभाती है। पिता का रोग से निकम्मा हो जाने के कारण, घर का सारा खर्च मालती के ही दम से चलता है। दोनों बहनों की पढ़ाई–लिखाई का भी वही खर्च उठाती है, पिता के अनियमित खर्च को बर्दाश्त करती है। पाश्चात्य शिक्षा से उसका ऊपरी ढाँचा ही रंगा गया है, अन्तर्मन भारतीय नारी का ही है। सेवा, कर्त्तव्य, गम्भीरता, दयालुता आदि गुणों के बीज उसमें विद्यमान हैं। उसके संस्कार लुप्त नहीं हो गए। वह चाहे कितने ही हाव–भाव दिखाये, पुरुषों को नाच नचाकर उपहार

ऐंठे, पर उसका नारी हृदय इसमें सन्तोष नहीं पाता। वह एक ऐसा आश्रय चाहती है, जो दृढ़ हो, स्थायी हो। उसका मधुमक्खी मन मेहता के गुणों पर रीझ जाता है। वह जी जान से मेहता को चाहने लगती है। वह मेहता के एक गुण को अपने हृदय में संचित करना चाहती है।

मेहता का दृढ़ आधार पाने की आशा में उसका चारित्रिक परिवर्तन आरम्भ होता है। वह अब सेवा और कर्तव्य का मार्ग अपना लेती है। वह महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला का आयोजन करती है। व्यायामशाला कमेटी की अभिनेत्री बनकर चन्दा इकट्ठा करती है। वह अब मेहता का संकेत पाकर खन्ना की गलतफहमी भी दूर कर देती है और गोविन्दी–खन्ना के बीच से बिल्कुल हट जाती है। वह खन्ना को स्पष्ट शब्दों में कह देती है–"मैं रूपवती हूँ। तुम भी मेरे अनेक चाहने वालों में से एक हो। यह मेरी कृपा थी कि जहाँ मैं औरों के उपहार लौटा देती थी, तुम्हारी सामान्य–से–सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी, और जरूरत पड़ने पर तुमसे रुपये भी माँग लेती थी। मगर तुमने अपने धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया तो मैं तुम्हे क्षमा करूँगी। यह पुरुष–प्रकृति का अपवाद नहीं, मगर यह समझ लो कि धन ने आज तक नारी के हृदय पर विजय नहीं पायी, और न कभी पायेगा।"

जो मालती कभी खुद अपने जूते न पहनती थी, जो खुद कभी बिजली का बटन तक न दबाती थी, वही पैदल चलकर गाँवों में सेवा–कार्य के लिए जाने लगी है, गरीबों का मुफ्त इलाज करने लगती है! मालती के रंग–ढंग की काया–पलट होती जाती थी। "अब तक जितने मर्द उसे मिले, सभी ने उसकी विलास–वृत्ति को ही उकसाया। उसकी त्याग–वृत्ति दिन–दिन क्षीण होती जाती थी, पर मेहता के संसर्ग में आकर उसकी त्याग–भावना सजग हो उठी थी।" किन्तु मेहता जब भी उसे परीक्षा की दृष्टि से देखते हैं और कहते हैं कि मैं जिस आधार पर जीवन का भवन खड़ा करना चाहता हूँ वह अस्थिर है तो मालती मेहता का उपेक्षा भाव देखकर क्षुब्ध हो कह उठती है–"तुमने सदैव मुझे परीक्षा की आँखों से देखा, कभी प्रेम की आँखों से नहीं।...मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूँ इसलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला, जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता, अगर तुमने मेरे सामने उसी तरह आत्म–समर्पण किया होता, जैसे मैंने तुम्हारे सामने किया है, तो तुम आज मुझ पर यह आक्षेप न रखते।" वह आगे कहती है–"मैं प्रेम को सन्देह से ऊपर समझती हूँ। वह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है।.... वह सम्पूर्ण आत्मा–समर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक बन कर नहीं, उपासक बन कर ही वरदान पा सकते हो।"

और सचमुच ही मालती अब मेहता को उपासक बना कर छोड़ती है। "आज मेहता ने जैसे उसे ठुकराकर उसकी आत्मशक्ति को जगा दिया। अब तक वह मेहता के आदर्श के ही सहारे चलती थी, अब स्वयं आदर्श बनने का दृढ़ संकल्प उसने कर लिया। वह सेवा और त्याग की मूर्ति बन गई। मेहता अब परीक्षक

से परीक्षार्थी बन गए। मालती मेहता के अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्थित करती है। उसकी सुख–सुविधाओं का पूरा ध्यान रखती है, पर मन में कोई व्याकुलता नहीं लाती, सहज भाव से अपना कर्त्तव्य निभाती है। उसके मातृ–वात्सल्य पर मेहता मुग्ध हो उठते हैं।" तब मालती प्यासी थी, अब मेहता प्यास से विकल है। झुनिया के बालक मंगल के प्रति जो वात्सल्य मालती ने दिखाया, उससे मेहता की नज़रों में मालती बहुत ऊँची उठ गई – "मालती केवल रमणी नहीं है, माता भी है और ऐसी वैसी माता नहीं, सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देने वाली, जो पराये बालक को भी अपना समझ सकती है, जैसे उसने मातापन का सदैव संचय किया हो और (मधुमक्खी की तरह) आज दोनों हाथों से उसे लुटा रही हो। उसके अंग–अंग से मातापन फूटा पड़ता था, मानो यही उसका यथार्थ रूप हो। यह हाव–भाव, यह शौक–सिंगार उसके, मातापन के आवरण मात्र हो, जिसमें उस विभूति की रक्षा होती रहे।"

मालती को अनुभव हुआ कि "इस त्याग के जीवन में कितना आनन्द है। दूसरों के कष्ट–निवारण में उसने जिस सुख और उल्लास का अनुभव किया है, वह कभी भोग–विलास के जीवन में न किया था।" अब वह प्रेम की वस्तु नहीं, श्रद्धा की वस्तु थी। जब मेहता याचना करते हैं और विवाह का प्रस्ताव मालती के सामने रखते हैं तो वह कहती है – "मित्र बनकर रहना स्त्री–पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है। . .... अपनी छोटी सी गृहस्थी बनाकर, अपनी आत्माओं को छोटे से पिंजड़े में बन्द करके, अपने दुख–सुख को अपने ही तक रख कर, क्या हम असीम के निकट पहुँच सकते हैं ? .... तुम्हारे जैसे विचारवान् प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बन्द नहीं करना चाहती।"

इस प्रकार मालती का चरित्र आदर्श में परिणति पाता है। यह विकास अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक है। वह जीवन की पूर्णता का आदर्श प्रस्तुत करती है।

4.4 कठिन शब्द

1. परिचायक
2. डॉडी
3. सुभीते
4. कुत्सित
5. निराश्रिता
6. डॉड
7. मरजाद
8. उद्दण्डी
9. उद्दण्डता
10. विपन्नता
11. संचय

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'धनिया' सच्चे अर्थों में 'अर्द्धांगिनी' है – इस वक्तव्य से आप कहां तक सहमत हैं। युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

प्रश्न. होरी 'गोदान' की आत्मा है – आशय स्पष्ट करते हुए होरी का चरित्र–चित्रण करें।

प्रश्न. 'बाहर से तितली भीतर से मधुमक्खी' उपन्यास में यह पंक्ति किसके लिए कही गई है – स्पष्ट कीजिए और इस पात्र का चरित्र चित्रण कीजिए।

प्रश्न. नई पीढ़ी का प्रतीक 'गोबर' का चरित्र–चित्रण करें।

4.6 पठनीय पुस्तकें

1. गोदान – प्रेमचन्द
2. कथाकार प्रेमचन्द – जाफर रज़ा।
3. प्रेमचन्द और उनकी उपन्यास कला – डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय
4. गोदान का महत्व – डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
5. प्रेमचन्द – सं– सत्येंद्र
6. प्रेमचन्द के साहित्य में हाशिए का समाज– एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – शुभ्रा सिंह

—— 0 ——

'सेवासदन' उपन्यास की प्रमुख समस्याएँ

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 सेवासदन की प्रमुख समस्याएँ

5.3.1 दहेज की समस्या

5.3.2 रिश्वतखोरी की समस्या

5.3.3 धार्मिक ठगी की समस्या

5.3.4 साम्प्रदायिक विद्वेष की समस्या

5.3.5 वेश्यावृति की समस्या

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्द

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.7 पठनीय पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

इस आलेख के अध्ययनोपरांत आप जान पाएंगे कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में 'समस्या'यही इसका बल स्थान है। उनके सभी उपन्यासों में कोई न कोई प्रमुख समस्या मिलती है। प्रमुख समस्या के साथ साथ अन्य समस्याओं की झलकें भी प्रत्येक उपन्यास में विद्यमान रहती हैं। हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द युग एक ऐसा युग आया जब देश

को भयावह परिस्थितियों से गुज़रना पड़ रहा था। इस युग में देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति असंतोषजनक और विषमता से परिपूर्ण थी। यही कारण है कि तत्कालीन समाज में स्थित समस्याओं का उद्घाटन हमें उनके उपन्यास में मिलता है।

5.2 प्रस्तावना

प्रेमचन्द मूलतः समस्या मूलक उपन्यासकार हैं। उन्होंने प्रत्येक उपन्यास में किसी न किसी समस्या को उठाया है। उन्होंने अपने उपन्यास में कथानक के माध्यम से अनेक सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं को उठाया है और उन्हें हल करने के उपाय भी सुझाये हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में कथानक का गठन, घटनावली का निर्माण और उपसंहार उनके चिन्तन का अनुगामी बन गया है। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने सामाजिक कुरीतियों एवं कुप्रथाओं को लिया है। इन कुप्रथाओं को पुष्ट करने वाले कारणों एवं इनसे होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन करते हुए वे परोक्ष रीति से इनके सुधार के उपाय भी बताते जाते हैं। इस दृष्टि से सामाजिक समस्या का निरूपण और हल करने वाले सुधारवादी प्रेमचन्द का रूप हमारे समक्ष आ जाता है। सुधारवादी प्रायः आदर्शवादी होता है क्योंकि किसी आदर्श विशेष को सामने रखे बिना वह प्रचलित व्यवस्था में सुधार की कल्पना नहीं कर सकता। यही कारण है कि सामाजिक समस्याओं का निरूपण करते समय प्रेमचन्द के उपन्यास में उनका सुधारवादी और आदर्शवादी रूप उभर आया है।

5.3 सेवासदन की प्रमुख समस्याएँ

सेवासदन में प्रेमचन्द ने मूलतः निम्नलिखित समस्याओं का चित्रण किया है –

दहेज की समस्या

रिश्वतखोरी की समस्या

धार्मिक ठगी की समस्या

साम्प्रदायिक विद्वेष की समस्या

वेश्यावृत्ति की समस्या

5.3.1 दहेज की समस्या

प्रेमचन्द ने दहेज की समस्या को सभी समस्याओं की जड़ माना है। इसके कारण कृष्णचन्द को अपनी ईमानदारी और सच्चाई पर पश्चात्ताप होने लगा। प्रेमचन्द ने लिखा है– "दारोगाजी वर की खोज में दौड़ने लगे, कई जगह से टिप्पणियाँ मंगवाई। वह शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे कि ऐसे घरों में लेन–देन की चर्चा न होगी, पर उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल शिक्षा के अनुसार है। कोई चार हज़ार सुनाता, कोई पांच हज़ार और कोई इससे भी आगे बढ़ जाता।" लोग किस प्रकार तर्क देकर दहेज का औचित्य सिद्ध करते है। इस सम्बन्ध में

दो महाशयों के उद्‌गार अवलोकनीय हैं। उनमें से पहले महाशय जी स्वयं को इस कुप्रथा का जानी दुश्मन बताते हैं, उनका तर्क देखिए–

"महाशय मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूँ। लेकिन क्या करूँ, अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया, दो हज़ार दहेज में देने पड़े, दो हज़ार और खाने पीने में खर्च किये, आप ही कहिये, वह कमी कैसे पूरी हो ?"

दूसरे सज्जन ने तर्क प्रस्तुत किया कि लड़के पर हज़ारों रुपये खर्च करूँ मैं जबकि लाभ आपकी लड़की उठायेगी –

"दूसरे महाशय इनसे अधिक नीति कुशल थे। बोले दरोगाजी, मैंने लड़के को पाला है, सहस्त्रों रुपये उसकी पढ़ाई मे खर्च किये हैं। आपकी लड़की को इससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के को। तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मै अकेला कैसे उठा सकता हूँ ?"

दरोगा कृष्णचन्द के उपरान्त सुमन के मामा को भी यह संकट झेलना पड़ा। "अन्त में उमानाथ ने निश्चय किया कि शहर में कोई वर ढूँढना चाहिए। सुमन के योग्य वर देहात में नहीं मिल सकता। पर शहरवालों की लम्बी चौड़ी बातें सुनी तो उनके होश उड़ गये, बड़े आदमियों का तो कहना ही क्या, दफ्तर के मुसद्दी और कलर्क भी हज़ारों का राग अलापते थे।"

यही दशा शांता के लिए वर खोजते समय होती है। गांव लौटते समय उनकी गजानन्द से बात होती है –

गजानन्द–लेकिन अब की सुयोग्य वर खोजिएगा।

उमानाथ–सुयोग्य वरों की तो कमी नहीं है, पर उनके लिए मुझमें सामर्थ्य भी तो हो ? सुमन के लिए क्या मैंने कम भाग दौड़ की थी ?

गजानन्द– सुयोग्य वर मिलने के लिए आपको कितने रूपये की अवश्यकता है ?

उमानाथ–एक हज़ार तो दहेज ही माँगते हैं और सब खर्च अलग रहा।

गजानन्द–आप विवाह तय कर दीजिये। एक हजार रूपये का प्रबन्ध ईश्वर चाहेंगे तो मैं कर दूंगा।

दहेज प्रथा के कारण निश्चय ही लड़कियों को अच्छे वर की प्राप्ति नहीं हो पाती थी। सुमन का पतन इसी कारण हुआ।

5.3.2 रिश्वतखोरी की समस्या

रिश्वत की समस्या को दरोगा कृष्णचन्द्र के माध्यम से उभारा गया है। कृष्णचन्द्र पच्चीस वर्ष तक ईमानदारी से काम करते रहे। इसका अन्त में परिणाम यह निकलता है कि उनके अफसर और अधीनस्थ कर्मचारी सभी उनसे

असंतुष्ट रहते हैं। वे अपने मातहतों के साथ भाई–चारे का सा व्यवहार करते थे, किन्तु मातहत अक्सर कहा करते थे – "यहाँ हमारा पेट नही भरता, हम इनकी भलमनसी को लेकर क्या करें– चाटें ? हमें घुड़की डाँट–डपट, सख्ती सब स्वीकार है, केवल हमारा पेट भरना चाहिए। रुखी रोटियां चांदी के थाल में परोसी जायें तो भी वे पूरियां न हो जायेंगी।"

दरोगा कृष्ण चन्द्र की शुष्कता को प्रायः लोग उनका अभिमान समझते थे। इसी कारण उनसे उनके अफसर प्रसन्न न थे। यथा–

दरोगाजी के अफसर भी उनसे प्रायः प्रसन्न न रहते। वह दूसरे थाने में जाते तो उनका बड़ा आदर सत्कार होता था, उनके अहलमद, मुहरिर और अरदली खूब दावतें उड़ाते। अहलमद को नजराना मिलता, अरदली इनाम पाता और अफसरों को नित्य गालियाँ मिलती पर कृष्णचन्द्र के यहाँ यह आदर–सत्कार कहाँ ? जो किसी से लेता नही, वह किसी को देगा कहाँ से? दरोगा कृष्णचन्द्र की शुष्कता को लोग अभिमान समझते थे।

इसे सामाजिक विडम्बना ही माना जायेगा कि रिश्वत न लेने वाले दरोगा से उसके अधीनस्थ कर्मचारी और उच्चस्थ अधिकारी प्रसन्न नहीं रहते। यहाँ तक कि जब अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर दहेज लेने की बात उठने लगती है तो दरोगा स्वयं परास्त हो जाते हैं। दरोगा कृष्णचन्द्र को अपने सत्याचरण और ईमानदारी पर पश्चात्ताप करते दिखाकर राष्ट्रीय चरित्र के पतन की ओर संकेत किया है। यथा–

कृष्णचन्द्र को अपनी ईमानदारी और सच्चाई पर पश्चाताप होने लगा। अपनी निःस्पृहता पर उन्हें जो घमण्ड था वह टूट गया। वह सोच रहे थे कि यदि मैं पाप से न डरता तो आज मुझे भी ठोकरें न खानी पड़ती। इस समय स्त्री पुरुष चिन्ता में डूबे बैठे थे, बड़ी देर के बाद कृष्णचन्द्र बोले, देख लिया संसार में सन्मार्ग पर चलने का यह फल होता है। यदि आज मैंने लोगों को लूट कर घर भर लिया होता तो लोग मुझसे सम्बन्ध करना अपना सौभाग्य समझते, नहीं तो कोई सीधे मुंह बात नहीं करता है। परमात्मा के दरबार में यह न्याय होता है। अब दो ही उपाय हैं, या तो सुमन को किसी कंगाल के पल्ले बांध दूं या कोई सोने की चिड़िया फंसाऊँ। पहली बात तो होने से रही, बस अब सोने की चिड़िया खोज निकालता हूँ। धर्म का मज़ा चख लिया, सुनीति का हाल भी देख चुका। अब लोगों को खूब दबाऊँगा, खूब रिश्वतें लूंगा, यही अन्तिम उपाय है। संसार यही चाहता है और कदाचित् ईश्वर भी यही चाहता है। यही सही। आज से मैं भी वही करूँगा जो सब लोग करते हैं।

5.3.3 धार्मिक ठगी की समस्या

प्रेमचन्द ने अपने समसामयिक जीवन में होने वाली ठगी का भी वर्णन किया है। यह ठगी धार्मिक गुरुओं और महन्तों के माध्यम से होती है। जनता का उन पर अन्धविश्वास और अपार श्रद्धा थी और उसी का लाभ ये धार्मिक महन्त और गुरु लोग उठाते थे। इन गुरुओं के आश्रय में अनेक मुस्तंडे पलते थे। यथा–

"दारोगाजी के हल्के में एक महंत रामदास थे। वह साधुओं की एक गद्दी के महंत थे। उनके यहाँ सारा कारोबार श्री बांके बिहारी जी के नाम पर होता था। श्री बांके बिहारी जी लेन देन करते थे और 32) सैंकड़े से कम सूद

न लेते थे। वही मालगुज़ारी वसूल करते थे, वही रहननामे–बैनामें लिखाते थे। श्री बाँके विहारी जी की रकम दबाने का किसी को साहस न होता था और न अपनी रकम के लिए कोई दूसरा आदमी कड़ाई कर सकता था। श्री बाँके बिहारी जी को रुष्ट करके उस इलाके में रहना कठिन था। महंत रामदास के यहां दस–बीस मोटे–ताजे साधु स्थायी रूप से रहते थे। वह अखाड़े में दण्ड पेलते, भैंस का ताजा दूध पीते, संध्या को दूधिया भंग छानते और गाँजे–चरस की चिलम तो कभी ठंडी न होने पाती थी। ऐसे बलवान जत्थे के विरुद्ध कौन सर उठाता ?"

ये महंत जी अपने इलाके के प्रभावशाली व्यक्तियों में से थे। उच्च अधिकारियों से इन्होंने साँठ–गाँठ कर रखी थी। इन अधिकारियों से भी इन्हे किसी प्रकार का भय न था। यथा–

"महंत जी का अधिकारियों में खूब मान था। श्री बाँके बिहारी जी उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहन भोग खिलाते थे। उनके प्रसाद को कौन इन्कार कर सकता था ? ठाकुर जी संसार में आकर संसार की रीति पर चलते थे।"

अपनी आसामियों का शोषण करने के बाद महंत जी का अपना ठाट–बाठ देखने लायक है। प्रेमचन्द ने उनके जलूस की भव्यता का वर्णन किया है।

यथा–

"महंतजी अब अपने इलाके की निगरानी करने निकलते तो उनका जलूस राजसी ठाट–बाट के साथ चलता था। सबसे आगे हाथी पर श्री बाँके बिहारीजी की सवारी होती थी, उसके पीछे पालकी पर महंत जी चलते थे, उसके बाद साधुओं की सेना घोड़ों पर सवार, राम–नाम के झंडे लिए अपनी विचित्र शोभा दिखाती थी, ऊँटों पर छोलदारियाँ, डेरे और शामियाने लदे होते थे। यह दल जिस गाँव में जा पहुंचता था, उसकी शामत आ जाती थी।

महंत जी एक ओर तो बाँके बिहारीजी के नाम पर ऊंची ब्याज़ – दर के कारण जनता का शोषण करते थे और समय आने पर अपने इलाके के लोगों से विशेष चंदा भी वसूल करते थे। यथा –

''इस साल मंहत जी तीर्थ यात्रा करने गए थे। वहाँ से आकर एक बड़ा यज्ञ किया। एक महीने तक हवन कुण्ड जलता रहा, महीनों तक कड़ाह न उतरे पूरे दस हज़ार महात्माओं को निमंत्रण था। इस के लिए इलाके के प्रत्येक आसामी से हल पीछे पाँच रुपया चंद उगाहा गया था किसी ने खुशी से दिया किसी ने उधार लेकर, जिसके पास न था। श्री बाँके बिहारी जी की आज्ञा कौन टाल सकता था। ?

महंत जी अपना इलाके में दबदबा बनाए रखने के लिए हर प्रकार के हथकंडे अपनाते हैं। बाँके बिहारी की आज्ञा को टालने वाले व्यक्ति को दंड भी भोगना पड़ता है यथा – एक बूढ़ा दरिद्र चेतु नाम का अहीर था। कई साल से उसकी फसल ख़राब हो रही थी। थोड़े ही दिन हुए श्री बाँके बिहारी जी ने उस पर हजाफा लगान की नालिश करके उसे ऋण के बोझ से और भी दबा दिया था। उसने यह चंदा देने से इंकार किया, यहाँ तक कि खक्का भी न लिखा। ठाकुरजी भला ऐसे द्रोही को कैसे क्षमा करते। एक दिन कई महात्मा चेतू को पकड़ लाये। ठाकुरजी के सामने उस पर

मार पड़ने लगी। चेतु भी बिगड़ा। हाथ तो बंधे थे, मुँह से लात घूँसों के जवाब देता रहा और जब तक ज़बान बन्द न हो गई चुप न हुआ।

गाँवों में यदि महंत का प्रभाव था, तो शहर भी उनके प्रभाव से मुक्त न थे। वहाँ रामनवमी के दिन भगवान का कीर्तन होना बन्द हो गया। उसकी जगह महंत भोलीबाई वेश्या का मुजरा करवाना पसंद करते थे। सुमन ने स्वयं अपनी आँखों से देखा –

रामनमवी के दिन सुमन कई सहेलियों के साथ एक बड़े मंदिर में जन्मोत्सव देखने गई। मंदिर खूब सजाया हुआ था। बिजली की बत्तियों से दिन का सा प्रकाश ही रहा था, बड़ी भीड़ थी। मंदिर के आँगन में तिल रखने की भी जगह न थी। संगीत की मधुर ध्वनि आ रही थी। सुमन ने खिड़की में से आँगन की ओर झांका तो क्या देखा कि वही उसकी पड़ोसिन भोली बैठी गा रही है । सभा में एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वैष्णव तिलक लगाये, कोई भस्म रमाये, कोई गले में कंठी माला डाले और राम राम की चादर ओढ़े कोई गरुए वस्त्र पहने। उनमें से कितनों को सुमन नित्य गंगा स्नान करते देखती थी। वह उन्हें माहत्मा विद्वान समझती थी। वही लोग यहाँ इस भाँति तन्मय हो रहे थे, मानो स्वर्गलोग में पहुँच गये हैं। भोली जिसकी ओर कटाक्ष पूर्ण नेत्रों से देखती थी वह मुग्ध हो जाता था मानों साक्षात् राधाकृष्ण के दर्शन हो गए।''

गजाधर का विश्वास है कि साधु बनकर धन आसानी से कमाया व एकत्र किया जा सकता है। वह केवल जीवन का सुख और उत्तम भोजन का स्वाद लूटने के लिए पुजारी बना। वह उमानाथ से कहता है।

आप विवाह तय कर लिजिए। एक हजार रुपये का प्रबन्ध ईश्वर चाहेंगे तो मैं कर दूँगा। यह भेष धारण करके अब लोगों को आसानी से ठग सकता हूँ। मुझे ज्ञात हो रहा है कि मैं प्राणियों का बहुत उपकार कर सकता हूँ।

धार्मिकता के नाम पर ठगी करने वाले धूर्तों का समाज में बोलबाला रहा है। यह समाज के प्रत्येक वर्ग का आदमी जानता था। साधु बनने से पूर्व एक बार गजाधर ने सुमन को समझाते हुए कहा है –

''तो तुमने उन लोगों के बड़े–बड़े छापे तिलक देखकर ही उन्हे धर्मात्मा समझ लिया? आजकल धर्म तो धुर्तों का अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागर में एक से एक मगरमच्छ पड़े हैं। भोले–भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है। लम्बी–लम्बी जटाएँ, लम्बे–लम्बें तिलक–छापे और लम्बी–लम्बी दाढ़ियाँ देखकर लोग उनके धोखें में आ जाते हैं। पर वह सबके सब महान पाखंडी, धर्म के उज्ज्वल नाम को कलंकित करने वाले धर्म के नाम पर टका कमाने वाले, भोग विलास करने वाले पापी हैं।

5.3.4 साम्प्रदायिक समस्या

प्रेमचन्द ने सेवादन उपन्यास में तत्कालीन समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक समस्या को भी उठाया है। यह समाज का एक ऐसा रोग है, जिसके कारण भारतीय समाज पनप ही नहीं पाता। वेश्या समस्या के समाधान के लिए भी

तत्कालीन म्युनिसिपैलिटी के सदस्य अपनी–अपनी साम्प्रदायिक भावनाओं को लाये बिना नहीं माने। दालमंडी में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म वाले लोगों की दुकानें और मकान हैं जिनका वे लोग बढ़ा हुआ किराया खाते हैं लेकिन मन में यह भी मानते हैं कि यह एक सामाजिक समस्या है। इस समस्या पर जब वे बहस करते हैं – तो कुछ और ही कहते हैं। यथा –

हाजी हाशिम बोले, बिरादराने वतन की यह नयी चाल देखी ? बल्लाह इनको सूझती खूब है। बगली घूस मारना कोई इनसे सीख ले। मैं तो इनकी रेशादवानियों से इतना बदजन हो गया हूँ कि अगर इनकी नेक नियती पर ईमान लाने में नजात भी होती हो तो न लाऊँ।

अबुलवफा इस तथ्य को राजनीतिक रंग देकर प्रस्तुत करते है। उनके विचार मे यह कार्य मुस्लिम वोटरों की संख्या कम करने का एक षड़यन्त्र है –

"मगर अब खुदा की फज़ल से हमको भी अपने नफे–नुक्सान का एहसास होने लगा है। यह हमारी तादाद को घटाने की सरीह कोशिश है। तवायफें 60 फीसदी मुसलमान हैं जो रोज़े रखती हैं, इजादारी करती हैं, मौलूद और उर्स करती हैं। हमको उनके ज़ाती फेलों से कोई बहस नहीं है। नेक व बद की सजा व जज़ा देना खुदा का काम है। हमको तो सिर्फ उनकी तादाद से गर्ज़ है।"

अबुलबफा की धूर्तता परले सिरे की है। वे राजनीतिक स्वार्थ के वशीभूत होकर हर तथ्य से आखें मूँद लेना चाहते हैं तो अली उनसे पूछते हैं कि "मगर उनकी तादाद, क्या इतनी ज्यादा है कि उससे हमारे मुजमई वोट पर कोई असर पड़ सकता है ? तो अबुलवफा कहते हैं –

"कुछ न कुछ तो पड़ेगा। ख्वाह यह कम हो या ज्यादा। बिरादराने वतन को देखिए, यह डोमड़ों तक को मिलाने की कोशिश करते हैं। उनके साये से परहेज करते हैं, उन्हे जानवरों से भी ज़लील समझते हैं, मगर महज अपने पोलिटीकल मफाद के लिए उन्हें अपने कौमी जिस्म का एक अजो बनाये हुए हैं। डोमड़ों का शुमार जरायम पेशा अकवाम में है। आलि, हाजा पासी भर बगैरह इसी जेल में आते हैं। सरका, कत्ल, रहजनी यह उनके पेशे हैं। मगर जब उन्हें हिन्दुओं से अलहदा करने की कोशिश की जाती है तो बिरादराने वतन कैसे चिरागया होते हैं "वेद और शासतर की सनदें नकल करते फिरते हैं। हमको इस मुआमिले में उन्हीं से सबक लेना चाहिए।"

मुसलमानों में सभी हाजी आशिम और अबुलवफा की भाँति न थे। उनमें भी कुछ समझदार लोग थे जैसे कि सैयद शफकत अली। वे कहते हैं –

"इन जरायम पेशा अकवाम के लिए गवर्नमेंट ने शहरों में खित्त अलेहदा कर दिए। उन पर पुलिस की निगरानी रहती है। मैं खुद अपने दौराने मूलाजिमत मे उनकी नकल व हरकत की रिपोर्ट लिखा करता था। मगर मेरे ख्याल में किसी जिम्मेदार हिन्दू ने गवर्नमेंट के इस तर्जे अमल की मुखालिफत नहीं की। हालांकि मेरी निगाह में सरका, कत्ल

बगैरह इतने मकरुह फैल नहीं है, जितनी असमत फरोशी। डोमनी भी जब असमतफरोशी करती है, तो वह अपनी बिरादरी से खारिज कर दी जाती है .... अगर इन तवायफों की दिनदारी के तुफैल में सारे इस्लाम को खुदा जन्नत अता करे, तो मैं दोजख में जाना पसंद करूँगा। अगर उनकी तादाद की बिना पर हमको इस मुल्क की बादशाही भी मिलती हो, तो मैं कबूल न करु। मेरी राय तो यह है कि इन्हें मरकज शहर ही से नहीं, हदूद शहर से खारिज कर देना चाहिए।"

हिन्दुओं में भी साम्प्रदायिक भावना को उभार कर स्वार्थ सिद्धि करने वाले सदस्यों की कमी नहीं थी। जब वेश्या समस्या पर विचार करने के लिए मुसलमानों के जलसे की बात हिन्दू सदस्यों को पता चली तो उनके भी कान खड़े हुए। उन्हें मुसलमानों से जो आशा थी। वह भंग हो गई। दालमंडी चौक की दुकानों में से अधिकांश सेठ बलभद्रदास और सेठ चिम्मनलाल की थीं। पंडित दीनानाथ के कितने ही मकान दालमंडी में थे। प्रभाकर राव पेशे से पत्रकार थे और मुसलमानों के कट्टर विरोधी थे। पंडित दीनानाथ प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहते हैं –

"हमारे मुसलमान भाइयों ने तो इस विषय में बड़ी उदारता दिखाई पर इसमें एक गूढ़ रहस्य है। उन्होंने एक पंथ दो काज वाली चाल चली है। एक ओर तो समाज सुधार की नेकनामी हाथ आती है, दूसरी ओर हिन्दुओं को हानि पहुंचाने का एक बहाना मिलता है।"

सेठ चिम्मनलाल ने सारे विषय को साम्प्रदायिकता के रंग में रंगते हुए कहा– "मुझे पोलिटिक्स से कोई वास्ता नहीं है और न मैं इसके निकट जाता हूँ लेकिन यह कहने से तनिक भी संकोच नहीं है कि हमारे मुस्लिम भाइयों ने हमारी गरदन बुरी तरह पकड़ी है। दालमंडी और चौक के अधिकांश मकान हिन्दुओं के हैं। यदि बोर्ड ने स्वीकार कर लिया तो हिन्दुओं का मटियामेट हो जायेगा। छिपे–छिपे चोट करना मुसलमानों से सीखे। अभी बहुत दिन बीते कि सूद की आड़ में हिन्दुओं पर आक्रमण किया गया था। जब वह चाल पलट गई तो नया उपाय सोचा।"

रुस्तम भाई इन दोनों माननीय सदस्यों की बात काटते हुए कहते हैं –

"उन्होंने इस विषय में जो कुछ निश्चित किया है वह सार्वजनिक उपकार के विचार से किया है। अगर इससे हिन्दुओं को अधिक हानि हो रही है तो दूसरी बात है। मुझे विश्वास है कि मुसलमानों की इससे अधिक हानि होती तब भी उनका यही फैसला होता। अगर आप सच्चे हृदय से मानते हैं कि यह प्रस्ताव एक सामाजिक कुप्रथा के सुधार के लिए है, तो आपको उसको स्वीकार करने में कोई बाधा न होनी चाहिए, चाहे धन की कितनी ही हानि हो। आचरण के सामने धन का कोई महत्त्व न होना चाहिए।"

साम्प्रदायिक समस्या के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने हिन्दू और मुसलमानों की अतिवादी विचारधारा का उल्लेख कर इस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि कुछ लोगों की उग्र विचारधारा साम्प्रदायिक भावनाओं को इस प्रकार उभार देती है कि लोगों में परस्पर वैमनस्य बढ़ जाता है।

5.3.5 वेश्यावृत्ति की समस्या

सेवासदन की प्रमुख समस्या वेश्यावृत्ति की समस्या पर प्रकाश डालना है। प्रेमचन्द ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि सिद्धांत रूप में वेश्याएँ घृणित समझी जाती हैं किन्तु सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में उनका इतना अधिक मान–सम्मान किया जाता है कि वे ऐशो आराम का जीवन यापन करती हैं। यही नहीं कुलवधुओं को उनसे ईर्ष्या होने लगती है। सुमन के वेश्यावृत्ति की ओर उन्मुख होने का कारण भी जगह–जगह भोलीबाई का आदर और सम्मान होना ही है।

सुमन ने सुन रखा था कि वेश्याएँ अत्यन्त दुश्चरित्र और कुलटा होती हैं। वे अपने कौशल से नवयुवकों को अपने माया जाल में फँसा लिया करती हैं। कोई भलामानुस उनसे बातचीत नहीं करता, केवल शोहदे रात को छिपकर उनके यहाँ जाया करते हैं। भोली ने कई बार उसे चिक की आड़ में खड़े होकर इशारे से बुलाया था, पर सुमन उससे बोलने में अपना अपमान समझती थी। मैं दरिद्र सही, दीन सही, पर अपनी मर्यादा पर दृढ़ हूँ, किसी भलेमानुस के घर में मेरी रोक तो नही, कोई मुझे नीच तो नहीं समझता। वह कितना ही भोग–विलास करे, पर उसका कहीं आदर तो नहीं होता। बस अपने कोठे पर बैठी अपनी निर्लज्जता और अधर्म का फल भोगा करे।

सुमन का यह आत्म–गर्व शीघ्र ही खंडित होता है। धीरे–धीरे उसे अनुभव होने लगता है कि भोली को वह जितनी नींच समझती है, वास्तव में उसकी स्थिति वैसी नहीं है। समाज में उसका आदर है। मन्दिर में रामनवमी के दिन भोली का गाना होता है। होली के दिन पंडित पद्मसिंह के यहाँ भोली का गायन सुनकर तो सुमन की विचारधारा ही पलट जाती है। वेश्यावृत्ति ग्रहण करने के बाद वह स्पष्ट रूप से पद्मसिंह से कहती है–

आदर में वह संतोष है जो धन और भोग विलास में नहीं है। मेरे मन में नित्य यही चिन्ता रहती थी कि आदर कैसे मिले। इसका उत्तर मुझे कितनी ही बार मिला, लेकिन आपके होली वाले जलसे के दिन जो उत्तर मिला, उसने भ्रम दूर कर दिया, मुझे आदर और सम्मान का मार्ग दिखा दिया। यदि मैं उस जलसे में न आती तो आज मैं अपने झोंपड़े में संतुष्ट होती। आपको मैं बहुत सच्चरित्र पुरूष समझती थी, इसलिए आपकी रसिकता का मुझ पर और भी प्रभाव पड़ा। भोलीबाई आपके सामने गर्व से बैठी हुई थी, आप उसके सामने आदर और भक्ति की मूर्ति बने हुए थे। आपके मित्र–वृन्द उसके इशारों पर कठपुतली की भाँति नाचते थे। एक सरल हृदय आदर की अभिलाषिणी स्त्री पर इस दृश्य का जो फल हो सकता था वही मुझ पर हुआ।

इस वेश्यावृत्ति की समस्या पर प्रेमचन्द ने सुधार के काम में सक्रिय रूप से पंडित पद्मसिंह और विट्ठलदास को काम करते दिखाया है। नगर से बाहर वेश्याओं की पुत्रियों के लिए सेवासदन नामक अनाथालय तथा सुधारगृह की स्थापना की गई। इसके लिए अनेक वेश्याओं ने अपनी सम्पत्ति का दान किया। इस सेवासदन में वेश्याओं की कन्यायें पढ़ने–लिखने तथा सिलाई–कढ़ाई आदि कार्य सीखने लगीं।

5.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में अनेक समस्याओं को उठाया है, किन्तु उनका ध्यान वेश्यावृत्ति के प्रसार के कारणों पर प्रकाश डालना रहा है। इसके साथ ही उन्होंने गांधीवादी आदर्शों के अनुसार सेवासदन की स्थापना कराकर उक्त समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया है।

5.5 कठिन शब्द

1. विषमता	6. सन्मार्ग
2. अनुगामी	7. मालगुज़ारी
3. निरूपण	8. छोलदारियाँ
4. अवलोकनीय	9. नलिश
5. मातहत	10. नेकनामी

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. सेवासदन उपन्यास की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न. धार्मिक ठगी की समस्या उपन्यास में चित्रित हुई है, इस पर टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न. 'सेवासदन' उपन्यास में अभिव्यक्त साम्प्रदायिक विद्वेष की समस्या पर नोट लिखिए।

प्रश्न. 'सेवासदन' उपन्यास में अभिव्यक्त दहेज समस्या पर प्रकाश डालिए।

5.7 पठनीय पुस्तकें :

1 सेवासदन – प्रेमचन्द

2 प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व – हँसराज 'रहबर'

3 प्रेमचन्द – सं० सत्येन्द्र

4 प्रेमचन्द और उनका युग – डॉ० राम विलास शर्मा

—— 0 ——

'सेवासदन' उपन्यास में चित्रित नारी

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 सेवासदन उपन्यास में चित्रित नारी

6.4 सेवासदन उपन्यास में नारी के विविध रूप

6.5 सारांश

6.6 कठिन शब्द

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.8 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप :–

– 'सेवासदन' में नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं को जानेंगे।

– नारी के मनोवैज्ञानिक पक्ष को समझेंगे।

– आर्थिक विषमता हेतु नारी संघर्ष को जानेंगे।

6.2 प्रस्तावना

भारत के हिन्दू समाज में नारी का प्राचीन काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था, वह उच्च शिक्षा की अधिकारिणी थी तथा उसे समाज में महत्वपूर्ण अधिकार भी प्रदान किये जाते थे परन्तु नारी की यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकी और जैसे–जैसे भारत पर विदेशी आक्रमण हुए वैसे ही नारी की स्थिति शोचनीय हो गयी। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में उन सभी वर्गों को चित्रण का आधार बनाया जो कि शोषित एवं दलित थे। नारी की दयनीय स्थिति को हृदयंगम करके उसके विविध रूपों को उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की।

6.3 सेवासदन उपन्यास में चित्रित नारी

नारी के जीवन संघर्ष का चित्रण – जीवन संघर्ष में पिसने वाले व्यक्ति का चित्रण प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में सुमन के जीवन के चित्रण के माध्यम से किया है। इससे पता चलता है कि उस समय का व्यक्ति जीवन संघर्ष में किस प्रकार से पिस रहा था। लड़की का विवाह करने के चक्कर में जब दरोगा कृष्णचन्द्र वर की तलाश में निकलते हैं तो लेन–देन की बात सुनकर उनकी आँखों के आगे अंधेरा छा जाता है क्योंकि कोई चार हज़ार सुनाता कोई पाँच हज़ार और कोई इससे भी आगे बढ़ जाता। यह सब सुनकर कृष्णचन्द्र को अपनी ईमानदारी और सच्चाई पर पश्चाताप होने लगा और उन्होंने निश्चय कर लिया अब लोगों को खूब दबाऊँगा, खूब रिश्वत लूँगा। यह सुनकर उनकी पत्नी गंगाजली सिर झुकाये चुपचाप दुखित होती रही और आँखों से आँसू बहाती रही। यही कारण बनता है सुमन और गंगाजली के आर्थिक संघर्ष का। कृष्णचन्द्र के जेल चले जाने पर सुमन का सम्बन्ध जहाँ पर पक्का हुआ था वहाँ से साफ जवाब आ गया। गंगाजली के सामने अब विकट समस्या थी कृष्णचन्द्र के रुपये सब मुकदमें में लग चुके थे। एक साल की दौड़–धूप के बाद उमानाथ बिना दहेज वाले तीस वर्षीय वर को सोलह वर्षीय सुमन के लिए पा सके। गंगाजली के पूछने पर उन्होंने बताया – शहर में कोई कुरूप तो होता ही नही सुन्दर बाल उजले कपड़े सभी के हैं और गुण शील, बातचीत का तो पूछना ही क्या? बात करते मुँह से फूल झड़ते हैं नाम है गजाधर प्रसाद। परन्तु जब गंगाजली ने दामाद को देखा तो खूब रोई उसे ऐसा दुख हुआ मानों सुमन को कुएँ में डाल दिया।

ससुराल में आकर सुमन की स्थिति की दारुण कथा प्रारम्भ होती है दो महीने बाद ही गजाधर की बूढ़ी बुआ चल बसी। सुमन को चौका बर्तन, नल से पानी भरने आदि सभी कार्य करने पड़े। मकान में केवल दो कोठरियाँ थीं और एक सायबान। दीवारों में चारों ओर लोनी लगी थी। बाहर से नालियों की दुर्गन्ध आती रहती थी। धूप और प्रकाश का कहीं गुजर नहीं।

गजाधर ने सुमन को घर की स्वामिनी बना तो दिया पर वह स्वभाव से कृपण था। सुमन भी गृह प्रबन्ध में कुशल न होने के कारण आवश्यक और अनावश्यक खर्च में भेद नहीं कर पाती थी। उसने गृहिणी बनने की नहीं अपितु इन्द्रियों के आनन्द भोग की शिक्षा पाई थी। अतः महीना पूरा होने से पहले ही रुपये खर्च हो जाते। बातों–बातों में दोनों का झगड़ा हो गया। अन्त में सुमन ने अपनी हँसुली गिरवी रख दी। गजाधर कारखाने से लौटते ही एक दूसरी दुकान

पर हिसाब–किताब लिखने जाने लगा। वहाँ से आठ बजे लौटता। उसका संचयशील हृदय खा–पीकर बराबर वाली दशा से बड़ा दुखी रहा करता था। उस पर सुमन अपने फूटे भाग्य का रोना रोती रहती थी। गजाधर को स्पष्ट दिखाई देता था कि सुमन का हृदय उसकी ओर से शिथिल होता जा रहा है। उसे यह न मालूम था कि सुमन मेरी प्रेम रसपूर्ण बातों से मिठाई के दोनों को अधिक आनन्दप्रद समझती है अतएव वह अपने प्रेम और परिश्रम से फल न पाकर, उसे अपने शासनाधिकार से प्राप्त करने की चेष्टा करने लगा। इस प्रकार दोनों में तनातनी बढ़ती गयी।

सुमन पड़ोस की स्त्रियों में बैठने लगी। उसके पड़ोस में भोली नाम की वेश्या रहती थी वह भी सुमन के यहाँ आ जाती थी। यह बात गजाधर को बुरी मालूम होती थी। एक बार वकील साहब के यहाँ भोली का मुजरा हुआ और रात में देर से सुमन घर पहुँची तो गजाधर उससे इतना नाराज हुआ कि उसे घर से निकाल दिया। वह शरण लेने पद्मसिंह के घर पहुँची पर उन्होंने भी बदनामी के भय से उसे निकाल दिया। अन्त में उसे भोली के यहाँ शरण मिली।

उमानाथ के घर से गंगाजली की हालत दयनीय थी। वह बीमार थी, उसे देखने उमानाथ गये। वह बेसुध पड़ी हुई थी। बिछावन चिथड़ा सा हो रहा था। साड़ी फट कर तार–तार हो गयी थी, शांता उसके पास बैठकर पंखा झोल रही थी। यह करुणाजनक दृश्य देखकर उमानाथ रो पड़े। गंगाजली की मृत्यु के उपरान्त शांता की दशा नौकरानी जैसी हो गई। कृष्णचन्द्र जेल से छूटकर आये, तो उन्होंने घर गृहस्थी संभालने की कोई चिन्ता न की और जब शांता का विवाह न हो सका तो आत्महत्या कर ली।

उपन्यास के नारी पात्र जीवन संघर्ष से जूझते हैं जिसका सबसे बड़ा उदाहरण सुमन है। प्रेमचन्द ने वेश्यावृत्ति जो दहेज का दुष्परिणाम है, को प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ स्त्री की उन कोमल भावनाओं से हमें अवगत कराया है जो उनके भीतर के बदलाव का कारण होते हैं । जिन हालात के चलते सुमन अपने को वेश्यावृत्ति में झोंक देती है।

सुमन में संयम तो है पर लिप्सा हेतु संघर्ष की लिप्सा वह नहीं जो महत्वाकांक्षा कही जा सके, वह लिप्सा जो सीमाओं के दुख से मुक्ति चाहती है यदि सुमन सुख और प्रतिष्ठा चाहती है तो उसमें पाप नहीं कमाती पर उसे पाने के जिस मार्ग का वह अवलम्बन करती या जिसका उसे अवलम्बन करना पड़ता है बस वही, और वही पाप है। इसी लिप्सा का संयम के सुख से संघर्ष है।

नारी के आदर्श रूप का चित्रण – प्रेमचन्द ने समाज की विभिन्न समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में किया है तो वहीं नारी के आदर्श रूप को भी वर्णित किया है। उपन्यास की नायिका सुमन प्रतिष्ठित परिवार में पली हुई स्वरूपवान और अभिमानी नवयुवती है, पिता को रिश्वतखोरी के अपराध में जेल हो जाने के कारण पराश्रित हो जाती है और फलतः उसके मामाजी उसका विवाह अयोग्य वर गजाधर के साथ कर देते हैं। गजाधर सुमन के समान न तो गुणवान था और न ही बुद्धिमान और रूपवान। गजाधर एक 75 रुपए तनखाह पाने वाला साधारण नौकर है जो सुमन के साथ मेल नहीं खाता है, हर सूरत से सुमन के सम्मुख फीका पड़ा हुआ है। सुमन के रूप पर गजाधर मुग्ध है, किन्तु बड़े घर की बेटी की एक दरिद्री वातावरण में कैसे निभ सकती है। सगर्वा प्रकृति की सुमन पास–पड़ोस में अपने अमीराना व्यक्तित्व के कारण काफी प्रसिद्ध हो जाती है, पर प्रत्यक्ष जिन्दगी में अभावों की उपस्थिति ने उसके मूल अहं को अधिकाधिक जागृत

किया – यहाँ तक कि उसका प्रत्येक व्यवहार पति की शान्ति को चुनौती देने लगता है। दोनों के बीच तनावों की स्थिति इतनी नाजुक हो जाती है कि दोनों की सहन–शक्ति टूटने के स्तर तक पहुँच जाती है। बीच–बीच में सुमन के मानस पर पारंपरिक आदर्शों का प्रभाव पड़ता है, वह अपने–आपको रोकने का प्रयत्न भी करती है किन्तु कृत्रिम बन्धनों से मुक्ति पाने की उसकी कामना इतनी बलवती है कि अन्त में सुमन भोलीबाई वेश्या का आश्रय ले लेती है। भारतीय परिवार में पली हुई लड़की वेश्या व्यवसाय की ओर क्यों आकर्षित हुई? क्या सुमन गजाधर के कमजोर व्यक्तित्व से मुक्त नहीं होना चाहती? यहाँ पत्नी का पति के पवित्र प्रभाव से मुक्त होना नहीं है अपितु एक मानिनी स्त्री का अनमेल पुरुष व्यक्तित्व से छुटकारा पाना है। कृत्रिमता की अस्वीकृति से ऐसे स्थान की स्वीकृति है जहाँ क्षणिक क्यों न हो, मुक्ति का आनन्द मिलता है। यह नहीं कि अनमेल पति से मुक्ति पाने का साधन वेश्या व्यवसाय है। वेश्या–व्यवसाय भी एक भयंकर गुलामी है जहाँ न व्यक्तित्व की पवित्रता सुरक्षित रहती है न आत्मा की प्रतिष्ठा। एक बन्धन से मुक्त होकर उपन्यास की नायिका स्वाधीनता की सांस लेना चाहती है। उसने अपने अनुभवों से जाना कि समाज में वेश्याओं की कितनी ऊँची कद्र होती है। धर्म का, आदर्शों का, सुधारों का नारा लगाने वाले बड़े–बड़े व्यक्तित्व भोली भाई की एक नज़र के भूखे हैं। वह अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की रक्षा करने के लिए भोलीबाई का मार्ग अपनाती है। किन्तु उस जीवन का अनुभव लेने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचती है कि उसका वह मार्ग भी घृणित है – वहाँ भी आत्मा की स्वतन्त्रता का आनन्द नहीं। वह फिर से छटपटाने लगती है। परदे के बाहर आने की कामना की थी, फिर से बंधनों में फँस जाती है। सुमन के मन में कई मानसिक उद्वेलन, कई आन्दोलन, आतंक, क्रोध आदि भावनाओं का चक्र आरम्भ हो जाता है। वेश्या व्यवसाय की गर्त में पड़ी हुई सुमन एक ऐसे पुरुष की खोज में लग जाती है जिसके सम्मुख वह अपनी छटपटाहट को व्यक्त कर सके, जिसके साथ होकर स्वाधीनता का आनन्द ले सके। सुमन के यहाँ आने वाले कई क्षुद्र लोगों में एक युवक सदनसिंह है जिसमें अन्यों की सी कायरता एवं क्षुद्रता नहीं है। सदन सुस्वरूप युवक है जिसका हृदय सरल है, सुमन पर उसका निस्वार्थ प्रेम है। सुमन सदन की ओर खिंचती चली जाती है। वेश्या व्यवसाय करके भी वह सदन के सामने अपने व्यक्तित्व की पवित्रता को प्राप्त करती है। सुमन का सदन की ओर आकर्षित होना क्या एक बंधन से मुक्ति पाने की कामना का परिचायक नहीं है? वेश्या–व्यवसाय जैसे घृणित कर्म से छुटकारा पाने की छटपटाहट का अन्त हो जाता है परन्तु वेश्यालय में रह कर भी सुमन चरित्रवान बनी रहती है। सुमन वेश्यालय से निकल विधवाश्रम की राह स्वीकार करती है। सुमन के आदर्श जीवन की यात्रा का प्रारम्भ यहाँ से होता है। इधर सुमन की बहन शांता का विवाह हो जाता है किन्तु सदन के पिता को इस बात का पता चल जाने पर कि शांता सुमनबाई वेश्या की बहन है, शांता को बिना साथ लिये सदन की बारात लौट जाती है। द्रवित होकर शांता आत्महत्या का प्रयास करती है परन्तु सदन उसे बचा लेता है। सुमन के समझाने पर सदन शांता को अपनाता है और सुमन विधवाश्रम से निकल सदन के घर रहने लगती है। बहन और बहनोई की सेवा करना, पास–पड़ोस के श्रमिकों की परिचर्या करना, आत्म–शुद्धि के लिए धार्मिक ग्रन्थों का पठन–पाठन करना – इसमें वह अपना समय बिताना चाहती है। सेवा के पवित्र कार्य में आत्मा की स्वाधीनता का आनन्द लेने की उसकी कामना भी पूरी नहीं होती। अजीब संयोग है कि जिस सदन को उसने प्यार किया था, उसी के यहाँ एक सेविका के रूप में रहना पड़ रहा है। उसका सेवा भाव बढ़ गया है। ज्ञान की जगह भक्ति ने ली है किन्तु शांता और सदन के मुँह से कृतज्ञता के शब्द नहीं अपितु अविश्वास एवं घृणा की भावना प्रकट होने लगती है। सगर्वा एवं अपनी

स्वतन्त्र चेतना की रक्षा करने वाली सुमन के लिए यह असहनीय हो जाता है। फिर से बन्धन मुक्ति की छटपटाहट आरम्भ होने लगती है। वह वहां से भाग जाना चाहती है। पर कहां? बिना सहारे के संसार में रहने के विचार से उसका कलेजा कांपने लगता है किन्तु मुक्ति की कामना इतनी व्यग्र है कि वह अपना भविष्य निश्चित कर लेती है। उसके अनुसार, 'जीवन का प्रभात होगा, कभी उसमें भी उषा की झलक दिखायी देगी, कभी सूर्य का प्रकाश होगा।' सुमन पति गजाधर के आदेशानुसार एवं विट्ठलनाथ के प्रयत्न हेतु सेवासदन की राह लेती है। भौतिक आकर्षणों से मुक्त होकर सेवा के पवित्र कर्म में अपने आपको अर्पित कर देती है। अब सुमन केशहीन, आभूषण विहीना स्त्री है। उसमें न वह कोमलता है, न वह चंचलता, न वह मुस्कराती हुई आँखें, न हँसते हुए होंठ। रूप–लावण्य की जगह पवित्रता की ज्योति झलकती हुई दिखाई देती है।

अतः स्पष्ट है कि सुमन की जीवन यात्रा स्वतन्त्र चेतना की यात्रा है – आत्मा में छिपे परमात्मा को पाने की यात्रा है। चंचलचता और तृष्णा से विरक्त हो वह धार्मिक पथ का अनुसरण करती है। धन की अपेक्षा वह सेवा–निरत हो जीवन को परिवर्तित कर देती है। उसका त्यागमय जीवन और सेवा–भाव उसे अत्यन्त ऊँचे स्थान पर बिठा देता है।

नारी का मनोवैज्ञानिक पक्ष – 'सेवासदन' उपन्यास में नारी भावना के पीछे छुपे दृष्टिकोण में प्रेमचन्द का नारी मनोविज्ञान बहुत महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द के सेवासदन उपन्यास में सुमन, शान्ता, सुभद्रा, गंगाजली, भोली, भामा आदि स्त्री पात्रों की मनोदशा, मनोव्यथा, मनोभावना को बड़ी बारीकी से पकड़ा है। उपन्यास की नायिका सुमन कभी विद्रोहिणी गर्वीली कभी त्याग–ममता की छवि कभी असहाय कभी शक्तिशाली बन जाती है। सुभद्रा कभी नीरस कभी प्रेमभरी, शान्ता कभी शान्त कभी इच्छाओं से भरी, कभी भोली भाली, कभी स्वार्थी, गंगाजली कभी हतोत्साहित, कभी उत्साह भरी। भामा कभी क्रोध, कभी क्षमा यह सभी मनोभाव 'सेवासदन' के स्त्री पात्रों मे उपस्थिति और अनुपस्थित चलते रहते हैं। इसके पीछे छिपा नारी मनोविज्ञान उभर कर आता है।

उपन्यास की सुमन बहुत गर्वीली है उसकी इच्छाएँ और आकाक्षाएँ बहुत ऊँची हैं अपने पिता के घर में शान से रहती है। पिता कृष्णचन्द अपनी बेटियों की सभी इच्छाएँ पूरी करते हैं। सुमन जो चीज़ पसन्द करती है वह उसे हर कीमत पर लेना चाहती है परन्तु शान्ता को जो मिलता है उसे सहर्ष स्वीकार करती है। सुमन का यह चरित्र आरम्भ से अन्त तक उतार चढ़ाव देखता है इसके पीछे छिपा नारी मनोविज्ञान ही है जो कभी दृढ़ और कभी द्वन्द्व भरा चलता रहता है। संघर्ष उसके जीवन पर्यन्त चलता रहता है। पिता के घर रहते हुए सुमन के जीवन में ऐसा मोड़ आता है कि उसकी शादी बेमेल गजाधर से कर दी जाती है जहाँ पग–पग उसके आत्म सम्मान पर गहरी चोट लगती है और एक दिन पति द्वारा दुत्कार दी जाती है, "चली जा मेरे घर से।"

स्वाभिमानी सुमन न पैर पड़ती है न गिड़गिड़ाती है अपितु उसका स्वाभिमान जाग उठता है, "हाँ यों कहो कि मुझे रखना नहीं चाहते मेरे लिए सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मँजूरी करूँगी वहीं पेट पाल लूंगी" सुमन का यही नारी मनोविज्ञान ही है जो उसे दृढ़ बनाता है। यदि सुमन अपने सौन्दर्य से पति को आकर्षित करती है किन्तु उसकी गृह प्रबन्ध की अनभिज्ञता सदैव खटकती है। सुमन और गजाधर के पीछे गहरा

मनोविज्ञान है जिससे दोनों के मन में एक दूसरे को लेकर खटक बनी रहती है। सुमन को धन की प्यास तीव्र है इसलिए उसे गजाधर के पास सन्तुष्टि नहीं मिल पाती है। वह उसे सदन में खोजने की कोशिश करती है। लेकिन विवाहित और गजाधर से ठोकर खाने के बाद वह संभलकर चलना चाहती है लेकिन यहाँ पर भी मन का द्वन्द्व जोर पकड़ता है। सदन से मिलने के द्वन्द्व के पीछे नारी की मनोदशा ही है जो लगाव महसूस करती है, "सदन के आने का समय हुआ। सुमन आज उससे मिलने के लिए बहुत उत्कंठित थी। आज यह अन्तिम मिलाप होगा। मुझे यह वियोग सहने की शक्ति दीजिए नहीं इस समय सदन न आये तो अच्छा है, उससे न मिलने में ही कल्याण है। कौन जाने उसके सामने मेरा संकल्प स्थिर रह सकेगा या नहीं। पर आ जाता तो एक बार दिल खोलकर उससे बातें कर लेती उसे इस कपट सागर में डूबने से बचाने की चेष्टा करती।" यह नारी मन ही है जो त्याग, प्रेम, चिन्ता सभी भावों के समावेश के साथ कभी–कभी गहरे द्वन्द्व में फंस जाता है। यहां नारी स्थिति का भी वर्णन है जो परिस्थितिवश उपजा है। सदन की बारात वापिस जाना और सुमन का सदन को फटकारना उसके मन का सारा इकट्ठा हुआ बवाल बाहर निकलने का परिचायक है। प्रेमचन्द नारी की मनोदशा का यथार्थ रूप में वर्णन करते हैं। प्रेमचन्द को यह विदित था कि "नारी में मान सामान्य सी बात है किन्तु जब स्त्री में इस मान भावना का उदय हो जाता है तब वह दुराग्रह का रूप धारण करता है। उस अवस्था में ऐसा मान अनुचित तथा अग्राह्य प्रतीत होता है क्योंकि सीमित मान जहां मनोविनोद के कारण ग्राह्य है, वहाँ असीमित मान उदण्डता के कारण ही अग्राह्य बन जाता है।"

उमानाथ की पत्नी जाह्नवी इस मान का जीता–जागता उदाहरण है। जाह्नवी के मन में सुमन और शान्ता के लिए प्रेम नहीं है। वह उमानाथ से भी उनके प्रति द्वेषपूर्ण बातें करती हैं जिस कारण उनका जीवन कष्टमय बनता है। शान्ता की बात करे तो वह सदन से विवाह की आस लगाए हुए है। उसे बेचैनी रहती है कि किसी भी तरह सब सही हो जाए, "शान्ता को अभी तक यह आशा थी कि कभी न कभी मैं पति के घर अवश्य जाऊँगी, कभी न कभी स्वामी के चरणों में अवश्य ही आश्रय पाऊँगी। वह व्यथित हो कह उठती है, "वह कहाँ है मेरे स्वामी मेरे जीवन का आधार, उन्हें बुलाओ, आकर मुझे दर्शन दे, बहुत जलाया है, इस दाह को बुझाए मैं उनसे कुछ पूछूंगी। आज मेरी उनसे तकरार होगी, नहीं, मैं उनसे तकरार न करूँगी, केवल यही कहूँगी कि अब मुझे छोड़कर कहीं मत जाओ।" शान्ता की यह बातें उसके अर्न्तमन की बातें हैं। वह सदन को लेकर व्यथित है। इस हेतु वह अचेतन अवस्था में पहुँचती है और फिर सुमन के प्रयत्नों के बाद चेतन अवस्था में आती है। सदन को पाने के उपरान्त वह सुमन को भी शक की नज़र से देखती है। वह यह भूल जाती है कि इस बहन के कारण ही वह सदन को पा सकी है। यह शान्ता का मनोविज्ञान ही है कि जो बचपन में उसे शान्त और बाद में उसे इतना विद्रोही बना देता है। सेवासदन की सुभद्रा का चरित्र निरन्तर परिपक्वता की तरफ बढ़ता दिखाई देता है। सुभ्रदा मातृत्व सुख से वंचित रह गयी तभी तो वह पदमसिंह के भतीजे सदन के प्रति अपनी ममता न महसूस कर पाई। सदन के घोड़े की मांग वह अपने पास इकट्ठा हुआ सारा धन देकर पूरी करती है। उपन्यास की पात्रा वेश्या भोली परिस्थिति वश इस धन्धे में आ गयी। उसके चाहने वाले कितने थे परन्तु नारी का मन झूठे सम्मान को स्वीकार नहीं कर पाता है वह कहती है, "हम कोई भेड़–बकरी नहीं है कि माँ–बाप जिसके गले में मढ़ दे, बस उसी के हो रहे। अगर अल्लाह को मंजूर होता कि तुम मुसीबतें झेलो, तो तुम्हें परियों की सूरत क्यों देता? यही

बेहूदा रिवाज़ यहीं के लोगों में है कि औरत को इतना जलील समझते हैं।" भोलीबाई को व्यवस्था के प्रति इतना आक्रोश है, कि जिस कारण से वह वेश्या जीवन में लिप्त हुई। भोली बाई चेतन है, जिसके कारण उसमें इस परिस्थिति से लड़ने की क्षमता है। उपन्यास की गंगाजली कृष्णचन्द्र के जेल जाने से अस्थिर एवं असहाय महसूस करती है। उसे अपनी अदूरदर्शिता पर क्रोध आता है। शोक और आत्मवेदना की एक लहर बादल से निकलने वाली धूप के सदृश उसके हृदय पर आती हुई मालूम हुई। इसके पीछे नारी का मनोविज्ञान ही है जो अपने पति को जेल जाता देखकर और दो बिन ब्याही लड़कियों की चिन्ता से इतनी विचलित हो जाती है। घृणा का भाव उत्पन्न होने लगता है और मन एक तरह से अचेतन अवस्था में पहुँच जाता है। उपन्यास के विभिन्न नारी पात्रों की मनोदशा से उनके मनोविज्ञान का पता लगता है। 'सेवासदन' में नारी मन की विभिन्न गुत्थियाँ सुलझाने में प्रेमचन्द सफल हुए हैं। प्रेम, घृणा, पीड़ा को मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रित किया है तथा परिवेशजन्य नारी मानसिकता का चित्रण हुआ है। इसमें नारी पात्रों के अर्न्तद्वन्द्व, अचेतन मनस्थिति, अहम, कुंठा सभी भावों का चित्रण हुआ है।

6.4 सेवासदन उपन्यास में नारी के विविध रूप

बेटी के रूप में – दारोगा कृष्णचन्द की लाडली बड़ी बेटी सुमन के आरंभिक जीवन से संबद्ध कुछ सूचनाएँ उपन्यास में यत्र–तत्र दी गयी हैं। वह "दूसरों से बढ़चढ़कर रहना चाहती थी। यदि दोनों बहनों को बाजार से एक ही प्रकार की साड़ियाँ आती थीं तो सुमन मुँह फुला लेती थी। शान्ता (छोटी लडकी) को जो कुछ मिल जाता, उसी में प्रसन्न रहती थी।" दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी हैसियत को देखते हुए काफी शाहखर्च थे। वे लड़कियों को ऐशोआराम से रहने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ते थे। बाज़ार से उनके लिए अच्छे–से–अच्छे कपड़े और नयी–नयी मनबहलाव की चीजें लाते। उन्होंने लडकियों को पढ़ाने–लिखाने और कढ़ाई–सिलाई की शिक्षा देने के लिए एक विशेषज्ञ ईसाई महिला को नियुक्त कर दिया था।

अपने इस परिवेश मे सुमन जिन्दगी के प्रति काफी लापरवाह हो गयी थी। वह सुन्दर तो थी ही, इस परिवेश ने उसे चंचल और अभिमानी भी बना दिया था। भावनाओं और इच्छाओं की अबाध पूर्ति ने उसे सुखोपभोग का आदती बना दिया था। इस अच्छा खाने, अच्छा पहनने की प्रबल इच्छा की पूर्ति को ही उसने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया था। गुणवती होने के बावजूद 'उसने गृहिणी बनने की नहीं, इन्द्रियों के आनन्द भोग की शिक्षा पायी थी। अपने द्वार पर खोमचे वालों की आवाज सुन कर उससे रहा नहीं जाता।' सौन्दर्याभिमान ने उसे चंचल भी बना दिया था। प्रदर्शनप्रियता की आदत भी उसमें बाल्यकाल से ही जड़ जमा बैठी थी। इससे वह चूल्हा–चक्की से दूर ही रही। गृहस्थी के वास्तविक अर्थ को उसने समझा ही नही, इच्छाओं की पूर्ति और भोग–भावना ही उसके लिए सर्वस्व थी। ऐसी युवती के लिए स्वाभाविक था कि उसके मन मे एक सुन्दर और सम्पन्न पति की भी कामना रही हो। पिता दारोगा कृष्णचन्द्र के व्यक्तित्व और प्रभाव से वह इस ओर से भी निश्चिन्त थी। मध्यवर्गीय पारिवारिक संस्कार उसे इस कार्य में हस्तक्षेप की अनुमति नहीं देते थे। रिश्वत के मामले मे आरोपी कृष्णचन्द्र की कैद ने उसकी तमाम इच्छाओं को धराशायी कर दिया। मामा उमानाथ की अनुकम्पा से उसे 15 रुपये मासिक वेतन पर कारखाने में काम करने वाले अधेड़ उम्र के कुरूप और

अर्ध शिक्षित के साथ विवाह बंधन में बँधना पड़ता है। यहीं से उसके जीवन की त्रासदी आरम्भ होती है। इसी तरह से दूसरी बेटी शान्ता नाम के अनुसार ही शान्त थी। उसे जो मिलता वह सहर्ष स्वीकार कर लेती। उसमें सुमन की तरह न ही ज़िद थी और न ही अहंकार।

पत्नी के रूप में – सुमन के विवाह में वर को देखकर उसकी माँ गंगाजली ने माथा पीट लिया, "मानो लड़की को कुएँ में डाल दिया गया" ससुराल पहुँचने पर उसे और अधिक बुरी अवस्था का अनुभव हुआ। सीलन से भरी, चारों ओर गंदी नालियों से घिरी तीन रुपए मासिक की दो बन्द कोठरियों को देखकर उसका हृदय ग्लानि से भर गया। बूढ़ी फुवा के आसरे दो महीने थोड़े आराम से कटे। घर के सारे काम वे देख लेती थीं। लेकिन हैजे में उनकी मृत्यु के बाद घर में चूल्हा जलना बंद हो गया। कुछ दिन बाजार से लायी गयी पूरियों से काम चला। ऐसा सर्वथा संभव न देख गजाधर ने एक दिन रात में ही उठकर बर्तन मांजे और चौका धो–पोंछ दिया। नलके से पानी भरकर रख दिया। शर्म के मारे दूसरे दिन घर का सारा काम–काज स्वयं सुमन को संभालना पड़ा। बर्तन मांजते समय उसकी आंखों से आँसुओं की धार प्रवाहित होती रहती थी।

गजाधर हर तरह से सुमन को खुश रखने का प्रयास करता। कारखाने से लौटकर वह पाँच रुपए के लिए अतिरिक्त काम करने लगा। मासिक वेतन सुमन के हवाले कर देता। पड़ोसियों से सुमन की तारीफ के पुल बांधने लगा। पैसे समाप्त होने पर कर्ज ले आता। लेकिन जब कर्ज मिलना बंद हो गया तो उसने सुमन से खर्च में किफायत की बात कही। जब उसे यह सुनना पड़ा कि इतने पैसों में काम नहीं चलेगा तो गजाधर ने झिड़की के साथ कहा कि "मैं डाका तो नहीं मार सकता।" दिन–प्रतिदिन तकरार बढ़ती गई। सुमन को बारजे की चिक से तांक–झांक करने की मनाही की गयी।

इन घुटन भरी परिस्थितियों में सुमन की दृष्टि अपने घर के सामने वाली वेश्या भोली की ओर गई। वेश्या–चरित्र से उसे अत्यन्त घृणा थी। लेकिन जब एक दिन मौलूद (जन्मदिन से सम्बद्ध धार्मिक उत्सव) के अवसर पर भोलीबाई के यहाँ प्रतिष्ठित धार्मिक व्यक्तियों के जमावड़े को देखा तो उसकी आंखे चौंधिया गईं। तब से वेश्याओं से सम्बद्ध उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगा। घर में उसका मन लगता नहीं था। पड़ोसियों के यहाँ बैठ कर समय काटती थी। एक दिन भोली के बहुत आग्रह पर संध्या के समय उसके घर चली गयीं। बातचीत में देर हो गयी। वापस लौटने पर गजाधर की डांट–फटकार सुननी पड़ी। लेकिन जब मौलूद के अवसर पर भोली के यहाँ उपस्थित तथाकथित सज्जन लोगों के चरित्र का उद्‌घाटन गजाधर ने किया तो फिर से उसमें वेश्याओं के प्रति घृणा भाव जागृत हो गया। उसमें धर्मनिष्ठा का उदय हुआ। प्रतिदिन गंगास्नान और रामायण का पाठ करना शुरू कर दिया।

सुमन रामनवमी के अवसर पर जन्मोत्सव देखने के लिए एक बड़े मन्दिर में सहेलियों के साथ गयी तो वहाँ नजारा ही दूसरा दिखाई दिया , "वहीं पड़ोसिन भोली बैठी गा रही है। सभा में एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वैष्णव तिलक लगाए, कोई भस्म लगाए, कोई गले में कंठी माला डाले और राम–राम की चादर ओढ़े, कोई गेरुआ वस्त्र

पहने। उनमें से कितनों को ही सुमन नित्य गंगा–स्नान करते देखती थी, उन्हें धर्मात्मा विद्वान समझती थी। भोली जिसकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्र से देख लेती थी, वह मुग्ध हो जाता था, मानो साक्षात् राधा–कृष्ण के दर्शन हो गए"

इस दृश्य से सुमन के विश्वास को एक गहरा धक्का लगा। वह सोचने लगी कि 'भोली के सामने केवल धन ही नहीं सिर झुकाता, धर्म भी उसका कृपाकांक्षी है।' उसे अनुभव हुआ कि ठाकुरजी के पवित्र निवास–स्थान की पवित्रता को चार–चाँद लगाने का कार्य भी भोली द्वारा ही सम्पन्न होता है। हाँ विस्तार से प्रेमचंद ने धार्मिक पाखण्ड का पर्दाफाश करते हुए सुमन के मन में आ रहे परिवर्तन पर एक अवरोध लगाया है। उसने गंगा–स्नान छोड़ दिया, रामायण पोथी बांध कर रख दी।

सुमन का इधर–उधर आना–जाना बंद हो गया। उसका स्वास्थ्य दिन–प्रतिदिन गिरने लगा। इससे गजाधर को चिंता हुई। उसने पुनः सैर और गंगा–स्नान के लिए सुमन को प्रेरित किया। उसके स्वास्थ्य में सुध ाार होने लगा। एक दिन बेनीबाग के चिड़ियाघर की बेंच पर बैठने को लेकर उसके चौकीदार से सुमन की तकरार हो रही थी, उसी बीच वकील पद्मसिंह अपनी पत्नी सुभद्रा के साथ गाड़ी से पहुँचे। चौकीदार को डांट–फटकार के बाद जब सुमन से सुभद्रा की बातचीत हुई तो सुभद्रा ने उसे एक भली औरत समझ कर अपनी गाड़ी से घर छोड़ा। तब से सुमन का सुभद्रा के यहाँ आना जाना शुरू हो गया। इसे लेकर गजाधर से कुछ कहा–सुनी होती रही। म्युनिसिपैलिटी का सदस्य चुने जाने पर अपने घर आयोजित आनन्दोत्सव में पद्मसिंह को विवश होकर भोली के मुजरे का भी आयोजन करना पड़ा। सुभद्रा के अनुरोध पर सुमन को भी वहाँ रुकना पड़ा। रात में बहुत देर से घर वापस आने पर गजाधर आपे से बाहर हो गया। लेकिन यहाँ प्रेमचन्द की सुमन अन्याय के सामने नहीं झुकती। गजाधर जब उसे घर से निकलने के लिए कहता है, तब भी उसका आत्मसम्मान उसे पति के समक्ष क्षमा की भीख नहीं माँगने देता। वह पति गृह का त्याग कर देती है।

पति द्वारा प्रताड़ित सुमन सुभद्रा की शरण में जाती है। वहाँ उसे शरण तो मिल जाती है, लेकिन सुमन को लेकर पद्मसिंह के संबंध में झूठी अफवाहें फैलायी जाती हैं। इससे विचलित होकर वे सुमन को अपने नौकर के माध्यम से घर छोड़ने का आदेश देते हैं। सुमन के सामने भोली का द्वार खटखटाने के अतिरिक्त कोई चारा नही दिखायी देता। भोली के यहाँ वह इस उद्देश्य से गयी थी कि उसके माध्यम से एक छोटे से आवास की व्यवस्था हो तो वह सिलाई आदि करके स्वावलंबी बन जाएगी। लेकिन भोली द्वारा बहुत ऊँच–नीच समझाने के बाद वेश्यावृत्ति के लिए वह तैयार हो जाती है।

पद्मसिंह के यहाँ आयोजित मुजरे में भोली की स्थिति को देखकर उसकी स्वावलंबिता के प्रति सुमन के मन में ईर्ष्या होती है। उसे विश्वास है कि वह भोली से सुन्दर है और उसके गले की मिठास भी भोली से अधिक है। इससे वह इस परिणाम पर पहुँचती है कि "वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियाँ हैं। उसकी दूकान खुली है, इसलिए ग्राहकों की भीड़ है, मेरी दूकान बंद है, इसलिए कोई खड़ा नहीं होता। वह कुत्तों के भूँकने की परवाह नहीं करती, मैं लोक–निन्दा से डरती हूँ। वह परदे के बाहर है, मैं परदे के अंदर हूँ। इसी लज्जा, इसी उपहास के भय ने मुझे दूसरों की चेरी बना

रखा है।" अपने इस परिवर्तित चिन्तन के कारण ही सुमन भोली की राय को स्वीकार कर वेश्या व्यवसाय की ओर उन्मुख होती है। यौन–कुकर्म से भिन्न वह इसे स्वावलंबन और अपनी मुक्ति का मार्ग समझती है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सुमन एक तरफ हिंदू मध्यवर्गीय विवाह प्रथा की कुसंगतियों की शिकार बनती है, तो दूसरी तरफ गृहस्थ जीवन की संकीर्णता और विधि निषेधों से ही प्रताड़ित नहीं होती, वरन् वकील पद्मसिंह की झूठी मान–सम्मान की चिन्ता भी उसे पतित व्यवसाय की ओर अग्रसर करती है। पति द्वारा प्रताड़ित कर घर से निकाले जाने में सुमन को उतनी पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ, जितनी कि पद्मसिंह द्वारा अपने घर से निकाले जाने पर। वहीं शान्ता एक आदर्श पत्नी के रूप में हमारे सामने आती है। सदन के बारात सहित वापिस चले जाने पर वह सदन को भूलती नहीं अपितु आत्महत्या का प्रयत्न भी करती है। उसके अनुसार कि उसने मन ही मन सदन को पति के रूप में वरण कर लिया है। वह यह समझती है कि और किसी को पति के रूप में वह स्वीकार नहीं कर सकती अपितु उसके लिए यह पाप होगा। इसी तरह सुभद्रा भी बड़े घर के वकील पद्म सिंह की पत्नी है। वह एक पतिव्रता पत्नी के रूप में हमारे सामने आती हे। ज्यादा पढ़ी–लिखी न होकर भी वह दूरदर्शिता से काम लेती है। वह पति को सही सलाह देने वाली पत्नी है। पति द्वारा सुमन को घर से बाहर निकालने पर वह पति की कड़ी भर्त्सना भी करती है।

चिम्मनलाल, सेठ बलभद्रदास तथा पं. दीनानाथ भी अपनी तथाकथित शुभकामना से प्रेरित विधवाश्रम पहुँचने लगे। आश्रम के संचालक बिट्ठलदास के सामने समस्या खड़ी हो गयी। जहाँ कभी बेल बूटे की कढ़ाई का प्रस्ताव लेकर अबुलवफा और अब्दुललतीफ पहुँच जाते तो कभी मूर्ख सेठ चिम्मनलाल 'भर्तृहरि के उत्तम नाटक शकुंतला' के मंचन का प्रस्ताव लेकर और कभी सेठ बिट्ठलदास आश्रम में फूल–पौधे भेजकर स्वयं बागवानी की व्यवस्था के लिए हाजिर होने लगे। बिट्ठलदास को बड़ी ही कठिनाई से इन लोगों के साथ निबटना पड़ा। सेठ बलभद्रदास तो विधवाश्रम को मिटाने की धमकी देकर वापस लौटे।

पद्मसिंह के यह पूछने पर कि सुमन आश्रम में कैसे रहती है, बिट्ठलदास बताते हैं, 'ऐसी अच्छी तरह मानो वह सदा आश्रम में रही है, सब काम करने को तैयार और प्रसन्नचित्त। अन्य स्त्रियाँ सोती रहती हैं और वह उनके कमरे में झाडू लगा आती है। कई विधवाओं को सीना सिखाती है, कई उससे गाना सीखती हैं। इस चारदीवारी के भीतर अब उसी का राज्य है।" इस वास्तविकता के बावजूद सुमन की उपस्थिति आश्रम के लिए एक समस्या बन गई। अपनी बहन शान्ता के अभिशप्त जीवन के लिए वह स्वयं को उत्तरदायी मानती थी। जब शान्ता को भी आश्रम में रखने की सूचना उसे मिली तो वह आत्मग्लानि में डूब कर आत्महत्या का निश्चय कर लेती है। लेकिन गजानंद द्वारा सेवाधर्म की शिक्षा से वह आत्महत्या से विमुख होती है।

जब प्रभाकर राव ने अपने पत्र द्वारा सुमन के रहस्य का उद्घाटन कर दिया तो आश्रम में हड़बड़ी मच गयी। बहुत सी विधवाओं ने आश्रम छोड़ने का निर्णय कर लिया। ऐसी स्थिति में सुमन को आश्रम छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। शान्ता को लेकर अनिर्दिष्ट मार्ग पर निकल पड़ी। यहाँ स्पष्ट है कि अपने अटूट सेवाधर्म के बावजूद सुमन को वेश्या जीवन के अभिशाप के कारण विधवाश्रम में भी रहने की अनुमति नहीं मिल सकी। चाहे पति–गृह हो या

पद्मसिंह–सुभद्रा का आश्रय, चाहे वेश्यालय हो या विधवा आश्रम, सर्वत्र सुमन को प्रताड़ित होना पड़ा। लेकिन आत्म–सम्मान की रक्षा और सेवा–धर्म भावना से उसने कभी मुख नहीं मोड़ा।

बहन के रूप में – विधवाश्रम से निकलकर अपने मामा उमानाथ के गाँव अमोला जाने के प्रयास में गंगा के किनारे अचानक अत्यन्त नाटकीय ढंग से सुमन और शान्ता का साक्षात्कार सदन सिंह से होता है। सदन सिंह आत्मनिर्भर बनकर शान्ता को पत्नी के रूप में ग्रहण करने के उद्देश्य से मल्लारी (घटवारी) का काम शुरू किए हुए है। घाट पर पहुँचकर कुशल–क्षेम के बाद सुमन गंगा पार जाने के लिए नौका ठीक करने की बात कहती है तो सदन उत्तर देता है, "अब तो तुम अपने घर पर पहुँच गई, अमोला क्यों जाओगी? तुम लोगों को कष्ट तो बहुत हुआ, पर इस समय तुम्हारे आने से मुझे जितना आनन्द हुआ, यह वर्णन नहीं कर सकता। मै तुम्हारे पास आने का इरादा कर रहा था, लेकिन काम से छुट्टी नहीं मिलती। मैं तीन–चार महीने से मल्लार का काम करने लगा हूँ। यह तुम्हारा ही झोपड़ा है, चलो अन्दर चलो।"

सुमन शान्ता के साथ वहाँ रहने लगी। थोड़े ही दिनों के बाद सदन सिंह से शान्ता की शादी उसी झोंपड़े में हुई। सुमन ने वहीं जिन्दगी काट देने की सोची। घर–परिवार का पूरा कार्य–भार अपने ऊपर ले लिया। इसका जिक्र करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है, "सुमन घर का सारा काम करती है और बाहर का भी। वह घड़ी रात रहे उठती है और स्नान पूजा के बाद सदन के लिए जलपान तैयार करती है। फिर नदी के किनारे जाकर नाव खुलवाती है। नौ बजे भोजन बनाने बैठ जाती है। ग्यारह बजे यहाँ से छुट्टी पाकर कोई–न–कोई काम करने लगती है। नौ बजे रात के बाद पढ़ने बैठ जाती है। शान्ता और सदन दोनों कहीं उसकी ओर से निश्चिन्त हैं, मानों वह घर लौंड़ी है और चक्की में जुते रहना ही उसका धर्म है।" धीरे–धीरे शान्ता और सदन की सुमन के प्रति उपेक्षा बढ़ती गई। पद्मसिंह के नौकर जीतन द्वारा मल्लाहों के सामने उसकी राम कहानी का पर्दा खोल दिया गया। मल्लाह और मल्लाहिनें भी, जो उस पर जान छिड़कती थीं, अब उससे कतराने लगीं। शान्ता और सदन की उपेक्षा खुलकर सुमन के सामने आ चुकी थी। शान्ता के वार्तालाप से सुमन को पूरा विश्वास हो गया कि अब उसका यहाँ रहना उचित नहीं है। अंत में सुमन और शान्ता से साफ–साफ पूछने पर शान्ता कहती है, "तुमने मेरे साथ जो उपकार किए है, वह मैं कभी न भूलूँगी। लेकिन बात यह है कि उनकी (सदन की) बदनामी हो रही है। लोग मनमानी बातें उड़ाया करते हैं। वह कहते थे कि सुभद्रा जी यहाँ आने को तैयार थीं, लेकिन तुम्हारे रहने की बात सुनकर यहाँ नहीं आई। (यह बिल्कुल झूठ था) और बहन, बुरा न मानना, जब संसार में यही प्रथा चल रही है, तो हम लोग क्या कर सकते हैं?" शान्ता की ये बातें प्रत्यक्ष रूप से सुमन के चले जाने की 'नोटिस' थी। शान्ता थोड़े ही समय में बच्चे की माँ बनने वाली थी। उसके कष्ट को ध्यान मे रखकर सुमन ने प्रसूति कर्म निपटाकर चले जाने का निश्चय किया।

शान्ता अपने प्रति किए गए सारे उपकारों को भुलाकर उस पर संदेह करने लगी थी। उसे भय था कि कहीं सदन सुमन के जाल में न फँस जाए। इसलिए वह उस पर हमेशा नजर रखना चाहती थी। लोरी गृह में बंद होकर सुमन पर नजर रखना मुश्किल था। इसलिए वह अपने प्रसव काल से पूर्व ही सुमन को वहाँ से टालना चाहती थी। प्रसव के बाद घटनाक्रम में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। छठी के दिन सदन के माँ–बाप उत्साह के अतिरेक में पद्मसिंह–सुभद्रा को लेकर सदन के आवास पर पहुँचे। सदन की माँ भामा की उल्टी–सीधी बातें सुन कर सुभद्रा ने उसे बहुत समझाया।

सुमन स्नान करके वापस आई तो उनकी बातें कान लगाकर सुनती रही। सुभद्रा पर अविश्वास करते हुए जब भामा ने यह कहा कि "चलो बड़ी नेम–धरम से रहने वाली है। सात घाट का पानी पीके आज नेम वाली बनी है। देवता की मूरत टूटकर फिर से नहीं जुड़ती। अब वह देवी बन जाए तब भी मैं उस पर विश्वास नहीं करूँगी।" सुमन को इससे अधिक सुन सकने का धैर्य नहीं रहा। वह उसी समय अंधकार में निकल पड़ी।

यहाँ हम देखते हैं कि जीवन–यात्रा के प्रत्येक पड़ाव पर सुमन की स्थिति बद–से–बदतर होती गयी है। अपनी बाल्यावस्था में उसे मन–मर्जी करने की छूट थी। वह स्वभाव से ही आत्मसम्मान प्रिय और सगर्वा स्त्री रही है। पति गृह में सारे कष्ट झेल कर वहाँ की रानी थी। वेश्यालय में जब तक रही, उसने आत्मसम्मान को नहीं छोड़ा। आश्रम में भी उसी का सिक्का चलता था। अपमान की स्थिति देखकर वह कहीं टिकी नहीं। शान्ता और सदन के व्यवहार से तो वह आहत थी ही भामा की कटूक्तियों से तिलमिलाते हुए अंधकार में अनिर्दिष्ट लक्ष्य की दिशा में एक ओर निकल गई। इसे उसके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी कहा जा सकता है।

बड़े काँटे की चुभन की पीड़ा को महसूस करते हुए वह रात भर चिन्तन करती रही। प्रातःकाल में उसकी आंखे पल भर के लिए झपकीं। उसे दिखाई दिया कि स्वामी गजानन्द मृगचर्म धारण किए हुए उसके सामने खड़े हैं। उन्होंने आदेश दिया "जो लोग तुमसे भी दीन–दुखी, दलित हैं, उनकी शरण में जाओ और उन्हीं का आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा।" यहाँ प्रेमचंद ने एक अविश्वसनीय संयोग के माध्यम से सुमन को स्वामी गजानंद की कुटी के द्वार पर पहुँचा दिया है। उन्हीं के सदुपदेश से वह अनाथालय की संचालिका बनती है। सुमन के संघर्षपूर्ण जीवन की यह परिस्थिति स्वाभाविक और प्रभावशाली नहीं है। बावजूद इसके, उसी के माध्यम से प्रेमचंद ने सुमन को अनाथालय में पहुँचा कर अपने उद्देश्य की सिद्धि की है।

वेश्या के रूप में – सुमन के वेश्या–जीवन की तरफ जाने का दायित्व मध्यवर्गीय समुदाय की छद्म चेतना को ही है। विवाह–व्यवसाय, दहेज–प्रथा के साथ ही दारोगा कृष्णचंद्र, पं. उमानाथ से लेकर पं. पद्मसिंह तक व्याप्त है। अपनी जीवन–यात्रा की इस मंजिल पर पहुँचकर वह जीवन के विषय में कुछ सार्थक ढंग से सोच सकने में समर्थ होती है। पद्मसिंह को सुनाने के लिए वह यह जरूर कहती है कि "जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुरद्वारे में झूला देखने गयी थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने अंदर नहीं जाने दिया। लेकिन कल उसी ठाकुरद्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानो मेरे चरणों से वह मंदिर पवित्र हो गया।" लेकिन वास्तविकता यह है कि वह इसे अपने वेश्या जीवन की उपलब्धि नहीं मानती। जब विट्ठलदास के रूप में एक सच्चे समाज–सुधारक से उसकी भेंट होती है तो वह अपने आंतरिक आशय को खुले रूप से उनके सामने इस प्रकार प्रस्तुत करती है, "आप सोचते होंगे कि भोग–विलास की लालसा से कुमार्ग में आई हूँ, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। मैं जानती हूँ कि मैंने निकृष्ट कर्म किया है। लेकिन मैं विवश थी, इसके सिवाय मेरे लिए कोई रास्ता नहीं था। मैं ऊँचे कुल की लड़की हूँ, पिता की नादानी से मेरा विवाह एक दरिद्र मूर्ख से हुआ। लेकिन दरिद्र होने पर भी मुझसे अपना अपमान न सहा जाता था। जिसका निरादर होना चाहिए उसका आदर होते देखकर मेरे हृदय में

कुवासनाएँ उठने लगती थीं। संभव था कि कालांतर में यह अग्नि आप ही शांत हो जाती, पर पद्मसिंह के जलसे ने इस अग्नि को भड़का दिया। पद्मसिंह के घर से निकल कर मैं भोली बाई की शरण में गई। मैंने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूँ, पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अंत में मुझे कुएँ में कूदना पड़ा। सुख न सही, यहाँ आदर तो है। मैं किसी की गुलाम तो नहीं हूँ।"

सुमन के चरित्र की विशेषताओं के साथ ही उसकी स्वाधीनता की भावना भी यहाँ व्यक्त हुई है। इसके संबंध में प्रेमचंद की आद्यंत मान्यता भी यहाँ उजागर हुई है। लगता है कि सुमन वेश्या–जीवन से भी मुक्त होने के लिए तत्पर है। वह विट्ठलदास से कहती है कि "मैं सुख और आदर दोनों को छोड़ सकती हूँ पर जीवन निर्वाह का कुछ उपाय तो करना ही पड़ेगा।" अंततः वह अपने गुजारे के लिए 50 रुपए मासिक राशि की शर्त को भी छोड़कर विधवाश्रम में रहना स्वीकार कर लेती है। दूसरी तरफ भोली नामक वेश्या है जो धूर्त एवं चालाक है। वह सुमन को इस पेशे में उतरने के लिए उकसाती भी है, "तुम्हें तो रानी बनना चाहिए था। मगर पाले पड़ी एक खूसट के जो तुम्हारा पैर धोने के लायक भी नहीं है।" यही भोली सुमन की तबाही का कारण बनती है।

आदर्श सेविका के रूप में – प्रेमचंद ने 'सेवासदन' में विधवा समस्या को विषय नही बनाया है लेकिन एक सुव्यवस्थित विधवाश्रम की उपस्थिति के माध्यम से समस्या की ओर संकेत अवश्य किया है। विधवाश्रम गमन को सुमन अपने लिए पुनर्जन्म स्वीकार करती है। आश्रम की विधवाओं से विधवा बताकर सुमन को अत्यंत गोपनीय ढंग से वहाँ रखा गया था। लेकिन अबुलवफा जैसे व्यक्तियों की वजह से यह बात गोपनीय नहीं रह सकी। सुमन जी जान से विधवाश्रम में विधवाओं की सेवा करती है परन्तु परिस्थितिवश उसे वहाँ से भी कूच करना पड़ता है।

आदर्श संचालिका के रूप में – स्वामी गजानंद 'सेवासदन' का भार सुमन पर छोड़कर उससे निश्चिन्त हो गए। अब वे निर्धन कन्याओं का उद्धार करने के लिए अधिकतर गाँवों में रहते हैं। शहर में कभी–कभार आते हैं। 'सेवासदन' का पूरा कार्य व्यापार सुमन की देखरेख में चलने लगा। इसकी स्थापना पं. पद्मसिंह के प्रयास से हुई है, जिसमें वेश्या कन्याओं के पालन–पोषण और शिक्षा–दीक्षा का समुचित प्रबंध है। लेकिन सुमन के साक्षात्कार से ये लज्जावश कतराते रहे। पति के साथ गंगा स्नान से वापस आते हुए उनकी गाड़ी सेवासदन से होकर निकली। सुभद्रा वहाँ अकेले गयी। सुमन द्वारा 'सेवासदन' का निरीक्षण कराते हुए उसकी सफलता का परिचय पाठक को मिलता है।

"आश्रम में पहुँचने पर सुमन ने विह्वल भाव से सुभद्रा के चरणों पर सिर रख दिया। उसने पूछा कि 'शर्मा जी भी हैं या अकेली आयी हैं।" देर हो जाने के कारण शर्मा जी के न आने से उदास होकर सुमन ने कहा, "देर तो क्या होती थी, वह यहाँ आना ही नही चाहते। मेरा अभाग्य दुख केवल यह है कि जिस आश्रम के वे स्वयं जन्मदाता हैं, उससे मेरे कारण उन्हें इतनी घृणा है। मेरी हृदय से अभिलाषा थी कि एक बार आप और वह साथ आते। आधी तो आज पूरी हुई, शेष भी कभी–न–कभी पूरी होगी। वह मेरे उद्धार का दिन होगा।"

सुमन सुभद्रा को आश्रम दिखाने लगी। प्रभाकर राव के 'जगत' तथा अन्य पत्रों में छपी प्रशंसा भी आश्रम को देखकर सुभद्रा के लिए धूमिल पड़ गयी। पाँच कमरों के भवन में पहले कमरे में लगभग तीस बालिकाएँ पढ़ रही थीं,

जिनकी आयु बारह से पन्द्रह वर्ष के बीच थी। इन्हें उच्च शिक्षा देने के लिए रुस्तम भाई बैरिस्टर की सुयोग्य पत्नी प्रतिदिन दो घंटे के लिए आती थी। दूसरे कमरे में भी लगभग उतनी ही बालिकाएँ थीं, जिनकी आयु आठ से बारह वर्ष के बीच थी। उन्हें कपड़े की कटाई–सिलाई की शिक्षा दी जा रही थी। यहाँ एक बूढ़ा दर्जी काम पर लगा था। तीसरे कमरे में पन्द्रह–बीस छोटी–छोटी बच्चियाँ थीं, जो गुड़ियों से खेलने और दीवारों पर लगी तस्वीरें देखने में तल्लीन थीं। इस कक्षा की अध्यापिका सुमन स्वयं थी। सुभद्रा ने सामने वाले बगीचे में लगाए गए फूलों को देखा। वहाँ कुछ लड़कियाँ आलू गोभी में पानी दे रही थीं। भोजनालय में बैठी लड़कियाँ भोजन कर रही थीं। उनके बनाए आचार–मुरब्बे भी सुमन ने दिखाए। सुभद्रा सारी व्यवस्था देखकर गद्‌गद हो गयी। जब सुभद्रा ने पूछा कि "इनकी माताएँ इन्हें देखने आती हैं या नहीं?" सुमन ने बताया कि "कभी–कभी आती है, पर मैं यथा संभव इस मेल मिलाप को रोकती हूँ।" सुभद्रा के पूछने पर कि विवाह कहाँ और कैसे होगा।" तो सुमन ने कहा कि "यह तो टेढ़ी खीर है। हमारा कर्तव्य यह है कि इन कन्याओं को चतुर गृहिणी बनने योग्य बना दें, उनका आदर समाज करेगा या नहीं, मैं नहीं कह सकती।"

वस्तुतः प्रेमचंद ने इस तथ्य को गहराई से महसूस किया था कि उस समय विधवाओं के लिए विधवाश्रम की व्यवस्था तो की गई थी, लेकिन वेश्याओं के लिए सुधार या उद्धार गृह की कोई व्यवस्था नहीं। 'सेवासदन' में वे वेश्या कन्याओं की शिक्षा और उनके सुधार को लेकर चिन्तित हुए हैं। आगे चलकर "1956 ई. में अनैतिक व्यवसाय के दमन का कानून लागू करने के लिए तथा वेश्याओं के सुधार और उद्धार के लिए खोले गए और भविष्य में खोले जाने वाले 'रक्षा–गृह' की पूर्व कल्पना प्रेमचंद ने 40 वर्ष पूर्व कर ली थी, चाहे अधूरे रूप में ही सही।" (प्रेमचंद का नारी चित्रण : गीता लाल)

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट पता लग जाता है कि सुमन की जीवन–यात्रा का अंतिम पड़ाव ही उसकी वास्तविक पराधीनता से मुक्ति के साथ ही स्वावलंबन और सेवाधर्म के निर्विघ्न प्रतिपादन का वास्तविक काल है। यहाँ वह अपनी क्षमता का पूरा परिचय देती है।

6.5 सारांश

सुमन के एक अत्यन्त संक्षिप्त वेश्या जीवन काल को देखते हुए इसे वेश्या–समस्या की प्रमुखता वाला परम्परागत उपन्यास नहीं माना जा सकता। वस्तुतः 'सेवासदन' नारी जीवन की पराधीनता का दस्तावेज है। प्रेमचंद ने इसमें जहाँ एक ओर तमाम पुरानी और रूढ़ सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ने का प्रयास किया है, वहीं अपने वर्तमान युग में सिर उठाते स्वार्थपरक और आडम्बर प्रिय मध्यवर्गीय छद्‌म का पर्दाफाश करने का सफल प्रयास किया है। सारे उपन्यास पर छायी हुई सुमन के माध्यम से उन्होंने यह कार्य सम्पन्न किया है। हमारे साहित्य में कितनी ही कविताएँ, कितने नाटक, कितने ही उपन्यास लिखे गए हैं, जिनमें नारी के बलिदान, त्याग, पति सेवा की गद्‌गद भाव से प्रशंसा की गई है। लेकिन बहुत कम लेखकों ने उसकी वास्तविक अस्मिता, उसकी निस्सहायता, उसकी पराधीनता को उजागर करते हुए उसे गँवार, शूद्र और पशु की कोटि में रखे जाने की विभिन्न स्थितियों एवं कार्य–कारण संबंधों पर प्रकाश डाला है। इस महत्वपूर्ण कार्य को प्रेमचंद ने ही पूरा किया है।

6.6 कठिन शब्द

1. हृदयंगम
2. कृपण
3. आनन्दप्रद
4. उद्वेलन
5. व्यग्र
6. रूप–लावण्य
7. गर्वीली
8. उत्कंठित
9. दुराग्रह
10. अग्राह्य

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास में चित्रित नारी के विविध रूपों का चित्रण कीजिए।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास में नारी के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास में नारी के आदर्श रूप का चित्रण कीजिए।

___

___

___

___

___

___

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में नारी के वेश्या रूप का चित्रण कीजिए।

___

___

___

___

___

___

6.8 पठनीय पुस्तकें

1. सेवासदन – प्रेमचन्द
2. प्रेमचन्द का नारी चित्रण : डॉ. गीता लाल
3. प्रेमचन्द और उनका युग : डॉ. राम विलास शर्मा
4. प्रेमचनद के नारी पात्र : डॉ. ओम अवस्थी
5. कलम का सिपाही : अमृतराय
6. प्रेमचन्द : विरासत का सवाल : डॉ. शिवकुमार मिश्र

—— 0 ——

'सेवासदन' के प्रमुख पात्र

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 सेवासदन के प्रमुख पात्र

7.3.1 सेवासदन के स्त्री पात्र

7.3.2 सेवासदन के पुरुष पात्र

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्द

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 पठनीय पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप :–

– उपन्यास के प्रमुख तत्व चरित्र चित्रण को समझकर उपन्यासों के पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे।

– चरित्र–चित्रण की दृष्टि से उपन्यास की समीक्षा कर सकेंगे।

– प्रेमचन्द के पात्र चयन की समीक्षा कर सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

प्रेमचन्द का कथन है कि 'उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा। उनका मानना है कि अपने विचार किसी पात्र के माध्यम से समाज तक पहुँचाए जा सकते हैं।

7.3 सेवासदन के प्रमुख पात्र

7.3.1 – सेवासदन के स्त्री पात्र

सुमन

सुमन सेवासदन उपन्यास की नायिका है। प्रेमचन्द ने अपनी आदर्शात्मक दृष्टि से उसका चरित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह हर परिस्थिति में अपनी यौन पवित्रता को बनाये रखती है। वह अपनी राम कहानी विट्ठलदास को सुनाती हुई कहती है कि "संसार में सबकी प्रकृति एक–सी नहीं होती। कोई अपना अपमान सह सकता है, कोई नहीं सह सकता। मैं एक ऊँचे कुल की लकड़ी हूँ पिता की नादानी से मेरा विवाह एक दरिद्र मूर्ख मनुष्य से हुआ, लेकिन दरिद्र होने पर भी मुझसे अपना अपमान न सहा जाता था। जिसका निरादर होना चाहिए, उसका आदर होते देखकर मेरे ह्रदय में कुवासनाएँ उठने लगती थी। मगर मैं इस आग से मन–ही–मन जलती थी। कभी अपने भावों को प्रकट नहीं किया। संभव था कि कालांतर में यह अग्नि आप ही आप शांत हो जाती, पर पद्मसिंह के जलसे ने इस अग्नि को भड़का दिया। इसके बाद मेरी जो दुर्गति हुई, वह आप जानते ही हैं। पद्मसिंह के घर से निकल कर मैं भोली बाई की शरण मे गई। मगर उस दशा में भी मै इस कुमार्ग से भागती रही। मैंने चाहा कि कपड़े सी कर अपना निर्वाह करूँ। पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अंत में मुझे इस कुएं में कूदना पड़ा। यद्यपि इस काजल की कोठरी में आकर पवित्र रहना कठिन है, पर मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूँगी, गाऊंगी, नाचूँगी, पर अपने को भ्रष्ट न होने दूंगी।" सुमन की यह राम कहानी अपनी जुबानी है जिससे स्पष्ट होता है कि वेश्यालय में पहुँच कर भी वह कुलीनता और मर्यादा को नहीं भूल पाती है, इस स्थान पर आने का एक मात्र कारण आदर और सुख प्राप्त करना है। विट्टदास के समझाने का एक असर सुमन पर यह पड़ता है कि वह जीवन के उद्देश्य के बारे में सोचने के लिए मजबूर हो जाती है।

जीवन की इस नई विचारधारा पर वह खूब सोचती है और निर्णय करती है। विट्ठलदास से उसने स्पष्ट कहा – और कष्टों से शरीर को दुःख होता है, इस कष्ट से आत्मा का संहार हो जाता है। वह उनके साथ विधवाश्रम के लिए चल देती है। उस समय की छवि का वर्णन उपन्यासकार करता है –

'वह केवल एक उजली साड़ी पहले थी, हाथों में चूड़ियाँ तक न थी। उसका मुख उदास था, लेकिन इसलिए नहीं कि यह भोग–विलास अब उससे छूट रहा है, वरन् इसलिए कि वह अग्नि कुंड में गिरी क्यों थी, उस उदासीनता में मलिनता न थी, एक प्रकार का सयंम था। वह किसी मदिरा–सेवी के मुख पर छाने वाली उदासी नहीं थी, बल्कि उसमें त्याग और विचार आभासित हो रहा था।'

सात्विक रूप–सुमन के सात्विक और संयमी जीवन का ही प्रभाव था कि साधु बन गया उसका पति गजानन्द उसके चरणों में गिर अपने अपराधों की क्षमा माँगता है। उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि – "अपने अत्याचार का भीषण परिणाम देखकर मुझे विदित हो रहा है कि उसका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।" गजाधर को इस आत्मवेदना तथा पश्चाताप की अग्नि में जला हुआ देखकर ही वह बोली – "ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारे अपराधों को क्षमा करे।" गजाधर के समझाने पर कि अब तक तुम अपने लिए जीती थी, अब दूसरों के लिए जियो। वह मान जाती है और अपने जीवन का उत्सर्ग दूसरों की सेवा के लिए ही कर देती है।

सुमन के इस सात्विक रूप का ही प्रभाव था कि वह सदन को स्पष्ट शब्दों में कह सकी – "मैं पूछती हूँ भला यह कहाँ की नीति है कि एक भाई चोरी करे और दूसरा पकड़ा जाए। अब तुससे कोई छिपी नहीं है, अपने खोटे नसीब से, दिनों के फेर से, पुनर्जन्म के पापों से मुझ अभागिनी ने धर्म का मार्ग छोड़ दिया। उसका दंड मुझे मिलना चाहिए था और वह मिला। लेकिन इस बेचारी ने क्या अपराध किया था कि इस बेचारी को तुम ने त्याग दिया ? इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा।"

सदन यद्यपि उस समय तो कोई ठोस उत्तर न दे पाया किन्तु शांता को अपने जीवन में लाने के लिए स्वावलम्बी बना और उसे उठाकर जब झोंपड़े में लाया तो शांता को बेहोश देखा तो सुमन तिरस्कारपूर्ण नेत्रों से देखकर बोली – "तुमने उसके साथ अत्याचार इसलिए किया कि मैं उसकी बहन हूँ। जिसके तलुवे तुमने बरसों सहलाये है, जिसके कुटिल प्रेम में तुम महीनों मतवाले हुए रहते थे। उस समय भी तो तुम अपने माँ बाप के आज्ञाकारी पुत्र थे या कोई और थे ? उस समय भी तो तुम वही उच्च कुल के ब्राह्मण थे या कोई और थे ? तब तुम्हारे दुष्कर्मों से तुम्हारे खानदान की नाक न कटती थी? आज तुम आकाश के देवता बने फिरते हो। अंधेरे में जूठा खाने पर तैयार, पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं। यह निरी धूर्तता है, दगाबाजी है। जैसा तुमने इस दुखिया के साथ किया है, उसका फल तुम्हे ईश्वर देंगे।" सुमन की इस बेलाग बात को सदन सुनता ही रह जाता है और कोई उत्तर नहीं दे पाता।

लोकोपवाद के कारण शांता और सुमन विधवाश्रम को त्याग कर सदन के झोंपड़े में ही रहने लगती हैं। यहाँ पर रहते सुमन ज़रा भी ऐसी कोई हरकत नहीं करती जिससे सदन को उसकी ओर बढ़ने का प्रोत्साहन मिले। उसी के प्रोत्साहन से वह शांता से विवाह की अन्य रस्में पूरी करके रहने लगता है। झोंपड़े में रहते हुए प्रेमचन्द ने उनकी दिनचर्या के बारे में लिखा है –

सुमन घर का सारा काम भी करती है और बाहर का भी। वह घड़ी रात रहे उठती है और स्नान पूजा के बाद सदन के लिए जलपान बनाती है। फिर नदी के किनारे आकर नाव खुलवाती है। नौ बजे भोजन बनाने बैठ जाती है। ग्यारह बजे यहां से छुट्टी पाकर वह कोई न कोई काम करने लगती है। नौ बजे रात को जब लोग सोने चले जाते है, तो वह पढ़ने बैठ जाती है ... वह बहुधा धर्मिक ग्रंथ भी पढ़ती है, लेकिन ज्ञान की अपेक्षा भक्ति में उसे अधिक शांति मिलती है। सुमन की इस सेवा भावना का शांता और सदन की आंखों में कोई मूल्य न था। सदन इस प्रकार सुमन से बचता था जैसे हम कुष्ठ रोगी से बचते है और शांता उसके रूप–लावण्य से डरती थी, और उस पर अविश्वास करती

थी। सुमन इस उपेक्षा भावना को सहन करती रहती थी, क्योंकि संसार में बिना किसी सहारे के रहने का विचार करके उसका कलेजा कांपने लगता था। साथ ही वह सोचती थी कि मेरे चले जाने से गर्भवती शांता को कष्ट होगा। कुछ दिन और रह लूं, जहां इतने दिन कटे हैं, महीने दो महीने और सही। मेरे ही कारण से इस विपत्ति में फंसे हैं। ऐसी अवस्था में इन्हें छोड़कर जाना मेरा धर्म नहीं है।''

सुमन के इन उद्‌गारों से स्पष्ट है कि वह सात्विक प्रवृत्ति की हो चली है। वह अपनी बहन शांता से स्पष्ट शब्दों में पूछती है – ''मैं दो वर्षों से तुम्हारे साथ हूँ, इतने दिनों में तुम्हे मेरे चरित्र का परिचय अच्छी तरह हो गया होगा।'' शांता के पुत्र हो जाने के बाद जब सदन की माता आई तो उनके साथ सुभद्रा भी आई। दोनों बाते करने लगीं –

भामा –हो चाहे न हो, लेकिन यहां सोने न दूँगी। वैसी स्त्री का क्या विश्वास ?

सुभद्रा– नहीं दीदी, वह अब वैसी नहीं है। वह नेम धरम में रहती है।

भामा–चलो, वह बड़ी नेम धरम से रहने वाली है सात घाट का पानी पीके आज वह नेम वाली बनी है देवता की मूरत टूटकर फिर नहीं जुड़ती। वह अब देवी बन जाए तब भी उस का विश्वास न करूँ।''

भामा की यह बात सुनने के बाद उसकी हताशा का कोई बार–पार नहीं रहता है और वह उल्टे पावं अंधेरे में ही एक ओर चल पड़ती है। लज्जा और परिताप में जलते हुए सुमन के अन्तर्मन से बार–बार यही ध्वनि निकलने लगती है – ''हाय, इसी सुंदरता ने मेरी मिट्टी खराब की। मेरे सौंदर्य के अभिमान ने मुझे यह दिन दिखाया। सुंदरता रूपी आग में आत्मा को डालकर चमकाना चाहते हैं । पर हां! अज्ञानवश हमें कुछ नहीं सूझता, यह आग हमें जला डालती है, वह बाधा हमें विचलित कर देती है।'' सुमन बहुत देर तक इसी प्रकार के विचारों में खोई रही।

परमात्मा के प्रति आस्था – वह अपने विपत्ति के क्षणों में परमात्मा से प्रार्थना करती है –''भगवान! मुझे ज्ञान दो। तुम्हीं अब मेरा उद्धार कर सकते हो। मैंने भूल की कि विधवाश्रम में गयी। सदन के साथ रहकर भी मैंने भूल की। मनुष्यों से अपने उद्धार की आशा रखना व्यर्थ है। ये आप ही मेरी तरह अज्ञानता में पड़े हुए है। ये मेरा उद्धार क्या करेंगे ? मैं उसी की शरण में जाऊँगी। लेकिन कैसे जाऊँ ? कौन सा मार्ग है, दो साल से धर्म–ग्रंथों को पढ़ती हूँ पर कुछ समझ मे नही आता, ईश्वर तुम्हें कैसे पाऊँ।''

सुमन इन्हीं सब बातों पर विचार करती–करती सहसा सो–सी गई। उसे स्वप्न में स्वामी गजानन्द दिखाई पड़ने लगे। उन्होंने सुमन को उपदेश दिया – ''सतयुग' में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी, त्रेता मे सत्य, द्वापर में भक्ति से, कलियुग में इसका केवल एक ही मार्ग है और वह है सेवा। इसी मार्ग पर चलो और तुम्हारा उद्धार होगा। जो लोग तुमसे भी दीन, दुःखी, दलित हैं उनकी शरण में जाओ और उन का आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा।'' इसी प्रकार वह नींद मे चलती हुई रात्रि में ही गजानन्द की कुटिया तक पहुंचती है।

प्रेम और पवित्रता–सुमन ने गजानंद की कुटिया में पहुँचकर उनके चेहरे पर एक विमल ज्योति का प्रकाश देखा। वह गजानंद से कहने लगी –

"महाराज आप मेरे लिए एक ईश्वर रूप है। आपके ही द्वारा मेरा उद्धार हो सकता है। मैं अपना तन मन आपकी सेवा में अर्पण करती हूँ यही प्रतिज्ञा एक बार मैंने की थी पर अज्ञानता वश उसका पालन न कर सकी। पर वह प्रतिज्ञा मेरे हृदय से न निकली थी, आज मैं सच्चे मन से यह प्रतिज्ञा करती हूँ। आपने मेरी बाँ पकड़ी थी, अब यद्यपि मैं पतित हो गई हूँ, पर आप ही अपनी उदारता से मुझे क्षमादान दीजिए और मुझे सन्मार्ग पर ले जाइए।"

सुमन के इन उद्गारों से गजानन्द के प्रति प्रेम और आदर का भाव टपकता है। यहां पर पहुँच कर लगने लगता है कि प्रेमचन्द का मंतव्य था भारतीय नारी की उच्चता की उद्घोषणा करना। उन्होंने पति और पत्नी के संबंध की पवित्रता को श्रेष्ठ माना। सुमन वह भरतीय नारी है, जो आरम्भ में अपने पति का तिरस्कार करती है, किन्तु उसके द्वारा क्षमा याचना करने पर वह उस पर सहज विश्वास कर लेती है। गजानन्द के उपदेश और परामर्श को मानकर वह अनाथालय का सेवा–भार सम्भाल लेती है इस अनाथालय में वह वेश्याओं की पुत्रियों को पढ़ाई–लिखाई, कढ़ाई, सिलाई आदि सिखाती है। उसके उद्योग से अनाथालय की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती चली जाती है। जब सुमन सुभद्रा से मिलने आती है तो वह सुमन के तपस्विनी वेष को देखकर अत्याधिक प्रभावित होती है।

यथा –

"सुभद्रा ने सुमन को आते देखा। वह उस केशहीन, आभूषण–विहिन सुमन को देखकर चकित रह गई। उसमें न वह कोमलता थी, न वह चपलता, न वह मुस्कराती हुई आँखें, न हसंते हुए होंठ। रूप लावण्य की जगह पवित्रता की ज्योति झलक रही थी।"

इससे स्पष्ट है कि सुमन का चरित्र कीचड़ में रहते हुए भी कमल की भाँति था। उस पर कीचड़ का प्रभाव न था।

नायिका – सुमन सेवासदन की नायिका है। नायिका प्रायः हम उस प्रत्येक नारी पात्र को कहते हैं जिससे कथा आरम्भ हो और उसी के साथ वह समाप्त भी हो या कथा में प्रायः प्रत्येक पात्र उसके चारों ओर ही घूमते दिखाई पड़ें या उसके लिए कार्य करते दिखलाई पड़ें। इस कसौटी पर देखें तो सेवासदन उपन्यास की कथा सुमन से ही आरम्भ होती है। उसके पिता चिन्तित हैं। सुमन के विवाह के लिए दहेज जुटाने की समस्या से कथा का अन्त भी उसके द्वारा कहे गए अन्तिम वाक्य – "परमात्मा आप लोंगो का सदैव कल्याण करें" से होता है। उपन्यासकार का यह वाक्य प्राचीन नाटकों में आये भरत वाक्य के सदृश ही प्रतीत होता है।

सुमन का चरित्र कथा के केन्द्र में है और कथा में आये प्रायः सभी पात्र उसके चारों ओर घूमते दिखाई पड़ते हैं। या उसके बारे में सोचते हैं अथवा उससे किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित है। सेवासदन उपन्यास की मूल समस्या वेश्यावृति और उससे उद्धार की कथा कहना है और वह कथा सुमन को आधार बनाकर ही कही गई। अतः इस रूप में उपन्यासकार सेवा भावना में डूबती सुमन को जब तक सेवासदन में पहुंचाकर उसका कार्य–भार उससे नहीं संभलवा देता तब तक कथा को बढ़ाता जाता है अतः इस रूप में हम कह सकते हैं कि सुमन ही इस उपन्यास में फल की भोक्ता

है। अस्तु इसमें कोई संशय नहीं रह जाता कि सुमन के अतिरिक्त अन्य कोई स्त्री पात्र इस उपन्यास की नायिका हो सकती है। सुमन के रूप में प्रेमचन्द ने आरम्भ से ही एक नारी का चित्रण किया है जिससे सत्–असत् का निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष में असत् की क्षणिक विजय हो जाती है परन्तु संघर्ष जारी रहता है और अन्त में सत् की विजय हो जाती है। सुमन के इस चारित्रिक मोड़ को समझने के लिए हमें उसके जीवन पर दृष्टिपात करना पड़ेगा।

लाड़–प्यार से पली पुत्री–सुमन दरोगा कृष्णचन्द्र की दोनों लड़कियों से बड़ी है। उसका कोई भाई नहीं है इसलिए वह अपने माता–पिता के लाड़–प्यार का केन्द्र बन जाती है। प्रेमचन्द ने लिखा है– 'दोनों लड़कियाँ कमल के समान खिलती जाती थी। बड़ी लड़की सुमन सुन्दर, चंचल और अभिमानिनी थी। छोटी लड़की शांता भोली, गंभीर और सुशील थी। सुमन दूसरों से बढ़कर रहना चाहती थी। यदि बाजार से दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार की साड़ियाँ आती तो सुमन मुँह फूला लेती थी।"

सुमन का यह अभिमान बढ़ता जाता है। अक्सर पिता की लाड़ली पुत्री होने के कारण वह गृह–कार्यो पर ध्यान नहीं देती है। कदाचित् सुमन मन के किसी कोने से सोचती रही हो कि उसका विवाह तो ऐसे घर में होगा जहाँ नौकर–चाकर और दास–दासियाँ होंगे। अतः गृह–कार्य को सीखकर या उसमें मन लगाकर क्या होगा। सुमन की धारणा गलत निकली। जब वह ससुराल आई तो यहाँ की अवस्था उससे भी बुरी पायी, जिसकी उसने कल्पना की थी। पतिगृह में जब वह काम करने लगी तो बर्तन माँजती जाती थी और रोती जाती थी, पर थोड़े ही दिनों में उसे घर का काम करने की आदत पड़ गई उसे अपने जीवन में आनन्द–सा अनुभव होने लगा।

गृह प्रबन्ध में अकुशल – सुमन को गृह–प्रबन्ध की कोई शिक्षा नहीं मिली थी, इसलिए उसे आवश्यक और अनावश्यक खर्च का ज्ञान न था। उसने गृहिणी बनने की नहीं, इन्द्रियों के आनन्द भोग की शिक्षा पाई थी। सुमन की आशा–अकांक्षा के विपरीत उसका विवाह 15 रुपये मासिक पाने वाले गजाधर से हो जाता है। कुछ समय तक गजाधर की बुआ गृहकार्य करती रहती है पर ऐसे में जब उसकी मृत्यु हो जाती है तो समस्या उत्पन्न होती है। चौका बर्तन करने के लिए महरी 3 रुपया से कम पर राजी नहीं होती है। इसीलिए घर में दो दिन चुल्हा नहीं जला। तीसरे दिन गजाधर घड़ी रात रहे उठा और सारे बर्तन माँज डाले, चौका लगा दिया, नल से पानी भर लाया। सुमन जब सोकर उठी तो वह कौतुक देखकर दंग रह गई, अस्तु उसे लज्जा के कारण ये काम स्वयं ही संभालने पड़े। वह अपने मित्रों से कहने लगा कि इतने बड़े घर की लड़की, घर का छोटा सा काम भी अपने हाथ से करती है। महीने की पगार जब बीस दिन में समाप्त हो जाती है तो दोनों में तना–तनी आरम्भ हो जाती है और फलस्वरूप गजाधर के मन में प्रेम के स्थान पर शक, संदेह जन्म ले लेता है वह सोचने लगता है कि सुमन का हृदय मेरी ओर से शिथिल होता जाता है। उसे यह न मालूम था कि सुमन उसकी प्रेम–रस पूर्ण बातों से मिठाई के दोनों को अधिक आनन्दप्रद समझती है।

प्रदर्शन प्रिय – मध्यवर्गीय समाज की इस दुष्प्रवृत्ति से वह ग्रसित है और यही कारण है वह दूसरों के सामने अपने को बढ़ा–चढ़कार दिखाना चाहती है। जब उसकी पड़ोसिनें उसके यहाँ जाने लगी तो वह रेशमी धोती पहनकर बैठती और रेशमी जाकट खूँटी पर लटका देती। उन पर इस प्रदर्शन का प्रभाव सुमन की बातचीत से अधिक होता था।

वे वस्त्राभूषण के सम्बन्ध में उसकी सम्मति को बड़ा महत्त्व देती। नये गहने बनवाती तो सुमन से सलाह लेती, साड़ियाँ लातीं, तो सुमन को अवश्य दिखा जाती।

धीरे–धीरे उसकी रेशमी साड़ियाँ और जाकटें फटती चली गई। जिन वस्त्रों को पहनकर वह अपनी शान दिखाती थी और स्वयं को ऊंचा सिद्ध करती थी। अब उसके मन में असंतोष पनपने लगा। अन्य स्त्रियों के लिए नये–नये वस्त्राभूषण आते रहते थे, जबकि मेरे लिए नये वस्त्राभूषण आने का तो कहना ही क्या पति के कम वेतन के कारण गुज़ारा तक कठिनता से होता है। वह अपने पति को जली कटी सुनाने लगी, क्योंकि वह जिन महिलाओं के साथ उठती बैठती थी, वे अपने पति के इन्द्रिय सुख का मन्त्र समझती थी। पति चाहे जैसे हो, अपनी स्त्री को सुन्दर आभूषणों से उत्तम वस्त्रों से सजावे, उसे स्वादिष्ट पदार्थ खिलावे। यदि उसमें वह सामर्थ्य नहीं है तो वह निखट्टू है, अपाहिज है, उसे विवाह करने का कोई अधिकार नहीं, वह आदर और प्रेम के योग्य नहीं।

उद्दंड पत्नी – गजाधर के प्रति सुमन के मन में असंतोष की भावना पनपने लगी और वह एक उद्दंड पत्नी बन गई। गजाधर के साथ उसका बर्ताव पहले से कहीं रुखा हो गया। वही उसी को अपनी इस दशा का उत्तरदाता समझती थी। वह देर से सोकर उठती, कई दिन घर में झाड़ू नहीं देती, कभी–कभी गजाधर को बिना भोजन किए काम पर जाना पड़ता। उसकी समझ में न आता कि यह क्या मामला है, यह काया पलट क्यों हो गई है। सुमन को अपना घर अच्छा न लगता। चित हर घड़ी उचटा रहता। दिन–दिन भर पड़ोसिनों के घर बैठी रहती।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व – चंचल और अभिमानी सुमन को अपने घर के सामने रहने वाली भोली नाम की वेश्या से ईर्ष्या होने लगती है। गजाधर के समझाने पर वह मान गई कि भोली से मेल–जोल अच्छा नहीं। सुमन को इस विचार से बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। उसे विश्वास हो गया कि वे लोग प्रकृति से विषय–वासना वाले मनुष्य थे। उसे अपनी दशा अब इतनी दुखदायी न मालूम होती थी। उसे भोली से अपने को ऊँचा समझने का एक आधार मिल गया था।

सुमन का गर्व शीघ्र ही खंडित हो गया। रामनवमी के दिन सुमन एक बड़े मन्दिर में जन्मोत्सव देखने गई। सुमन ने खिड़की में से आँगन में झाँका तो क्या देखा कि वही उसकी पड़ोसिन भोली बैठी गा रही है। सभा में एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे कोई वैष्णवी तिलक लगाए, कोई भस्म रमाए, कोई गले में कंठी माला डाले और कोई रामनाम की चादर ओड़े। इस घटना का बीस वर्षीय सुमन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसने साक्षात् अनुभव किया कि भोली के सामने केवल धर्म सिर ही नहीं झुकाता, धर्म उसका कृपाकांक्षी भी है। धर्मात्मा लोग भी उसका आदर करते हैं। एक दिन सुमन कई पड़ोसिनों के साथ गंगा नहाने के लिए गई। रास्ते में वह बेनी पार्क में एक बैंच पर बैठ गई। तभी उसके कानों में आवाज आई अरे! यह कौन औरत बैंच पर बैठी है ? उठ वहाँ से क्या सरकार ने तेरे ही लिए बैंच रख दी है ? यह सुनकर सुमन ने मुहं फेरा तो बाग का रक्षक उसे डाँट रहा था थोड़ी देर में उसने देखा की भोली किसी अन्य के साथ वहाँ पर आई। बाग के रक्षक ने उनकी गाड़ी का द्वार खोला और उनके पीछे–पीछे सेवकों के समान चलने लगा। थोड़ी देर में वे उसी बैंच पर आकर बैठ गई जहाँ से रक्षक ने सुमन को हटा दिया था। यह दशा देखकर सुमन की आँखों में से क्रोध के मारे चिंगारियाँ निकलने लगीं। उसके एक–एक रोम से पसीना निकल आया। देह तृण के समान काँपने

लगी। हृदय में अग्नि की एक प्रचंड ज्वाला दहक उठी। इस घटना के बाद वकील साहब पद्मसिंह के घर हुए जलसे का प्रभाव तो उस पर अमिट रूप में पड़ा। उसने देखा कि भोली की दृष्टि जिस पर पड़ जाती थी, वह गद्‌गद्‌ हो जाता था और जिससे हँस–हँसकर वह एक दो बात कर लेती उसे तो मानो कुबेर का धन मिल जाता। उस भाग्यशाली पुरुष पर सारी सभा की सम्मान दृष्टि पड़ने लगती। उसके सभा में एक से एक विद्वान, एक–से–एक रूपवान सज्जन उपस्थित थे, किन्तु सबके सब इस वेश्या के हाव–भाव पर मिट जाते थे। सुमन सोचने लगी इस स्त्री में कौन सा जादू है। वह भोली के सौन्दर्य की तुलना करने लगती है और धीरे–धीरे इस निष्कर्ष पर पहुँचती है –

"सौन्दर्य ? हाँ, हाँ वह रूपवती है, इसमें संदेह नहीं। मगर मैं भी तो ऐसी बुरी नहीं हूँ। वह साँवली है, मैं गोरी हूँ। वह मोटी है, मैं दुबली हूँ। ... क्या लोग उसके स्वर लालित्य पर इतने मुग्ध हो रहे हैं ? उसके गले में लोच नहीं मेरी आवाज उससे बहुत अच्छी है अगर कोई महीने भर भी सिखा दे तो मैं उससे अच्छा गाने लगूँ। मैं भी वक्र नेत्रों से देख सकती हूँ। मुझे भी लज्जा से आँखें नीची करके मुस्कराना आता है।"

समाज में नीच समझी जाने वाली भोली का ऐसा सम्मान देखकर सुमन के मन में अन्तर्द्वन्द्व का होना स्वाभाविक ही था। भोली का सर्वत्र सम्मान देखकर उसका ब्राह्मणत्व, उच्चता, कुल संस्कार और यहाँ तक कि उसकी आत्मा भी हिल उठी। पति के निर्मल व्यवहार ने उसकी भावनाओं को कुचल दिया। अपने सम्माननीय पति के घर, वकील पद्मसिंह के घर से जब उसको निकाल दिया गया, तब समाज में आदर और सम्मान प्राप्त हुआ भोली वेश्या के यहाँ। इस कारण यदि वहाँ की होकर रह गई तो इसमें आश्चर्य क्या? उसका मानसिक अन्तर्द्वन्द्व वास्तव में भोली के यहाँ पहुँचने पर ही कुछ समय के लिए शांत हो पाया।

सुमन का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व इस समाज में आने के बाद फिर सुगबुगा उठा। इस प्रकार से वह छः महीने में ही रूप के इस हाट से उकताने लगी, तभी विट्ठलदास जैसे समाज–सुधारक के संपर्क में आने पर वह उनकी बात भी मानने लगती है। यहाँ आकर उसे मालूम होता है कि निर्लज्जता ही सब कष्टों से अधिक दुस्सह है। इससे आत्मा का संहार हो जाता है। वह अपने जीवन का आधार सेवावृत्ति बना लेती है और वेश्यावृत्ति का परित्याग कर देती है।

इस प्रकार सुमन के सम्पूर्ण जीवन चरित्र के अध्ययन करने के बाद हमें ज्ञात होता है कि वह अपने चरित्र की पवित्रता के विषय में बहुत सजग रहती है। परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप उसका मनसिक अन्तर्द्वन्द्व बढ़ जाता है पर वह शीघ्र ही अपनी भावनाओं पर काबू पा लेती है और शीघ्र ही सहज सामान्य होकर अपने आपको नई परिस्थिति में ढालने लगती है। इसीलिए हम उसके बारे में कह सकते हैं कि वह कीचड़ में कहीं नहीं फँसती बल्कि कीचड़ में कमल की भाँति निस्पृह रहती हुई पवित्रता को सुरक्षित रखने में सफल रहती है।

शांता

सुमन की छोटी बहन शांता उसी की तरह सुन्दर रूपवती है, गुणशीलवान है परंतु बचपन से ही शांता का स्वभाव सुमन से भिन्न है। शांता सुमन की तरह चंचल, अल्हड़ नहीं है, वह अपने नाम को सार्थक करने वाली शांत स्वभाव

की गंभीर लड़की है। पिता के जेल जाने के बाद वह माँ के साथ मामा–मामी के घर आती है। मामा, उमानाथ तो भले आदमी हैं, बहन और भाँजी को प्रेम से रखना चाहते हैं। मामी – जान्हवी झगड़ालू, दुष्ट स्त्री है। चिंता, शोक और निराशा के कारण शांता की माँ बीमार पड़ जाती है और बिना दवाई, उपचार के उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है। शांता का एकमात्र अवलंबन भी नष्ट होता है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति शांता को ढ़ीठ बना देती है। मामी की जली–कटी बातों का बहुदा वह उत्तर भी देती है।

मामा उसके लिए अच्छा वर ढूँढ लाते हैं। सदनसिंह जैसे उच्च, धनी खानदान की सुन्दर युवक से उसकी शादी तय होती है किंतु दुर्भाग्य उसका पीछा नहीं छोड़ता। उसकी बड़ी बहन सुमन की दुर्गति की खबर ससुराल वालों को लगती है और वे बड़ी निर्ममता से बारात वापस ले जाते हैं। ऐसी कठिन परिस्थिति में भी शांता धीरज नहीं खोती। उसके पति के चाचा, वकील पद्मसिंह को पत्र लिखकर उसे वहाँ से ले जाने के लिए प्रार्थना करती है। पत्र में पद्मसिंह को 'धर्म–पिता' संबोधित करती है, जिसे पढ़कर वह वशीभूत हो जाते हैं। अतः वे तुरंत विठ्ठलदास को साथ लेकर शांता को काशी ले आते हैं। प्रेमचंद जी नहीं चाहते थे कि स्त्री मोम की गुड़िया बनी रहे। उसमें अपनी उन्नति का, प्रगति का मार्ग ढूँढने की इच्छा होनी चाहिए। उसमें भले–बुरे को पहचानने की शक्ति होनी चाहिए। यही विशेषताएँ हम शांता में भी पाते हैं। शांता अपने निर्णयों पर अडिग होती है। उसके मामा जब उसका विवाह दूसरी जगह तय कराना चाहते हैं, तब वह उस प्रस्ताव का विरोध करती है। भले ही विवाहविधि पूर्ण न हुई हो, मगर वह सदन को ही अपना पति मानती है। अनेक बाधाओं को पार करते हुए उसे अंत में पा लेती है।

कठिनाइयों से गुजरते वक्त मनुष्य के गुण उभरकर सामने आते हैं, अपनी अच्छाइयों से वह लोगों को और परिस्थिति को भी जीत लेता है। मगर सुख में, आराम में वह अपने सद्गुण भूलता नज़र आता है। प्रेमचंद जी ने शांता के चरित्र से यह बातें हमारे सामने रखी हैं। सदन और शांता की गृहस्थी के आरंभ में उन्हें सुमन की जरूरत होती है, उस वक्त तो उसे घर में बेझिझक रखा जाता है, पर जैसे शांता का ससुराल वालों से मेल–मिलाप हो जाता है, उसे सुमन की अब कोई आवश्यकता नहीं रहती। फिर सुमन की पिछली जिंदगी का पता लगकर आसपास के लोगों में कहीं हम बदनाम ना हो जाएं, इस आशंका से उसे सुमन का उनके साथ रहना खलने लगता है। सगी बहन होकर शांता सुमन से ऐसा व्यवहार करती है कि विवश होकर सुमन उसका घर छोड़कर चली जाती है। प्रेमचंद जी का यह नारी पात्र गुण–अवगुणों से युक्त होने के कारण ही सजीव बना है, प्रभावी है।

सुभद्रा

उस समय की बड़े घर की, कुलवान स्त्री का यह प्रतिनिधिक स्त्री–पात्र है। वकील पद्मसिंह की पत्नी सुभद्रा है। सुभद्रा और पद्मसिंह का दाम्पत्य जीवन सुख और प्रेम का है, आदर्श है। गृहस्वामिनी का पूरा अधिकार सुभद्रा ने पाया है। अपने आपको इस अधिकार के लिए सुभद्रा ने सिद्ध भी किया है। किफायती से घर चलाकर वह पति की आमदनी से बचत भी होशियारी से करती है। तथा इस धन का उपयोग वह खुद के लिए नहीं करती, अपने पति को आवश्यकता पड़ने

पर वह तुरन्त पैसे निकालकर देती है। सदन के लिए घोड़ा खरीदना केवल सुभद्रा के कारण ही संभव होता है। सुभद्रा अपना सुख अपने पति के सुख में ही देखती है। इसलिए सन्तानहीन होकर भी वह घर में योग्य मान पाती है।

ज्यादा पढ़ीलिखी ना होते हुए भी उसकी समझ–बूझ अच्छी है। जब अपने पत्र में संपादक प्रभाकर राव लेखमाला छापते हैं और पद्मसिंह पर मार्मिक चोट करते हैं, पद्मसिंह तिलमिला उठते हैं। लेख का उत्तर लिखने बैठ जाते हैं। उस वक्त सुभद्रा उन्हें योग्य मशवरा देती है। वह कहती है, "यह लेख नहीं, खुली हुई गालियाँ हैं और गालियों का उत्तर गाली से मूर्ख देते हैं। अतः गालियों का सही उत्तर मौन है।" अपनी विचारशीलता से वह पति के मन में स्थान निर्माण करती है।

सुभद्रा सुमन की सहेली है और हितेच्छु भी। इसीलिए अपने पति का नौकर के द्वारा सुमन के घर से बाहर निकलना उसे बहुत बुरा लगता है। इस बात पर वह पति को कड़े शब्दों में उलाहना देती है, पद्मसिंह भी चुपचाप सिर झुकाए सुन लेते हैं। क्योंकि सुभद्रा का उन पर अधिकार होता है।

उपन्यास के अंत में सुभद्रा बड़ी उत्सुक्ता से सुमन का 'सेवासदन' आश्रम देखने जाती है। उसे सुमन से पहले स्नेह होता है, पर आश्रम देखकर उसके मन में उसके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। आश्रम का उत्तम प्रबंध हर जगह की उत्तम सफाई और लड़कियों के खिले हुए चेहरे देखकर सुभद्रा दंग रह जाती है।

भोली

भोली एक वेश्या है, जो सुमन के घर के सामने ही रहती है। वेश्या के लिए आवश्यक सभी विशेषताएँ उसमें हैं। दिखने में सुंदर है, जो कुछ कसर है वह बनाव शिंगार से पूरी करती है। गायनकला में पारंगत है। अपनी कला तथा सौंदर्य के बल पर उसने शहर के बड़े धनी लोगों को अपने वश में रखा है। सिर्फ पुरुषों को ही नहीं स्त्रियों से भी घुलमिल कर अपने प्रति अच्छा मत बनवाने में निपुण है।

पहले पहल सुमन उसकी तरफ घृणा से देखती है। मगर भोली खुद आकर उससे बातचीत करती है, मौलूद के वक्त उसके घर मिठाई भिजवाती है। सुमन भी देखती है कि कितने बड़े–बड़े लोग, सभ्य लोग भोलीबाई के समारोह में शामिल होने आये। इतना ही नहीं, सुमन का पति भी समारोह में शामिल होता है। इस तरह भोलीबाई सुमन का मन जीतने में सफल होती है। सुमन जब घर से पति द्वारा निकाली जाती है, तब भोली के सहारे चली जाती है, इतना विश्वास भोली उसके मन में पैदा करती है। भोली बड़ी चतुरता से सुमन की तारीफ करती है, "तुम्हें तो रानी बनना चाहिए था। मगर पाले पड़ी एक खूसट के जो तुम्हारा पैर धोने के लायक भी नहीं।" बाद में अपना बखान करती है कि किस तरह शहर के लोग उसकी इज्जत करते हैं, यहाँ तक कि मंदिर के महंत जी भी एक बुलावा भेजते ही दोड़े चले आते हैं, वगैरह। भोले–भाले स्वभाव की सुमन उसके झाँसे में आ जाती है। उसे रेशमी साड़ी से सजाकर, सँवारकर वह अपनी महरी से किसी सेठ को पंजे में लाने की बात बड़ी दुष्टता से करती है। इस प्रकार 'भोली' नाम की चालाक वेश्या का चित्रण प्रेमचंद जी करते हैं। उपन्यास में हमें वह थोड़े समय के लिए मिलती है, परंतु सुमन की और परिणामस्वरूप सुमन के परिवार की तबाही का कारण बन जाती है।

7.3.2 'सेवासदन' के पुरुष पात्र

सदन

सदन सेवासदन उपन्यास का नायक है। वह पंडित मदनसिंह और भामा का इकलौता लड़का है। अतः उसका लालन–पालन बड़े चाव से हुआ है। इसी कारण उसकी आदत बिगड़ जाती है। उपन्यासकार के शब्दों में –

"माँ–बाप का इकलौता लड़का बड़ा भाग्यशाली होता है। उसे मीठे पदार्थ खूब खाने को मिलते हैं, किन्तु कड़वी ताड़ना कभी नहीं मिलती। सदन बाल्य काल में ढीठ, हठी और लड़ाका था। वयस्क होने पर वह आलसी, क्रोधी और बड़ा उद्दंड हो गया। माँ–बाप को यह सब मंजूर था वह चाहे जितना भी बिगड़ जाए पर आँख के सामने से न टले। उससे एक दिन का बिछोह भी न सह सकते थे। पद्मसिंह ने कितनी बार अनुरोध किया कि इसे मेरे साथ जाने दीजिए, मैं इसका नाम किसी अंग्रेजी मदरसे में लिखवा दूँगा किन्तु माँ–बाप ने कभी स्वीकार नहीं किया। सदन ने अपने कस्बे ही के मदरसे में उर्दू और हिन्दी पढ़ी थी। भामा के विचार में उसे इससे अधिक विद्या की ज़रूरत नही है।"

अपने माता–पिता की इन्हीं भावनाओं के कारण सुविधाएँ होते हुए भी सदन अधिक पढ़ न सका। धीरे–धीरे वह उद्दंड और आलसी होता चला गया। उसका मन अपने चाचा पद्मसिंह के पास जाने को बहुत करता था। उनके साबुन, तौलिये, जुते, स्लीपर, घड़ी और कालर को देखकर उसका जी बहुत लहराता। घर में सब कुछ था पर वह फैशन की सामग्री कहाँ ?

शौकीन तबीयत – सदन अपनी उक्त मानसिकता के कारण शौकीन तबीयत होता चला गया। एक बार जबकि पद्मसिंह को घर आना था और वह नहीं आये तो सदन ने अपने चाचा के पास जाने की जिद्द की। उसने मन में निश्चय कर लिया कि चाचा के पास भाग चलना चाहिए, क्योंकि अब उसे रेशमी अचकन और वार्निश के जूते पाने की आशा न थी। निश्चय करके वह रात में सब के सो जाने पर भाग खड़ा हुआ। शहर में पहुँच कर उसकी शौकीन मिजाज़ी और बढ़ गई शहर में हवाखोरी के बहाने से रईसजादों की तरह सैर करने निकला करता। "शाम को शर्माजी उसके लिए टिफिन तैयार करवा देते। तब सदन गर्व से अपना सूट पहनकर घूमने निकलता। ... वह कभी दालमण्डी की तरफ जाता, कभी चौक की तरफ। उसके रूप–रंग, ठाट–बाट पर बूढ़े, जवान सब की आँख उठ जाती। युवक उसे ईर्ष्या से देखते, बूढ़े स्नेह से। लोग राह चलते–चलते उसे एक आँख देखने को ठिठक जाते दुकानदार समझते कि यह किसी रईस का लड़का है। इन दुकानों के ऊपर सौंदर्य का बाजार था। सदन को देखते ही उस बाजार में एक प्रकार की हलचल मच जाती। वेश्याएँ छज्जों पर आकर खड़ी हो जाती और प्रेम कटाक्ष के बाण उस पर चलाती। देखें वह बहका हुआ कबूतर किस छतरी पर उतरता है।"

हृष्ट–पुष्ट युवक– सदन एक हृष्ट–पुष्ट और सुन्दर युवक था। उसे व्यायाम का शौक था। इस कारण उसकी देह–दृष्टि निखरती चली गई। प्रेमचन्द ने लिखा है –

"हाँ प्रातः काल थोड़ी सी कसरत ज़रूर कर लिया करता था। उसका उसे व्यसन था। अपने गाँव में उसने एक छोटा सा अखाड़ा बनवा रखा था। यहाँ अखाड़ा तो न था। कमरे में ही डंड कर लेता। ... वह अत्यन्त रूपवान, सुगठित, बलिष्ठ युवक था, देहात में रहा, न पढ़ना, न लिखना, न मास्टर का भय, न परीक्षा की चिंता, सेरों दूध पीता था। घर की भैंस थी–घी के लौंदें के लौंदें उठा खा जाता। उस पर कसरत का शौक। शरीर बहुत सुडौल निकल आया था। छाती चौड़ी गर्दन तनी हुई, ऐसा जान पड़ता था मानों देह में ईंगुर भरा हुआ है। उसके चेहरे पर वह गंभीरता और कोमलता न थी, जो शिक्षा से उत्पन्न होती है उसके मुख से वीरता और उद्दंडता ढलकती थी। आँखें मतवाली, सतेज और चंचल थीं।"

विलासोन्मुख – सदन को शहर में आकर शहर की हवा लग गई। उसके चाचा पद्मसिंह ने उसके लिए एक मास्टर रखा, किन्तु सदन की उस ओर रूचि नहीं थी। सदन अपने को रसिया दिखाना चाहता था, प्रेम से अधिक बदनामी का आकांक्षी था। इस समय यदि उसका कोई अभिन्न मित्र होता तो सदन अपने कल्पित दुष्प्रेम की विस्तृत कथांए वर्णन करता। धीरे–धीरे उसके चित्त की चंचलता यहाँ तक बढ़ी कि उसका पढ़ना लिखना छूट गया। मास्टर आते और पढ़ाकर चले जाते। सदन को उनका आना बहुत बुरा मालूम होता। उसका मन हर घड़ी बाजार की ओर लगा रहता, वही दृश्य आँखों में फिरा करते, रमणियों के हाव–भाव और मृदु मुस्कान के स्मरण में मग्न रहता।

धीरे–धीरे दो–तीन मास में ही सदन का संपूर्ण संकोच उड़ गया और फिटिन पर सवार दोनों आदमी उसे यमदूत की भाँति दिखाई देने लगे। उनकी उपस्थिति में उसकी वृत्तियाँ खुलकर नहीं खेल सकती थीं। अतः उनसे छुटकारा पाने का उसने उपाय सोचा। उसने अपने चाचा से आग्रह किया कि उसके लिए वे एक घोड़ा ले दें। वह इस तथ्य से सर्वथा अनभिज्ञ था कि सुमन के चले जाने के बाद पद्मसिंह का मन काम–काज में कम लगता था और उसके खर्चे को लेकर भी चाचा–चाची में चख–चख होती रहती है पद्मसिंह के इस प्रस्ताव पर कि इसी घोड़े पर ज़ीन खिंचवा लो–सदन सहमत नहीं होता है। वह बहुत दुर्बल है, सवारी में न ठहरेगा। कोई चाल भी तो नहीं, न कदम न सरपट। कचहरी से थका–माँदा आयेगा तो क्या चलेगा।

सदन का मन रखने के लिए पद्मसिंह को डिगवी साहब का घोड़ा चार सौ रूपये में खरीदना पड़ा। इस घोड़े के आ जाने पर वह अपनी बाँकी ? सज–धज के साथ चारों ओर घूमा करता। अब वह इतना निःशंक हो गया था कि दालमण्डी में घोड़े से उतर कर तम्बोलियों की दुकानों पर पान खाने बैठ जाता। वह समझते, यह कोई बिगड़ा हुआ रईसज़ादा है। उससे रूप हाठ की नई–नई घटनाओं का वर्णन करते। पद्मसिंह ने भी उसे कई बार देखा पर लज्जावश कुछ न कह पाते थे।

सदन सुमन के छज्जे के सामने किसी न किसी बहाने से अवश्य ठहर जाता। उसके रूप लावण्य में एक मनोहारी सरलता थी जो सदन को बार–बार अपनी ओर आकर्षित करती थी। उसके मन में इस सरल सौंदर्य मूर्ति को अपना प्रेम अर्पण करने की प्रबल लालसा जाग उठी। एक दिन सुमन का मुजरा समाप्त हुआ ही था कि सदन उसके कमरे में पहुँच गया। सुमन ने देखा –

"उसका चेहरा पद्मसिंह से मिलता हुआ मालूम होता था। हाँ, गंभीरता की जगह एक उद्दंडता झलकती थी। वह काँइयापन व क्षुद्रता जो इस मायानगर के प्रेमियों का मुख्य लक्षण है, वहाँ नाम को भी न थी। वह सीधा–सादा, सहज स्वभाव, सरल नवयुवक मालूम होता था।... सुमन उठी और मुस्कराकर सदन की ओर हाथ बढ़ाया।सदन का मुख लज्जा से अस्वर्ण हो गया। आँखे झुक गयीं। उस पर एक रौब–सा छा गया। मुख से एक शब्द भी न निकला।

सुमन सदन पर मोहित हो उठी, किन्तु पद्मसिंह और सभुद्रा की दृष्टि में और नीचे न गिरने के कारण इस प्रेम को छिपाती थी। सदन उसके भावों से अनभिज्ञ होने के कारण उसकी प्रेम शिथिला को अपनी धनहीनता पर अवलंबित समझता था। उसका निष्कपट मन प्रगाढ़ प्रेम में मग्न हो गया था। सुमन उसके जीवन का आधार बन गई थी। मगर विचित्रता यह थी कि प्रेम लालसा में इतना प्रबल होते हुए भी वह अपनी कुवासनाओं को दबाता था। उसका अक्खड़पन लुप्त हो गया था।.. पर सुमन की अनिच्छा दिनों–दिन बढ़ती देखकर उसने अपने मन में यह निर्धारित किया कि पवित्र प्रेम की क़दर यहाँ नहीं हो सकती, यहाँ के देवता उपासना से नहीं, भेंट से प्रसन्न होता है।

सदन के मन में यह भावना अधिक से अधिक पनपने लगी। कीमती उपहारों को प्राप्त करने की लालसा में माता–पिता और अपने चाचा से छल करने लगा। उसने अपने पिता को एक पत्र लिखा कि यहाँ मेरे भोजन का अच्छा प्रबन्ध नहीं है, लज्जावश चाचा साहब से कुछ कहा नहीं जा सकता, मुझे कुछ रूपये भेज दीजिये। वह अपनी बुद्धि से यह नहीं सोच पाया कि इस प्रकार का पत्र उनके माता–पिता और चाचा में कलह का कारण बन सकता है।

घर पर पत्र पहुँचते ही भामा ने पति को ताने देने शुरू किये, "इसी भाई का तुम्हें इतना भरोसा था, घमंड से धरती पर पाँव नहीं रखते थे। अब घमंड टूटा कि नहीं ? वह भी चाचा पर फूला हुआ था, अब आँखें खुली" मदनसिंह को संदेह हुआ कि सदन ने यह पाखंड रचा है। भाई पर उन्हें अखंड विश्वास था लेकिन जब भामा ने रूपये भेजने पर ज़ोर दिय, तो भेजने पड़े। रूपये पाकर वह सुमन को एक साड़ी भेंट करता है, किन्तु इस बात का भी वांछित प्रभाव न देखकर वह मौका पाकर अपनी चाची का एक कंगन चुराकर उसे भेंट करता है। सुमन उस कंगन को पहचान गई उसके हृदय पर एक बोझ–सा पड़ा। उसने कहा – "मेरे लिए सबसे अमूल्य चीज आपकी कृपा है वही मेरे ऊपर बनी रहे। इस कंगन को आप मेरी ओर से नई रानी साहिबा को दे दीजियेगा। मालूम होता है कि अभी आप मुझे बाज़ारू औरत समझे हुए हैं आप ही एक ऐसे पुरूष हैं जिस पर मैंने अपना प्रेम, अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, लेकिन आप ने अभी तक उसका कुछ मूल्य न समझा।"

सुमन की बात का सदन पर वांछित प्रभाव नहीं पड़ता है वह समझता है कि सुमन को इससे भी अनेक मूल्यवान उपहार मिलते रहते हैं इसलिए वह इसे उपेक्षा की दृष्टि से देख रही है और उसके दिए उपहार को लौटाना चाहती है। उपन्यासकार सदन की मानसिक दशा का चित्रण बड़े नपे–तुले शब्दों में करता है –

"सदन की आँखें भर आयी। उसने मन में सोचा, यथार्थ में मेरा ही दोष है। मैं उनके प्रेम जैसी अमूल्य वस्तु को इन तुच्छ उपहारों का इच्छुक समझता हूँ। मैं हथेली पर सरसों जमाने की चेष्टा में इस रमणी के साथ अनर्थ करता हूँ । आज इस नगर में ऐसा कौन है जो उसके प्रेम कटाक्ष पर अपना सर्वस्व न लुटा दे ? बड़े–बड़े ऐश्वर्यबान मनुष्य

आते हैं और वह किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती, पर मैं ऐसा भावशून्य नीच हूँ कि इस प्रेम–रत्न को कोड़ियों के भाव खरीदना चाहता हूँ।''

सदन का विवाह पक्का हो जाता है और उसे गाँव बुला लिया जाता है। वह गाँव की ओर चल देता है और उसकी विलास आकांक्षा अतृप्त रह जाती है। उसके बाद सदन का विवाह तय होता है। पिता द्वारा मान–मार्यादा की रक्षा के लिए उसके विवाह की रस्में पूरी नहीं हो पाती। पुनः सुमन की प्रेरणा से वह शांता के साथ विवाह की रस्में पूरी करता है, किन्तु सुमन की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखता। शांता के प्रसव काल में उसकी विलास आकांक्षा उभरती है और वह दालमण्डी जा पहुँचता है प्रेमचन्द ने इस समय की उस दशा के बारे में लिखा है –

''उसकी विलास–तृष्णा ने मन को फिर चंचल करना शुरू किया, कुवासनाएँ उठने लगीं। वह युवती मल्लाहिनों से हँसी करता, गंगातट पर जाता तो गंगास्नान करने वाली स्त्रियों को कुदृष्टि से देखता। यहाँ तक कि एक दिन इस वासना से विहल होकर वह दालमण्डी की ओर चला।''

अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित – सेवासदन उपन्यास में सदन सबसे अधिक अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित पात्र है। संभवतः उसके अन्तर्द्वन्द्व का कारण है समस्याओं के बारे में दो टूक फैसला न कर पाना। उसके बारे में उपन्यासकार ने लिखा है – ''विचारों की स्वतंत्रता विद्या, संगति और अनुभव पर निर्भर होती हैं। सदन इन सभी गुणें से रहित था। यह उसके जीवन का वह समय था जब हमको अपने धार्मिक विचारों पर अपनी सामाजिक रीतियों पर एक अभिमान सा होता है।'' सदन सामाजिक रीतियों और व्यक्तिगत एशणाओं में पिसता दिखाई पड़ता है। यथा –

''निःसंदेह सुमनबाई पर जान देता था, लेकिन उसके लौकिक शास्त्र में यह प्रेम उतना असभ्य न था, जितना सुमन की परछाई का उसके घर में आ जाना। उसने अब तक सुमन के यहाँ पान ना खाया था। अपनी कुल–मर्यादा और समजिक प्रथा को अपनी आत्मा से कहीं बढ़कर महत्त्व की वस्तु समझता था। उस अपमान और निंदा की कल्पना ही उसके लिए असह्य थी, जो कुलटा स्त्री से सम्बन्ध हो जाने के कारण उसके कुल पर आच्छादित हो जाती। वह जनवासे में पंडित पद्मसिंह की बाते सुन–सुनकर अधीर हो रहा था। वह डरता कि कही पिताजी उनकी बातों में न आ जाए।''

विवाह के असफल हो जाने पर सदन का मन पुनः सुमन की ओर झुकने लगा–किन्तु यहाँ आकर वह पुनः बड़ी दुविधा मे पड़ गया। उसे संशय होने लगा कि कही सुमनबाई को ये सब समाचार मालूम न हो गये हों।... यदि ऐसा होगा तो कदाचित् वह मुझसे सीधे मुँह बात भी न करेगी सम्भव है वह मेरा तिरस्कार करे। लेकिन संध्या होते ही उसने कपड़े बदले, घोड़ा कसवाया और दालमण्डी की ओर चला। लेकिन वहाँ पहुंचकर उसने सुमन के मकान पर ताला देखा पर किसी से पूछा नहीं। रात्रि काट आया। दूसरे दिन वह पुनः चला। उसका मन कुछ आश्वस्त–सा हो चला था। वह सोचने लगा –

''सुमन मुझसे कभी नाराज नहीं हो सकती और जो नाराज़ भी हो तो क्या मैं उसे मना नहीं सकता ? मैं उसके सामने हाथ जोडूँगा, उसके पैर पड़ूँगा और अपने आँसुओं से उसके मन का मैल धो दूँगा। वह मुझसे कितनी ही रूठे,

लेकिन मेरे प्रेम का चिन्ह अपने हृदय से नहीं मिटा सकती। आह! वह अगर अपने कमल नेत्रों में आँसू भरे हुए मेरी ओर देखेगी तो मैं उसके लिए क्या न कर डालूँगा ? यदि उसे कोई चिन्ता हो तो मैं उस चिन्ता को दूर करने के लिए अपने प्राण तक समर्पण कर दूँगा।"

सदन के भाव–विचारों से ज्ञात होता है कि वह अपनी मानसिक भावना की अन्तर्द्वन्द्व अवस्था में कभी तो सुमन की बहन की परछाई से भागता है और कभी सुमन के पैरों में पड़कर अपने अपराध क्षमा करवा लेना चाहता है उसकी यह दुविधा उसका पीछा अन्त तक नहीं छोड़ती।

दालमण्डी के सामने पहुँचने पर उसने सोचा, कहीं वह मुझे देखे और अपने मन में कहें "वह जा रहे हैं कुँवर साहब, मानों सचमुच किसी रियासत के मालिक हैं कैसे कपटीधूर्त हैं" यह सोचते ही उसके पाँव बंध गये और वह आगे न जा सका।

सदन की अपनी कोई स्वतंत्र विचार शक्ति तो है नहीं! इसी कारण वह भावनाओं के जंगल में भटकता रहता है। एक संध्या प्रोफेसर रमेशदत्त का व्याख्यान सुनकर उसने सोचा, "मैं बहुत बचा, नहीं तो कहीं का न रहता। इन्हें अवश्य शहर से बाहर निकाल देना चाहिए। यदि ये बाजार में न होती तो मैं सुमनबाई के जाल में कभी न फँसता।" उस पर वेश्या विरोधी भाषणों का प्रभाव धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है। इसी का प्रभाव था कि वह किसी वेश्या को पार्क में, फिटन पर टहलती या बैठी देख लेता तो उसे ऐसा क्रोध आता कि उसे जाकर उठा दे। उसका वश चलता तो इस समय वह दालमण्डी की ईंट से ईंट बजा देता। इस समय नाच कराने वाले, देखने वाले दोनों ही उसकी दृष्टि में संसार के सबसे पतित प्राणी थे। वह उन्हें कहीं अकेले पा जाता, तो कदाचित् उनके साथ कुछ असभ्यता से पेश आता। सदन के मन की इस अवस्था के बारे में उपन्यासकार का विचार है कि "सदन इस समय आत्म सुधार की लहर में बह रहा था। रास्ते में अगर उसकी दृष्टि किसी युवती पर पड़ जाती तो तुरन्त ही अपने को तिरस्कृत करता और अपने मन को समझाता कि इस क्षण भर के नेत्र सुख के लिए तू अपने भविष्य जीवन का सर्वनाश किए डालता है। इस चेतावनी से उसके मन को शांति होती थी।"

सदन का मन अत्यधिक डाँवाडोल था। उसके निश्चयों में किसी प्रकार की दृढ़ता न थी। एक दिन गंगास्नान के लिए जाते हुए चौक में वेश्याओं का एक जलूस दिखाई दिया। सौंदर्य, स्वर्ण और सौरभ का ऐसा चमत्कार उसने कभी न देखा था। रेशमी रंग और रमणीयता का ऐसा अनुपम दृश्य शृंगार और जगमगाहट की ऐसी अद्भुत छटा उसके लिए बिल्कुल नयी थी, मन को बहुत रोका, पर रोक न सका, किन्तु जलूस के चले जाने के बाद वह अपने आपको धिक्कारने लगा। तथा –

"वाह! मैंने अपनी आत्मा का कितना पतन कर दिया ? मुझमें कितनी निर्बलता है ? लेकिन अंत में उसने अपने को समझाया कि केवल इन्हें देखने से मैं पाप का भागी थोड़े ही हो सकता हूँ ? मैंने इन्हें पाप की दृष्टि से नहीं देखा। मेरा हृदय कुवासनाओं से पवित्र है। परमात्मा की सौंदर्य सृष्टि से पवित्र आनन्द उठाना हमारा कर्तव्य है "सदन की यह विचार शृंखला आगे बढ़ती है और वह पुनः सोचने लगता है –

"सौंदर्य भी कैसी वस्तु है, लोग कहते हैं कि अधर्म से मुख की शोभा जाती रहती है पर इन रमणियों का अधर्म उनकी शोभा को और भी बढ़ाता है। कहते हैं मुख हृदय का दर्पण है। पर यह बात भी मिथ्या जान पड़ती है।"

ऐसे तर्क–वितर्क में झूलता हुआ सदन गंगातट की ओर चल दिया और वहां सुमन का रूपान्तर देखकर ठिठक गया। सदन ने देखा–उसके पैर कांप रहे थे, वह उस जगह से निकला, कोई इशारा भी न किया। सुमन के दूर निकल जाने पर वह अपने को छिपाता हुआ उसके पीछे चला। वह देखना चाहता था कि सुमन कहाँ जाती है। इससे स्पष्ट है कि सदन का अन्तर्द्वन्द्व वास्तव में भाव तरंगों के उतार–चढ़ाव के साथ–साथ पेंगे बढ़ाता हुआ कभी कम हो जाता है और कभी बहुत आगे बढ़ जाता है। इसका प्रमुख कारण यही है कि सदन का अपने मन, भाव और विचारों पर कोई नियंत्रण नहीं है।

शांता के विधवाश्रम में आ जाने से सुमन की विचारधारा में परिवर्तन आया। उसने मन में सोच लिया कि वह सदन से न बोलेगी, किन्तु बिना बोले शांता की समस्या सुलझती दिखाई नहीं देती थी। इस कारण जब सदन उसे दिखाई देता है तो वह उससे स्पष्ट रूप से कहती है "भला यह कहां की नीति है कि एक भाई चोरी करे और दूसरा पकड़ा जाए। अतः तुमसे कोई बात छिपी नहीं है, अपने खोटे नसीब से, दिनों के फेर से, पूर्वजन्म के पापों से मुझ अभागिनी ने धर्म का मार्ग छोड़ दिया। उसका दण्ड मुझे मिलना चाहिए था और वह मिला। लेकिन इस बेचारी ने क्या अपराध किया था कि जिसके लिए तुम लोगों ने इसे त्याग दिया? इसका उत्तर तुम्हें देना पड़ेगा। देखो, अपने बड़ों की आड़ मत लेना यह कायर मनुष्य की चाल है। सच्चे हृदय से बताओ, यह अन्याय था या नहीं और तुमने कैसे घोर अन्याय होने दिया? क्यों तुम्हें एक अबला बालिका का जीवन नष्ट करते हुए तनिक भी दया न आयी।" सुमन की इस बात का सदन कोई उत्तर नहीं दे पाता है।

कर्मठ – सुमन के प्रबोध करने पर सदन में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है। अपने प्रति शांता की निष्ठा देखकर उसमें प्रेमाभिलाषा ही नहीं जगती बल्कि उसमें कर्मठता भी जाग जाती है। प्रेमचन्द ने स्पष्ट किया है कि शांता का परित्याग करने के लिए सदन को तीन भयों ने प्रेरित किया था। (1) लोक–निन्दा का भय (2) माता–पिता के दुःखित होने तथा रूष्ट होने का भय।

लोकनिंदा का भय – सदन ने लोकनिंदा के भय पर विचार किया है। मुझे संसार का इतना भय क्यों है ? संसार मुझें क्या दे देता है ? क्या केवल झूठी बदनामी के भय से मैं उस रत्न को त्याग दूँ, जो मालूम नहीं, मेरे पूर्वजन्म की कितनी ही तपस्याओं का फल है ? अगर अपने धर्म का पालन करने के लिए मेरे बंधुगण मुझे छोड़ दे तो क्या हानि है ? लोकनिंदा का भय इसलिए है कि वह हमें बुरे कामों से बचाती है अगर वह कर्तव्य–मार्ग में बाधक हो, तो उससे डरना कायरता है। नहीं, लोकनिंदा का भय मुझसे यह अधर्म नहीं करा सकता, मैं उसे मझधार में न डूबने दूंगा। संसार जो चाहे कहे, मुझसे यह अन्याय न होगा।" इस प्रकार पश्चाताप करके सदन लोकनिंदा के भय पर विजय प्राप्त करता है।

माता–पिता के रूष्ट होने का भय – सदन के मन में यह भावना घर कर जाती है कि यदि वह अपने माता–पिता की इच्छा के विरूद्ध कार्य करेगा, तो उसके माता–पिता उससे रूष्ट हो जायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि घर में उसे घुसने नहीं दिया जायेगा या उसे घर की सम्पत्ति से हटा दिया जायेगा या उसे आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। इसलिए आवश्यक यह है कि उसे अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। उक्त सब बातों को सोचने समझने के बाद वह अपनी मोहन माला बेच कर नाव खरीदता है और उसे चलवाकर पैसा कमाना आरम्भ कर देता है, उपन्यासकार के शब्दों में :–

''रूपयें की चाट बुरी होती है। सदन अतः उड़ाऊ–लुटाऊ युवक नहीं रहा। उसके सिर पर अब चिन्ताओं का बोझ है, कर्तव्य का ऋण है वह इससे मुक्त होना चाहता है। उसकी निगाह एक–एक पैसे पर रहती है उसे अतः रूपये कमाने और घर बनवाने की धुन है।''

स्वावलम्बी बनने की दिशा में वह अपने कदम आगे बढ़ा देता है दो माह तक लगातार काम करने के बाद उसे अच्छा लाभ हुआ। उस ने दो मल्लाहों को नौकर रख लिया। सदन मल्लाहों का नेता हो गया। उस का झोपड़ा तैयार हो गया। भीतर एक तख्ता था, दो पलंग, दो लैम्प, कुछ मामूली बर्तन भी। एक कमरा बैठने का था, एक खाना पकाने का, एक सोने का। द्वार पर ईटों का चबूतरा था। उस के इर्द–गिर्द गमले रखे हुए थे। दो गमलों में लताएं लगाई हुई थीं जो झोपड़ों के ऊपर जाती थीं।

इस प्रकार सदन का अपना मकान भी बन गया और उसने अपनी कल्पना के अनुरूप उसको सुन्दर भी बना दिया । परिश्रम के कारण वह दिन–दुनी रात–चौगुनी उन्नति करता चला गया। मल्लाहों की उसने बेगार समाप्त कर दी। मल्लाहों को वह सूद पर रूपया भी देने लगा। अब उसके मन में विचार आता था कि शांता को अपने घर ले आये पर इस कार्य में अपने चाचा पद्मसिंह की सहायता चाहता है।

सुमन के साथ जब रात में शांता आ गई तो वह बिना किसी से पूछे उसे अपने घर में रख लेता है और साहस का प्रदर्शन करता हुआ विवाह की शेष रस्मों को पूरा कर लेता है। मदनसिंह को जब यह समाचार मिलता है तो वे बहुत बिगड़ते हैं और अपनी सम्पत्ति में से कुछ भी नहीं देना चाहते। पर उसके पुत्र हो जाने के बाद वे आते हैं और पुत्र व पुत्र–वधु और उसके बेटे को अपना लेते हैं। इस बीच सदन अपनी कर्मठता के कारण नावों को चलवाने के साथ साथ चूने की कल भी खरीद लेता है इस प्रकार सदन की उद्योगशीलता पर सभी बहुत प्रसन्न होते हैं। सदन आरंभ में चाहे कैसा भी उद्दंड और किशोर अवस्था में भटका हुआ रहा हो पर अंत में वह अपने उत्तरदायित्व को समझने लगता है और उस बोझ में दबता हुआ अपने जीवन की बदली हुई परिस्थितियों को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। कहना न होगा कि हठी, उच्छृंखल, क्रोधी, उद्दंदड सदन अन्त में अत्यन्त सरल, कोमल, विनीत, संयमी और उदात्तवृत्ति वाला हो जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कैशोर्य और यौवन की संधिबेला में भटका हुआ सदन अंततः संभल जाता है।

गजाधर

गजाधर सेवासदन उपन्यास का एक प्रमुख पात्र है। वह पन्द्रह रूपये कमाने वाला दुहाजू है। उपन्यास के आरंभ में गंगाजली और उमानाथ के वार्तालाप के माध्यम से उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है यथा –

गंगाजली – भला किसी तरह तुम्हारी दौड़धूप तो ठिकाने लगी। लड़का पढ़ता है। ना?

उमानाथ – पढ़ता नहीं, नौकर है। एक कारखाने मे? 15 रुपये का बाबू है।

गंगा – घर द्वार है न ?

उमा – शहर में किसका घर होता है सब किराये के घर में रहते हैं।

गंगा – भाई – बन्द माँ–बाप हैं।

उमा – माँ–बाप दोनों मर चुके हैं और भाई –बन्द शहर में किसके होते है ?

गंगा – उमर क्या है ?

उमा – यही, कोई तीस साल ही होगी।

गंगा – देखने सुनने से कैसा है ?

उमा – सौ में एक । शहर मे कोई कुरूप तो होता ही नही। सुन्दर बाल, उजले कपड़े सभी के होते हैं। और गुण, शील बातचीत का तो पूछना ही क्या। बात करते मुहँ से फूल झड़ते हैं। नाम गजाधर प्रसाद है।

गंगा – तो दुहाजू होगा ?

उमा – है तो दुहाजू, पर इससे क्या ? शहर में कोई बुड्ढा तो होता ही नहीं, जवान लड़के होते हैं और बुड्ढे जवान, उनकी जवानी सदाहबार होती है वही हँसी दिल्लगी वही तेल–फुलेल का शौक। लोग जवान ही होते हैं और जवान ही मर जाते हैं। "

इससे स्पष्ट है कि उमानाथ के अनुसार गजाधर 15 रूपये मासिक कमाने वाला तीस वर्षीय दुहाजू है। जहाँ तक उसके व्यक्तित्व का प्रश्न है, उस पर शहरी सभ्यता का पूरा प्रभाव पड़ा हुआ है किन्तु इस सब के बावजूद जब गंगाजली उसे देखती है तो वह बहुत रोती है और उसे ऐसा दुःख होता है मानो किसी ने सुमन को कुएँ में डाल दिया।

इसी प्रकार जब सुमन ससुराल आती है तो वहाँ की अवस्था उसकी कल्पना से भी अधिक बुरी थी। मकान में केवल दो कोठरियाँ थीं और एक सायबान। दीवारों में चारों ओर लोनी लगी थीं। बाहर से नालियों की दुर्गन्ध आती रहती थी। धूप और प्रकाश का कहीं गुजर नहीं। इस घर का किराया 3 रुपये महीना था।

सुमन के सौन्दर्य पर मुग्ध गजाधर किसी भी प्रकार से सुमन को प्रसन्न रखना चाहता है उसकी बुआ हैजे में चल बसती है और महरी चौका बर्तन करने के वास्ते तीन रूपया महीने से कम पर राज़ी नहीं होती है तो वह तीसरे दिन घड़ी रात रहे उठा और सारे बर्तन माँज डाले, चौका लगा दिया, नल से पानी भर दिया। सुमन जब सोकर उठी तो यह कौतुक देख कर दंग रह गई इस प्रकार आत्महीनता की भावना से ग्रस्त गजाधर स्वयं सभी कार्य कर सुमन की नज़रों में उठना चाहता है।

गजाधर की यह चाल सफल हो जाती है और सुमन स्वयं ही कार्य करने लगती है थोड़े दिनों में उसे काम करने की आदत पड़ जाती है उसे अपने जीवन में आनन्द सा आने लगा। गजाधर उसकी प्रशंसा करने लगा उपन्यासकार के शब्दों में –

"गजाधर को ऐसा मालूम होता था मानो जग जीत लिया है अपने मित्रों से सुमन की प्रशंसा करता फिरता। इतने बड़े घर की लड़की घर का छोटे से छोटा काम भी अपने हाथ से करती है भोजन तो ऐसा बनाती है कि दाल रोटी में पकवान का स्वाद आ जाता है।

कृपणता – गजाधर और सुमन के स्वभाव में बहुत अन्तर है गजाधर अपनी आर्थिक स्थिति को अच्छी तरह जानता है, इसलिए वह अपनी हैसियत में ही रहना चाहता है। जबकि सुमन ने अब तक पिता के घर अच्छा खाया और पहना है दूसरी बात वह कि अभी अल्हड़ युवती है जिसने अभी दुनिया देखी नहीं जो जैसा कहता है उसे ठीक मानती चलती है द्वार पर खोमचे वालों की आवाज़ सुनकर उससे रहा न जाता था। अब तक वह गजाधर के साथ खाती थी पैसों पर झगड़ा होने के बाद अकेली खाने लगी। उपन्यासकर गजाधर की कृपणता के बारे में लिखता है –

"गजाधर ने सुमन को गृहस्वामिनी बना तो दिया था, पर वह स्वभाव से कृपण था। जलपान की जलेबियाँ उसे विषपान के सामान लगती थी। दाल में घी देखकर उसके हृदय में शूल होने लगता था। वह भोजन करता तो बटुली की ओर देखता कि कहीं अधिक तो नहीं बना है दरवाज़े पर दाल चावल फेंका हुआ देखकर शरीर में ज्वाला –सी लग जाती थी।"

सुमन ने अपने सहज स्वाभाविक तरीके से मासिक वेतन रूपये पाकर खर्च करने आरम्भ कर दिए और जब वे बीस दिन में खर्च हो गए तो गजाधर के सिर पर पहाड़ सा टूट पड़ा। उसने खर्च चलाने के लिए इधर–उधर से पैसे उधार माँगे पर न मिले तो निराश हो सुमन से झगड़ा करने लगा। उसने सुमन से कहा–उड़ाए नही, पर यह तो तुम्हें मालमू था कि इसी में महीने भर चलाना है उसी हिसाब से खर्च करना था।

सुमन–इतने रूपये में बरकत थोड़े ही हो जायेगी।

बातों ही बातों में जब झगड़ा बढ़ गया तो सुमन ने अपनी हँसुली गिरवी रखने को दी और गजाधर को उसे रखकर आना पड़ा।

गजाधार ने घर की हालत सुधारने के लिए कारखाने से लौटकर एक दुकान पर हिसाब–किताब लिखने का काम कर लिया। इसलिए वह अब रात को आठ बजे लौटता था। इस काम के लिए उसे पाँच रूपये और मिलते थे। पर उसे अपनी आर्थिक दशा में कोई अन्तर न दिखाई देता था। उसकी सारी कमाई खाने पीने में उड़ जाती थी। उसका संचयशील हृदय इस खा–पीकर बराबर की दशा से बहुत दुःखी रहता था। उस पर सुमन उसके सामने अपने फूटे कर्म का रोना रो–रोकर उसे और भी हताश कर देती थी।

गजाधर और उसकी पत्नी के मध्य कटुता धीरे–धीरे बढ़ती जाती है। अब उसे स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि सुमन का हृदय उसकी ओर से शिथिल होता जा रहा है और वह प्रेम रसपूर्ण बातो की अपेक्षा मिठाई के दोनों को अधिक आनन्दप्रद समझती है। अब वह अपने प्रेम और परिश्रम से फल न पाकर सुमन को अपने शासनाधिकार में लाने के लिए अपने शासन अधिकार का प्रयोग करने लगा और इस प्रकार दोनो में तनातनी बढ़ती चली गई।

आत्माभिमानी – गजाधर निर्धन हैं प्रत्येक पैसे को प्राप्त करने के लिए उसे कठोर परिश्रम करना पड़ता है किन्तु इतना होने पर भी उसका आत्माभिमान समाप्त नहीं होता। सुमन का भोली नामक वेश्या से हेल–मेल बढ़ता देखकर उसके तन–बदन में आग–सी लग जाती है और वह सुमन को डाँटता है।

सुमन ने दीनभाव से उत्तर दिया–उसने कई बार बुलाया तो चली गई। कपड़े उतारो अभी खाना तैयार हुआ जाता है। आज तुम और दिनों से जल्दी आ गये हो।

गजाधर – खाना पीछे बनाना, मैं ऐसा भूखा नहीं हूँ। पहले यह बताओ कि तुम वहाँ मुझसे बिना पुछे गयी क्यों ? क्या तुमने मुझे बिल्कुल मिट्टी का लौंदा ही समझ लिया है ?

सुमन–सारे दिन अकेले इस कुप्पी में बैठा भी तो नहीं जाता।

गजाधर – तो इसलिए अब वेश्याओं से मेल–जोल करोगी। तुम्हें अपनी इज्ज़त आबरू का भी कुछ विचार है ?

सुमन – क्यों भोली के घर जाने में कोई हानि है ? उनके घर तो बड़े बड़े लोग आते हैं, मेरी क्या गिनती हैं।

गजाधर – बड़े–बड़े लोग भले ही आवें, लेकिन तुम्हारा वहाँ जाना बड़ी लज्जा की बात है। मैं अपनी स्त्री को वेश्या से मेल–जोल करते नहीं देख सकता। तुम क्या जानती हो कि जो बड़े–बड़े लोग उसके घर आते हैं, वह कौन लोग हैं ? केवल धन से कोई बड़ा थोड़े ही हो जाता है, धर्म का महत्त्व धन से कही बढ़कर है। तुम उस मौलूद के दिन जमाव देखकर धोखे में आ गई होगी, पर यह समझ लो कि उसमें से एक भी सज्जन पुरूष नहीं था। मेरे सेठजी लाख धनी हो, पर उन्हें अपनी चौखट न लांघने दूंगा। यह लोग धन के घमंड में धर्म की परवाह नहीं करते उनके आने से भाजी पवित्र नही हो गई है। मैं तुम्हे सचेत कर देता हूँ कि आज से फिर कभी उधर मत जाना, नहीं तो अच्छा न होगा।

शंकाशील व्यक्ति – गजाधर जितना पतित्व के अभिमान में अल्हड़ सुमन को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न करता जाता है उतनी ही बात बिगड़ती जाती है। धीरे–धीरे अनेक शंकाएं उसके मन को घेरती चली जाती हैं। प्रेमचन्द ने उसके मन की अवस्था का चित्रण करते हुए लिखा है –

''गजाधर प्रसाद की दशा उस मनुष्य की सी थी, जो चोरों के बीच में अशर्फियों की थैली लिए बैठा हो। सुमन का वह मुख कमल जिस पर वह कभी भौरें की भांति मंडराया करता था, अब उसकी आँखों में जलती हुई आग के समान था। वह उससे दूर–दूर रहता। उसे भय था कि वह मुझे जला न दे। स्त्रियों का सौंदर्य उसका पति–प्रेम है। इसके बिना उनकी सुदरता इंद्रायण का फल है, विषमय और दग्ध करने वाला।'' गजाधर ने सुमन को प्रसन्न करने के लिए सब कुछ करके देख लिया, पर स्त्री के लिए आकाश के तारे तोड़ कर लाना उसकी सामर्थ्य के बाहर था।

तर्कशील – गजाधर की मानसिक दशा परिवर्तनशील रहती है। सुमन को तो पास–पड़ोस की स्त्रियों और भोली से दूर रखने में सफल हो जाता है पर जब भोली उसके घर आने जाने लगी तो गजाधर की स्थिति और विकट हो गई। चलते समय भोली ने उससे कहा–''अगर मुझे मालूम होता कि आप सेठ जी के यहाँ नौकर हैं तो अब तक कभी की आपकी तरक्की हो गई होती।'' इन शब्दों ने गजाधर के आत्माभिमान पर चोट की। वह सोचने लगा यह मुझे इतना नीच समझती है कि मैं इसकी सिफारिश से अपनी तरक्की कराऊँगा। ऐसी तरक्की पर लात मारता हूँ। उसने भोली को उसकी बात का कोई जवाब न दिया। भोली के बाद उसने सुमन को आड़े हाथों लिया और उसे डॉटते हुए समझाया भी। जिसमें उसकी तर्क–शीलता उभर कर आती है।

सुमन – उसमें कोई छूत तो नहीं लगी है। शीतल स्वभाव में वह किसी से घटकर नहीं, मान मर्यादा में किसी से कम नहीं, फिर बातचीत करने में मेरी क्या ऐंठी हुई जाती है ? वह चाहे तो हम जैसों को नौकर रख ले।

गजाधर – फिर तुमने बे सिर पैर की बात की। मान–मर्यादा धन से नही होती।

सुमन – पर धर्म से तो होती है।

गजाधर– तो वह बड़ी धर्मात्मा है ?

सुमन –यह भगवान जाने, पर धर्मात्मा लोग उसका आदर करते हैं। अभी राम नवमी के उत्सव में मैंने उसे बड़े–बड़े पंडितों और धर्मात्माओं की मंडली में गाते देखा। कोई उससे घृणा नहीं करता।

गजाधर – तो तुमने उन लोगों के बड़े–बड़े तिलक छापे देखकर ही उन्हें धर्मात्मा समझ लिया ? आजकल धर्म तो धूर्तो का अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागर में एक से एक मगरमच्छ पड़े हुए। भोले–भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है। लम्बी–लम्बी जटाएँ, लम्बे–लम्बे छापे–तिलक और लम्बी–लम्बी दाढ़ियाँ देखकर लोग धोखे में आ जाते हैं। पर वह सब के सब महापांखडी, भोगविलास करने वाले पापी हैं। भोली का आदर सम्मान उनके यहाँ न होगा तो किसके यहाँ होगा ?

गजाधर के इस तर्क का सुमन के ऊपर वांछित प्रभाव पड़ा और सुमन का व्यवहार बदल गया। जिस प्रकार वह अपनी पत्नी को रखना चाहता था वह रहने लगी। सारे दिन वह अपनी कोठरी में पड़ी रहती। कभी कुछ पढ़ती कभी सोती। इससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ चला।

गजाधर को चिंता होने लगी। कभी वह सुमन पर झुंझलाता। पर शीघ्र ही उसे सुमन पर दया आ जाती। अपनी स्वार्थपरता पर लज्जित होता। उसे धीरे–धीरे ज्ञान होने लगा कि सुमन के सारे रोग अपवित्र वायु के कारण हैं। कहाँ तो उसे चिक के पास खड़े होने से मना किया करता था, मेलों में जाने और गंगास्नान करने के लिए ताकीद करता। उसके आग्रह से सुमन कई दिन लगातार स्नान करने गई तो अनुभव हुआ कि उसका जी हल्का हुआ। मुरझाया हुआ पौधा पानी पाकर फिर लहलहाने लगा।

क्रोधी – गजाधर ने अपनी विवेक शक्ति का प्रयोग कर सुमन को आनेजाने की छूट तो दे दी पर उसका शंकाशील हृदय न बदला था। वकील पद्मसिंह की पत्नी से सुमन का मेल–जोल बढ़ चला। सुभद्रा के पास जाना होता तो वह गजाधर से कुछ भी नहीं कहती थी। इससे गजाधर के मन की दुःश्चिन्ता बढ़ती जाती थी। एक रात गजाधर नियामनुसार नौ बजे घर आया। किवाड़ बन्द थे चकराया कि इस समय सुमन कहाँ गयी ? पड़ोस में एक दर्जिन रहती थी, जाकर उससे पूछा। मालूम हुआ कि सुभद्रा के घर किसी काम से गयी है। कुंजी मिल गई, आकर किवाड़ खोले, खाना तैयार था। वह द्वार पर बैठ कर सुमन की राह देखने लगा। जब दस बज गये तो उसने खाना परोसा, लेकिन क्रोध में कुछ खाया न गया। उसने सारी रसोई उठकार बाहर फेंक दी और भीतर से किवाड़ बन्द करके सोया रहा। मन में यह निश्चय कर लिया कि आज कितना ही सिर पटके, किवाड़ न खोलूंगा, देखें कहाँ जाती किन्तु उसे बहुत देर नींद न आई जरा आहट होती तो डंडा लिए किवाड़ के पास आ जाता। उस समय यदि सुमन उसे मिल जाती, तो उसकी कुशल न थी।

रात को एक बजे जब सुमन ने कृत्रिम क्रोध के स्वर में कहा–वाह रे सोने वाले। घोड़े बेचकर सोये हो क्या ? दो घड़ी से चिल्ला रही हूँ, मिनकते ही नहीं। ठंड के मारे हाथ–पांव अकड़ गए।

गजाधर निशंक होकर बोला–मुझसे अड़ो मत। बताओ सारी रात कहा रहीं?

इसी प्रकार वाद – विवाद बढ़ता गया और सुमन के झूठे तर्कों और कठोर बातों से गजाधर क्रोधोन्मत्त होकर बोला –

''क्या तू चाहती है कि जो कुछ तेरा जी चाहे किया करे और मैं चू न करूँ। तू रात न जाने कहाँ रही, अब मैं पूछता हूँ तो कहती है, मुझे तुम्हारी परवाह नहीं है, तुम मुझे क्या कर देते हो ? मुझे मालूम हो गया है कि शहर का पानी तुझे भी लगा, तूने भी अपनी सहेलियों का रंग पकड़ा। बस अब मेरे साथ तेरा निर्वाह न होगा। कितना समझाता रहा कि इन चुड़ैलों के साथ न बैठ, मेले ठेले मत जा, लेकिन तूने सुना–न–सुना। मुझे जब तक बता न देगी कि तू सारी रात कहाँ रही तब तक मैं तुझे घर में न बैठने दूंगा न बताएगी तो समझ ले कि आज से तू मेरी कोई नहीं, तेरा जहाँ जी चाहे जा, जो मन में आये, कर।''

गजाधर को इस समय सुमन की प्रत्येक बात झूठी लगी। उसने यही समझा की सुमन इस समय केवल उसका क्रोध शांत करना चाहती है इसलिए नम्रता दिखा रही है ऐसी अवस्था मे सुमन के तर्क विफल हो गये और गजाधर ने उसे अंत में निकाल कर ही दम लिया।

पश्चाताप – गजाधर सुमन को घर से निकाल देता है और जब उसे यह पता चलता है कि सुमन वकील साहब के यहाँ गई है तो विट्ठलदास की बात को सत्य मानकर पदमसिंह की खूब बदनामी करता है पदमसिंह से मिलने पर उसे अपनी भूल ज्ञात होती है और वह पश्चाताप की अग्नि में जलने लगता है। अब घर उसे काटने को दौड़ने लगता है और वह गृहस्थी को त्याग कर साधु हो जाता है। कृष्णचन्द्र से मिलने पर जब वह उन्हें अपनी कथा सुनाता है तो उससे पश्चाताप ही प्रकट होता है।

"यह सब मेरी निर्दयता और अमानुषीय व्यवहार का फल है वह सर्वगुण सम्पन्न थी, वह इस योग्य थी कि किसी बड़े घर की स्वामिनी बनती। मुझ जैसा दुष्ट, दुराचारी मनुष्य उसके योग्य न था जो उस समय मेरी स्थूल दृष्टि उसके गुणों को न देख सकी। ऐसा कोई कष्ट न था जो उस देवी को मेरे साथ न झेलना पड़ा हो। पर उसने कभी मन मैला न किया। वह मेरा आदर करती थी पर उसका यह व्यवहार देखकर मुझे सब पर संदेह होता था कि वह मेरे साथ कोई कौशल कर रही है। उसका संतोष, उसकी भक्ति, उसकी गंभीरता मेरे लिए दुर्बोध थी। मैं समझता था, वह मुझसे कोई चाल चल रही है। अगर वह मुझ से छोटी–छोटी वस्तुओं के लिए झगड़ा करती, कोसती, ताने देती तो उस पर मुझे विश्वास होता। उसका ऊँचा आदर्श मेरे अविश्वास का कारण हुआ। मैं उसके सतीत्व पर संदेह करने लगा। अन्त में यह दशा हो गई कि एक दिन रात को एक सहेली के घर पर केवल जरा विलम्ब हो जाने के कारण मैंने उसे घर से निकाल दिया।"

इसी प्रकार जब एक रात सुमन डूबने जा रही थी, तो गजाधर अकस्मात् उसकी ओर चला गया और सुमन के पैरों में गिर कर रूद्र कंठ से बोला मेरे अपराध क्षमा करो।

सुमन के यह कहने पर कि यह सब मेरे कर्मों का फल है तो गजाधर कहता है नहीं सुमन ऐसा मत कहो सब मेरी मूर्खता और अज्ञानता का फल है। मैंने सोचा था कि उसका प्रायश्चित कर सकूँगा, पर अपने अत्याचार का भीषण परिणाम देखकर मुझे विदित हो रहा है कि उसका प्रायश्चित नहीं हो सकता।

उमानाथ चुनार गढ़ के निकट गंगा के तट पर खड़े नाव की बाट जोह रहे थे तभी उन्होंने एक साधु को अपनी ओर आते देखा सिर पर जटा, गले मे रूद्राक्ष की माला, एक हाथ में सुलफे की लम्बी चिलम, दूसरे हाथ में लोहे की छड़ी पीठ पर मृगछाला लपटे हुए आ कर नदी के तट पर खड़ा हो गया।

उसने स्पष्ट शब्दों में कहा –

"मेरी असज्जनता और निर्दयता, सुमन की चंचलता और विलास लालसा दोनों ने मिलकर हम दोनों का सर्वनाश कर दिया है। मैं उस समय की बातों को सोचता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि एक बड़े घर की बेटी से ब्याह

करने में मैंने बड़ी भूल की और इससे बड़ी भूल यह थी कि ब्याह हो जाने पर उसका उचित आदर सम्मान नहीं किया। निर्धन था इसलिए आवश्यक था कि मैं धन के अभाव को अपने प्रेम और भक्ति से पूरा करता। मैंने इसके विपरीत उससे निर्दयता का व्यवहार किया। अब मुझे मालूम होता है कि मैं उसे घर से निकालने का कारण हुआ, मैं उसकी सुन्दरता का मान न कर सका, इसलिए सुमन को भी प्रेम न हो सका। लेकिन वह मुझ पर भक्ति अवश्य करती थी, पर उस समय मैं अन्धा हो रहा था। कंगाल मनुष्य धन पाकर जिस प्रकार फूल उठता है उसी तरह सुन्दर स्त्री पाकर वह संशय और भ्रम में आसक्त हो जाता है। ... मैंने उसके साथ जो आत्याचार किए हैं उन्हें स्मरण करके आज मुझे अपनी क्रूरता पर इतना दुःख होता है कि जी चाहता है कि विष खा लूँ। उसी अत्याचार का प्रायश्चित कर रहा हूँ। उस के चले जाने के बाद दो–चार दिन तक तो मुझ पर नशा रहा, पर जब नशा ठंडा हुआ तो मुझे वह घर काटने लगा। मैं फिर उस घर में न गया। ... अब गाँव–गाँव घूमता हूँ और अपने से जहाँ तक हो सकता है दूसरों का कल्याण करता हूँ।''

सेवावृत्ति – उमानाथ के बताने पर वह कहता है – '' आप विवाह तय कर दीजिए। एक हज़ार रूपये का प्रबन्ध ईश्वर चाहेंगे तो मैं कर दूंगा। यह भेष धारण करके अब लोगों को आसानी से ठग सकता हूँ। दो–चार दिन में आपके ही घर पर आप से मिलूँगा।'' गजाधर अब गजानन्द बन चुका है। वह शांता के विवाह के लिए उमानाथ को पन्द्रह सौ रुपये देता है और एक हजार और एकत्रित करता है। इस प्रकार शांता के संपूर्ण विवाह का खर्च वह स्वयं ही जुटा कर देता है।

इस सेवावृत्ति भावना के कारण ही वह वेश्या सुधार के काम में भी जुट जाता है। सुमन को स्वप्न में गजानन्द का उपदेश सुनाई पड़ता है –

''सतयुग में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी, त्रेता में सत्य से, द्वापर में भक्ति से पर इस कलियुग में इसका केवल एक ही मार्ग है और वह है सेवा। इसी मार्ग पर चलो और तुम्हारा उद्धार होगा, जो लोग तुमसे भी दीन–दुःखी दलित है, उनकी शरण में जाओं और उनका आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा। कलियुग में परमात्मा इसी दुःख सागर में वास करते हैं।

''मैं स्वप्न में देख रहा था और तुम्हें सेवाधर्म का उपदेश कर रहा था। सुमन तुम मुझे भली–भाँति जानती हो। तुमने मेरे हाथो बहुत कष्ट उठाए हैं, कष्ट सहे है । तुम जानती हो मैं कितनी नीच प्रकृति का अधम जीव हूँ। अब अपनी उन नीचताओं का स्मरण करता हूँ तो मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है। तुम आदर के योग्य थी मैंने तुम्हारा निरादर किया है यह हमारी दुरावस्था का, हमारे दुःखो का मूल कारण है। मैंने अपने बन्धुओं की सेवा करने का निश्चय किया। यही मार्ग मेरे लिए सबसे सरल था। तब से मैं यथाशक्ति इसी मार्ग पर चल रहा हूँ और अब मुझे अनुभव हो रहा है कि आत्मोद्धार के मार्गों में केवल नाम का अन्तर है। मुझे इस मार्ग पर चलकर शांति मिली है और तुम्हारे लिए भी यही मार्ग उत्तम समझता हूँ।''

गजानन्द के मुख पर एक विमल ज्योति का प्रकाश देखकर सुमन के मन में उसके प्रति भक्ति की भावना उदित होती है और वह सोचने लगती है हाय ! मैंने ऐसे नवरत्न का तिरस्कार किया। इनकी सेवा में रहती तो मेरा जीवन

सफल हो गया होता। वह कहती है आज मैं सच्चे मन से यह प्रतिज्ञा करती हूँ । आप ने मेरी बाँह पकड़ी थी, अब यद्यपि मैं पतित हो गई हूँ पर आप ही अपनी उदारता से मुझे क्षमादान कीजिए और मुझे सन्मार्ग पर ले जाइए।

सुमन की इस बात का वांछित प्रभाव गजानन्द पर भी होता है। सुमन के चेहरे पर प्रेम और पवित्रता की छटा देखकर वह व्याकुल हो जाता है उसके मन में बरसों से दबे भाव पुनः जागृत होने लगते हैं। उन्हें स्वयं शंका होने लगी कि यदि मेरे मन में यह विचार ठहर गए तो मेरा संयम, वैराग्य और सेवाव्रत इसके प्रवाह में तृण के समान बह जायेगा, इसलिए वह अपनी भावनाओं पर अंकुश लगाकर तत्काल बोल उठा– ''तुम्हें मालूम है, यहाँ एक अनाथालय खोला गया है। इस अनाथालय के लिए एक पवित्र आत्मा की आवश्यकता है और तुम्हीं वह आत्मा हो।'' कहकर उसे अनाथालय का सेवाभार उठाने के लिए राज़ी कर लेता है और सुमन उसके आग्रह को नहीं टाल पाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्वामी गजानन्द कोई आलौकिक महापुरुष नहीं है। प्रेमचन्द ने उसके रूप में एक ऐसे साधु का चित्रण किया है, जो अपने रिश्तेदारों की भलाई और अपनी पत्नी के उद्धार के लिए प्रयत्नशील रहता है। घूमते–फिरते वह अपने स्वजनों के सुख–दुख की टोह रखता है और उनके संकट में उनकी सहायता के लिए जा पहुँचता है उसका माया–मोह अन्त तक नहीं छूटता। इसलिए हम कह सकते हैं कि वह साधु की अपेक्षा मानव के रूप में बहुत ऊँचा उठ जाता है। उसकी उच्च मानवता और उसका साधु रूप प्रेमचन्द की एक अद्भुत कल्पना है।

पदमसिंह

पंडित पद्मसिंह शहर के एक अच्छे वकील हैं। उनके बड़े भाई मदनसिंह जमींदार हैं। उन्होंने पद्मसिंह को वकालत पढ़ाई थी। अतः वह अपने बड़े भाई की बहुत इज्जत करते हैं। पद्मसिंह की वकालत पढ़ने से पहले एक शादी हुई थी, उसके एक बच्चा भी हुआ था किंतु छः महीने में ही बच्चा और पत्नी दोनों चल बसे। वकालत पास होने पर उनका दूसरा विवाह सुभद्रा से हुआ। अब इस विवाह को हुए सात साल हो चुके हैं पर उनकी कोई संतान नहीं है। इस एक त्रुटि को छोड़कर उनकी गृहस्थी बड़े सुख से, आराम से चल रही है। पद्मसिंह स्वयं एक भले आदमी हैं तथा उनकी पत्नी, सुभद्रा भी सुशील और समझदार औरत है।

पद्मसिंह किसी पर अन्याय होते हुए नहीं देख सकते। एक बार घोड़ागाड़ी में घर जाते हुए रास्ते में एक भले घर की स्त्री के साथ बगीचे का रक्षक हाथापाई करते नजर आता है, वह तुरंत गाड़ी से उतर कर रक्षक को डाँटते है और इस औरत को घर पहुँचा देते हैं।

पति के घर से निकाल देने पर सुमन पद्मसिंह और सुभद्रा के घर आश्रय के लिए आती है। पर गजाधर उनकी बदनामी करने लगता है तब पहली बार म्युन्सिपाल्टी के मेंबर बने पद्मसिंह अपने बदनामी से डर जाते हैं और सुमन को घर से निकाल देते हैं। इसी कारण सुमन भोलीबाई से आश्रय लेती है और अपनी दुर्गति कर लेती है। पद्मसिंह सुमन की दुर्गति के लिए खुद को जिम्मेदार मानते हैं और बहुत ही पछताते हैं। संयोगवश उनके भतीजे की शादी सुमन की बहन से तय होती है और सुमन की असलियत का पता लगने पर पद्मसिंह के बड़े भाई, भरी बारात बिना शादी किए वापस ले जाते हैं। उस वक्त भी पद्मसिंह अपनी तरफ से अपने बड़े भाई को समझाने की बहुत कोशिश करते

हैं इस हादसे से शांता के पिता आत्महत्या कर लेते हैं। अंततः शांता मदद के लिए पद्मसिंह को धर्मपिता मानकर पत्र लिखती है। बड़े भाई के क्रोध से डर होते हुए भी वे तुरंत उसकी मदद करने निकलते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पेशे से वकील होते हुए भी पद्मसिंह जी बहुत ही सीधे और सच्चे इन्सान हैं। सुमन को वेश्याव्यवसाय से बाहर निकालने के लिए वह बड़ा त्याग करते हैं। हैसियत ना होते हुए भी महीना पचास रुपए उसे देना तय करते हैं। वेश्या व्यवसाय, भरे बाज़ार से हटाने के लिए वह जी तोड़ मेहनत करते हैं और म्युन्सिपालिटी में प्रस्ताव संमत कराते हैं।

बड़े भाई के किये हुए उपकारों का स्मरण रखकर वह अपने भतीजे मदनसिंह को भी पढ़ाना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। उसके कपड़े, बूट यहाँ तक कि उसके शौक को पूरा करने के लिए साढ़े चार सौ रुपयों का घोड़ा भी खरीदते हैं। उसकी शादी, उसने शुरू किया नया कारोबार, हरवक्त वह मदनसिंह के साथ रहते हैं। सदन और शांता के बेटा होने पर बड़े आनन्द से गाँव जाकर अपने बड़े भाई और भाभी को पोता दिखाने के लिए शहर ले जाते हैं। पद्मसिंह अपनी पत्नी सुभद्रा से अत्याधिक प्रेम करते हैं, उसे बड़े मान से रखते हैं। महत्त्वपूर्ण मसलों पर उसकी राय लेते हैं, और राय मानते भी हैं। सुमन की दुर्गति के लिए खुद को दोषी मानने के कारण वह अंत तक सुमन से मिलने नहीं जाते।

उस समय का पढ़ा–लिखा, समझदार और सही मायनों में सुधारक वृत्ति का पुरुष प्रेमचंदजी पद्मसिंह के रूप में हमारे सामने रखते हैं।

विट्ठलदास

विट्ठलदास एक समाजसेवक हैं। सार्वजनिक संस्थाओं में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। अनाथालयों के लिए चंदा जमा करना, दीन विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति का प्रबंध कराना ये उनके नित्य कार्य हैं। और जब कभी कहीं अकाल पड़े या बाढ़ आए तो मदद के लिए दौड़ पड़ते हैं। हैजे और प्लेग के दिन में उनका आत्मसमर्पण और विलक्षण त्याग देखकर लोग दंग रह जाते हैं पर उनमें दोष यह है कि उनके विचारों में प्रौढ़ता और दूरदर्शिता का अभाव है। पद्मसिंह जी ने अपने घर होली के दिन भोलीबाई का गाना रखा यह बात उनको अखरी और इसका बदला लेने के लिए उन्होंने गजाधर के कान पद्मसिंह के खिलाफ फूँके। जिसका परिणाम यह निकला कि पद्मसिंह ने सुमन को अपने घर पर आश्रय देने से इनकार किया। इस तरह सुमन की दुर्गति के जिम्मेदार गजाधर पद्मसिंह के साथ विट्ठलदास भी हैं लेकिन यह बात जब उन्हें पता चली तब पछतावा करने के बजाय अब इस पर क्या हो सकता है, इसकी सोच में भी वह लग गये। सुमन से मिलकर पहले उन्होंने उसे यह राह छोड़ने का आग्रह किया। उसका हृदयपरिवर्तन करने के लिए उन्होंने नीति–अनिति को, धर्म–अधर्म की बहुत सारी बातें सुनायीं – जो आज तक सुमन से किसी ने नहीं कही थीं। सुमन भी उनकी बातें सुनकर यह कुमार्ग छोड़ने के लिए तैयार हो गयी। पर उसने महीना पचास रुपए अपने खर्चे के लिए किसी से प्रबंध करने के लिए कहा। विट्ठलदास ने उसकी यह शर्त भी मंजूर कर ली और पैसे जुटाने के लिए कई लोगों से मिले। पद्मसिंह के सिवाय पैसा देने के लिए कोई तैयार नहीं था।

सुमन की तरह शांता की मदद करने के लिए भी विट्ठलदास ने बहुत दौड़–धूप की। उसे उमानाथ के घर से शहर ले आये तथा सदन उसको स्वीकार करने के लिए तैयार होने तक उसके रहने का प्रबंध अपने विधवाश्रम में किया।

इस प्रकार अपनी घर गृहस्थी की चिंता किए बिना समाज के दीन–दुखियारों की फिक्र में रहने वाला यह व्यक्ति है। अंत में पद्मसिंह जी विट्ठलदास की काम की लगन और काबिलियत देखकर म्युन्सिपालिटी में कोई अधिकार का पद देने की सोचते हैं परंतु विट्ठलदास राजी नहीं होते और अपने निःस्वार्थ कर्म की प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ना चाहते। विधवाश्रम के काम के साथ अब वह कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का उद्योग करते हैं।

प्रेमचंद जी विट्ठलदास द्वारा उनकी कल्पनाओं में स्थित एक निःस्वार्थ समाज सेवक का चित्र हमें प्रस्तुत करते हैं।

पंडित उमानाथ

पंडित उमानाथ गंगाजली के सगे भाई तथा सुमन के मामा हैं। प्रेमचंद जी ने यह बड़ा ही रोचक पात्र निर्माण किया है। इस महाशय में ऐसी विशेषताएँ हैं, जो देखते बनती हैं। उसके गाँव के लोग समझते थे कि पं. उमानाथ का इकबाल है, तो कोई समझता था, महावीर का इष्ट है, लेकिन प्रेमचंद जी के विचार में यह उनके मानव–स्वभाव के ज्ञान का फल था। वह जानते थे कि कहाँ झुकना और कहाँ तनना चाहिए। गाँववालों से तनने में उनका काम सिद्ध होता था, तो अधिकारियों से झुकने में दाने और तहसील कार्यालय के चपरासी से लेकर तहसीलदार तक सभी उन पर कृपादृष्टि रखते थे। तहसीलदार साहब के लिए वह वर्ष फल बनाते, तो डिप्टीसाहब को भावी उन्नति की सूचना देते। सामने वाले की श्रद्धा तथा माँग देखकर किसी को पूजा के लिए यंत्र देते तो किसी को भगवत्गीता सुनाते। और जिन लोगों की इन बातों पर श्रद्धा ना हो उन्हें मीठे आचार और नवरत्न चटनी जैसी लुभावनी चीजें देकर प्रसन्न रखते थे। जो काम थानेदार से भी नहीं बनता वह अपने तरकीबों से कराते थे। सारांश अपना लाभ बनाकर भी सामने वाले को खुश करने की तिकड़म लड़ाना जानते थे।

इतनी होशियारी होते हुए भी उमानाथ अपनी भांजी सुमन के लिए कोई अच्छा रिश्ता नहीं ला सके। उन्होंने कोशिश तो बहुत की पर बिना पैसे के कहीं भी बात नहीं बना सके। अतः गजाधर जैसे दुहाजु गरीब अधेड़ से शादी करा दी जो आगे चलकर सुमन के सर्वनाश का कारण बनी। उमानाथ की दूसरी भांजी शांता के लिए दौड़–धूप करने लगते हैं। इस प्रकार गजाधर से पैसों का बंदोबस्त होता है, और वह शांता के लिए अच्छा वर ढूँढने में सफल होते हैं।

पंडित उमानाथ अपनी बहन गंगाजली और दोनों भाँजियों को अपने घर प्रेम से रखना चाहते हैं, पर उनकी पत्नी जान्हवी के सामने उनकी एक नहीं चलती। शांता से जान्हवी का कुटिल व्यवहार चुपचाप देखने के सिवाय वह कुछ नहीं कर सकते। इस प्रकार बाहर कई हिकमतें लड़ाने वाला पुरुष अपनी स्त्री के सामने बिलकुल परास्त हो जाता है। इतना चालाक आदमी सुमन की दुर्गति की बात अपनी पत्नी से कह देता है और शांता की बन रही किस्मत अपने हाथों से बिखेर देता है। टूटी हुई शादी में भी अपनी तिकड़में चलाता है। दहेज का पैसा वापस पाने के लिए, फिर से वर ढूँढने के लिए निकल पड़ता है। इस प्रकार सामने आयी हुई हर स्थिति में अपनी राह खोजने वाला, मानवी स्वभाव का एक अनोखा पहलू प्रेमचंद जी यहाँ चित्रित करते हैं।

7.4 सारांश

इस अध्याय में आपने 'सेवासदन' के पात्रों को पढ़ा तथा समझा। कहा जाए तो उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक होती है। मुख्य पात्रों के साथ गौण पात्र भी अपनी विशेष भूमिका निभाते हैं। सेवासदन उपन्यास में सुमन उपन्यास की नायिका है तो उपन्यास की शान्ता, भोली और सुभद्रा का भी महत्व कम नही है। गजाधर के साथ सदन, विठ्ठलदास, उमानाथ जैसे पात्रों का चित्रण लेखक को उपन्यास को गति देते हुए उसके लक्ष्य की पूर्ति में सहायता करता है।

7.5 कठिन शब्द

1. किफायत
2. विलक्षण
3. दूरदर्शिता
4. कुटिल
5. मलिनता
6. सात्विक
7. स्वावलम्बी
8. लोकोपवाद
9. कृपणता
10. निस्पृह

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास पर आधारित 'सुमन' का चरित्र–चित्रण कीजिए।

____

____

____

____

____

____

प्रश्न : 'सेवासदन' के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण कीजिए।

____

____

____

प्रश्न : 'गजाधर' का चरित्र–चित्रण कीजिए।

प्रश्न : उपन्यास में गौण पात्रों की भी विशेष भूमिका रही है, स्पष्ट कीजिए।

7.7 पठनीय पुस्तकें

1. सेवासदन – प्रेमचन्द
2. प्रेमचन्द, जीवन, कला और कृतित्व – हंसराज 'रहबर'
3. प्रेमचन्द – सं. सत्येन्द्र

—— 0 ——

'सेवासदन' का समीक्षात्मक अध्ययन

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 'सेवासदन' उपन्यास का कथानक

8.4 उपन्यास की समीक्षा

8.5 कथानक की विशेषताएँ

8.6 कठिन शब्द

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.8 पठनीय पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

इस आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे :–

– 'सेवासदन' प्रेमचन्द का पहला हिन्दी उपन्यास है और जिस युग–परिवर्तन का उल्लेख लेखक ने किया है उसका आरम्भ इससे हो गया।

– यह एक सामाजिक उपन्यास है।

– उपन्यास समाज की समस्याओं एवं कुरीतियों को उद्घाटित करता है।

– नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं को लेकर उपन्यास की रचना हुई है।

8.2 प्रस्तावना

यह एक सामाजिक उपन्यास है और स्त्री की दीन समस्या को लेकर लिखा गया यह उपन्यास मध्यवर्ग की आर्थिक कठिनाइयों और सामाजिक बन्धनों पर प्रकाश डालता है जिसमें ऊँचे और 'सभ्य वर्ग' आत्म विडम्बना, ढोंग और बगुला भक्ति की अच्छी कलई खोली गई है। प्रेमचन्द जब यह उपन्यास लिख रहे थे उस समय पाठकों को उपन्यास में रूचि पैदा हो रही थी। देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी आदि लेखकों ने हिन्दी पाठकों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया था जो तिलिस्मी दास्तानें नहीं, यथार्थ वर्णन करने वाली कहानियाँ पढ़ने के लिए उत्सुक था। ऐसे समय 'सेवासदन' प्रेमचन्द का वेश्या जीवन से संबंधित लिखा गया उपन्यास है। यह उपन्यास उर्दू में 'बाजारे हुस्न' नाम से लिखा गया प्रेमचन्द का उपन्यास 1918 में हिन्दी में 'सेवासदन' नाम से प्रकाशित हुआ। एक तरफ नारी–जीवन की समस्याओं को केन्द्र में रखकर उपन्यास रचा गया तो दूसरी ओर पूंजीवादी तथा कथित उच्च वर्ग के प्रतिनिधि, देश कार्य में जुटने के बहाने अपना उल्लू सीधा कर लेने वाले उद्योगपति तथा ऐसे में खुद को तटस्थ रखना कठिन काम था। इससे कठिन था नारी के जीवन सुधार पर बात करना। उसके लिए किसी विशेष साहस की आवश्यकता थी। प्रेमचंद ने यह साहस कर दिखाया।

8.3 'सेवासदन' उपन्यास का कथानक

'सेवासदन' उपन्यास की प्रमुख समस्या नारी की पराधीनता है। बेटी, बहन, पत्नी, माँ सभी रूपों में उसे समाज ने धार्मिक–सामाजिक रूढ़ियों से कैसे जकड़ रखा था इसके वर्णन 'सेवासदन' में मिलते हैं। 'विधवा' और 'वेश्या' की स्थिति तो समाज में सर्वाधिक दयनीय रही। उपन्यास की मुख्य कथा इसी विषय को लेकर है।

यह भी सामाजिक उपन्यास है और स्त्री की दीन समस्या को लेकर लिखा गया है। इसके साथ ही मध्यवर्ग के लोगों की आर्थिक कठिनाइयों और सामाजिक बन्धनों पर प्रकाश डाला गया है तथा ऊँचे और 'सभ्यवर्ग' की आत्म बिडम्बना, ढोंग और बगुला भक्ति की अच्छी कलई खोली गई है।

संक्षेप में उपन्यास की कहानी यह है। कृष्णचन्द्र एक ईमानदार थानेदार हैं। वह पुलिस कर्मचारियों की तरह घूस नहीं लेता। वेतन में गुजर बसर करता है। सुमन और शाँता उसकी दो बेटियाँ थीं। सुमन जवान हुई, तो उसके ब्याह के लिये घर में रुपया नहीं था। इसलिये कृष्णचन्द्र ने घूस लेने की ठानी। उस हलके में एक बड़ा महन्त और जागीरदार रामदास था, जो साथ ही साहूकारी भी करता था। उसका कारोबार श्री बाँके बिहारीलाल के नाम चला करता था। दस–बीस मोटे ताजे और मुस्टंडे साधु उसके अखाड़े में पड़े रहते थे, जो दूध–मलाई खाते और दंड पेलते थे। चरस और भंग खूब पीते थे। महन्त जी की अफसरों से भी साँठ गाँठ थी। किसी आसामी की यह हिम्मत नहीं थी कि महन्त जी का कर अथवा सूद देने से इनकार करे। जो व्यक्ति महन्त जी की बात नहीं मानता था उसका इलाके में रहना सम्भव नहीं था। पानी में रहकर मगरमच्छ से कौन वैर मोल ले सकता है।

कृष्णचन्द्र जिन दिनों सुमन के ब्याह के लिए घूस लेने की बात सोच रहा था, उन्हीं दिनों श्री बाँकेबिहारी जी के मुस्टंडों ने एक आसामी चेतू को इतना पीटा कि उसे जान से मार डाला। उसका अपराध यह था कि वह यज्ञ के लिये लगाया हुआ चन्दा नहीं दे सका था। थानेदार कृष्णचन्द्र ने रिश्वत लेकर मामला रफा दफा कर दिया। लेकिन उसने अपने मातहतों को घूस में से कोई हिस्सा नहीं दिया। जिससे बात खुल गई और घूस लेने के अपराध में कृष्णचन्द्र को पाँच साल कैद की सज़ा मिली।

कृष्णचन्द्र की पत्नी, सुमन और शान्ता को लेकर अपने भाई उमानाथ के घर चली गई। धनाभाव के कारण सुमन का विवाह पन्द्रह रुपये वेतन पाने वाले गजाधर नामक व्यक्ति से हो गया।

सुमन, जिसने भले दिन देखे थे, अब बहुत ही निम्न श्रेणी में चली गई। पन्द्रह रुपये में गृहस्थ चलाना मुश्किल जान पड़ता था। गजाधर से भी उसे कोई सहानुभूति नही मिली। वह उससे छोटी–छोटी बातों पर लड़ पड़ता था। भोजन उपरान्त यदि कुछ दाल भात बच जाता और सुमन उसे गिरा देती, तो गजाधर को उसकी यह बात बहुत खलती।

इधर सुमन को घर में यह बमचख सहनी पड़ती थी और दो जून रोटी भी नहीं जुड़ती थी। उधर उसके घर के सामने एक भोली नामक वेश्या खूब ठाठ से रहती थी। नगर के बड़े–बड़े आदमी उसके घर खुले बन्दों आते थे और भोली का आदर करते थे। सुमन सोचती थी कि मुझसे तो यह वेश्या कहलाने वाली भोली ही अच्छी है। एक दिन वह गंगा से लौटती हुई म्यूनिसिपल बाग में एक बेंच पर बैठने लगी, तो चौकीदार ने उसे उठा दिया और उसी समय दो वेश्याएं आई तो चौकीदार ने उनका तपाक से स्वागत किया। सुमन को अपना यह अपमान बहुत खला।

इसी बीच में पद्मसिंह वकील की पत्नी सुभद्रा से सुमन का परिचय हो गया और वह उनके घर आने जाने लगी। गजाधर सुमन के पद्मसिंह के घर जाने पर सशंक रहने लगा। इस बीच में म्यूनिसिपल चुनाव आये और पद्मसिंह सदस्य चुने गये। इस खुशी में उनके घर भोली का मुजरा हुआ। मुजरा के पश्चात् सुमन रात को देर हुए घर पहुँची, तो गजाधर ने उस पर दुराचार का आरोप लगाकर उसे घर से निकाल दिया।

सुमन ने अपनी सहेली सुभद्रा के घर आश्रय लिया। इस पर गजाधर ने शहर में यह प्रचार किया कि बगुला भक्त पद्मसिंह ने उसकी पत्नी को अपने घर डाल लिया। पद्मसिंह ने बदनामी के भय से सुमन को अपने घर में नहीं रहने दिया। अब सारे शहर में एक भोली ही ऐसी थी, जिससे सुमन की जान पहचान थी। वह कुछ दिन उसके घर में रही और फिर चौबारा लेकर दालमंडी में जा बैठी।

जब पद्मसिंह और उसके मित्र विट्ठलदास को पता लगा कि समाज की ठुकराई सुमन वेश्या बाजार में जा बैठी है तो सुधारक विट्ठलदास ने उसके उद्धार की सोची। उसकी बहुत कुछ दौड़–धूप और प्रयत्न के पश्चात् सुमन ने वह चौबारा छोड़ दिया और उसे बिधवा आश्रम में दाखिल करा दिया गया।

उधर सुमन की छोटी बहन शांता भी विवाह के योग्य हो गई थी। उमानाथ ने उसकी सगाई पद्मसिंह के भतीजे सदनसिंह से कर दी। सदनसिंह का पिता मदनसिंह रूढ़िवादी व्यक्ति था। जब उसे पता चला कि सुमन शांता

की बहन है और वह वेश्या बन गई है, तो उसने विवाह करने से इनकार कर दिया और बरात लौटा लाया।

सुमन का पिता कृष्णचंद कैद काटकर जेल से छूटा, तो वह पागलों की तरह रहने लगा। वह बात–बात पर लोगों से लड़ पड़ता था और गाँव की औरतों से अश्लील मज़ाक करता था। शांता की बरात लौट जाने पर उसे मालूम हुआ कि सुमन वेश्या बन गई है। इस लज्जा के मारे वह गंगा में डूबकर मर गया।

शांता को पद्मसिंह और विट्ठलदास ने सुमन के साथ विधवा आश्रम में रखवा दिया। सदन बरात लौटाने के मामले में पिता से सहमत नहीं था। वह उससे झगड़ कर घर से चला गया और नाव चलाने का काम करने लगा। इस धंधे में उसे काफी सफलता मिली और वह मल्लाहों का नेता बन गया।

म्यूनिसिपैलिटी में पद्मसिंह ने यह प्रस्ताव पेश किया था कि वेश्याओं को शहर से बाहर रखा जाये। प्रतिक्रियावादी सदस्यों ने इस प्रस्ताव का न सिर्फ विरोध किया, बल्कि उसे साम्प्रदायिक रंग भी दे दिया गया। इसी सिलसिले में पद्मसिंह के विरोधियों ने सुमन के विधवाआश्रम में दाखिल कराने पर एतराज किया और अखबारों ने इस बात को उठा लिया। सुमन ने शांता को साथ लेकर आश्रम छोड़ दिया।

जब वे दोनों नाव से नदी पार करने गई, तो सदनसिंह ने उन्हें अपने पास रोक लिया और शांता से विवाह कर लिया। सदन और शांता दोनों ही सुमन से उदासीन रहने लगे। जब मल्लाहों को सुमन के वेश्या होने का पता चला, तो उन्होंने सदन का बहिष्कार कर दिया। सुमन को यह सब कुछ बहुत बुरा लगा। आखिर जब सदन के पुत्र जन्म पर उसके माता–पिता आये, तो शांता के संकेत पर सुमन को सदन की कुटी छोड़नी पड़ी।

सुमन के वेश्या बन जाने के बाद उसके पति गजाधर को पत्नी के प्रति अपनी निष्ठुरता और कठोरता का आभास हुआ। वह इस दुर्व्यवहार का पश्चाताप करने के लिए सन्यासी बन गया और जनसेवा और दुखी स्त्रियों के उद्धार के लिये जीवन बिताने लगा। जब सुमन सदन की कुटिया से निकल कर गंगा में डूबने जा रही थी, तो उसकी भेंट गजाध र से हुई, जो अब स्वामी गजानन्द था और उसी की प्रेरणा पर सुमन ने सेवाश्रम का कार्य संभालने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। सुमन को उसके जीवन का उद्देश्य मिल जाता है। वेश्याओं से मिली पचास लड़कियां उस आश्रम में रहती है। वहाँ उन्हें अच्छी शिक्षा, संस्कार तथा सिलाई–बुनाई, संगीत जैसी कलाएँ सिखाई जाती हैं। उपन्यास के अन्त में सुभद्रा आश्रम देखने आती है और सुमन, जो कभी उसकी सहेली थी, उसका बदला हुआ योगिनी – सा रूप देखती है, उसका आश्रम का कार्य देखती है और दंग रह जाती है। वेश्याओं की कन्याओं के उज्ज्वल भविष्य का संकेत पाठकों को देकर उपन्यास समाप्त होता है।

8.4 उपन्यास की समीक्षा

प्रेमचन्द ने यह उपन्यास भी उर्दू में लिखा था, लेकिन प्रकाशित पहले हिन्दी में हुआ। पाठकों ने इसका खूब स्वागत किया और इसे हिन्दी जगत का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास घोषित किया। निस्संदेह प्रेमचन्द ने यह उपन्यास लिखकर अपनी कलम का लोहा मना लिया। उनके लिये यह सफलता वाकई हर्ष और सौभाग्य की बात थी।

हिंदीजगत ने सेवा–सदन का यह स्वागत ठीक ही किया। वाकई उस समय वह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास था। इस उपन्यास से पता चलता है कि प्रेमचंद किस तेजी से आगे बढ़ रहे थे और उनका दृष्टिकोण अब सीमित न रहकर व्यापक होता जा रहा था। उन्होंने इस उपन्यास में अबला स्त्री और मध्यवर्ग की समस्या को लेकर समाज के लगभग समस्त पहलुओं पर प्रकाश डाला है। उपन्यास मूलतः सुधारवादी है, लेकिन प्रेमचंद ने समाज में फैली हुई बुराइयों का यथार्थ कारण ढूँढ निकाला है और उसके लिये व्यक्तियों को दोषी न ठहराकर वर्तमान सामाजिक पद्धति को जिम्मेदार ठहराया है।

पहले हम देखते हैं कि पुलिस जिसका कर्त्तव्य समाज रक्षा और जन–सेवा है, वह खुद भ्रष्टाचार और बेईमानी फैला रही है। यदि कोई पुलिस अफसर ईमानदारी से जीवन बिताना चाहता है, तो उसके लिये गृहस्थ चलाना कठिन हो जाता है और उसके पास अपनी जवान कन्या के हाथ रंगने लायक भी पैसे नहीं होते। आखिर उसे भी बेईमान बनकर घूस लेनी पड़ती है और जेल जाना पड़ता है। यह अकेले कृष्णचंद्र की ट्रेजड़ी नहीं, समूचे समाज की ट्रेजड़ी है।

फिर श्री बांकेबिहारी लाल जी हैं, जो महन्त भी हैं और सामन्त भी हैं। वे दोनों हाथों से आसामियों को लूटते हैं। अफसर भी इस लूट में उनके हिस्सेदार हैं। वे गुंडे पालते हैं और आसामियों की हत्या तक कर डालते हैं, कोई उन्हें पूछने वाला नहीं। धर्म और कानून दोनों महन्त जी के कुकर्म और अत्याचार की ढाल बने हुए हैं।

प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में विशेष रूप से वेश्याओं की समस्या को उठाया है। वे वेश्यावृत्ति को समाज का कलंक और कोढ़ समझते थे और इसका अन्त चाहते थे। तो उन्होंने समस्या का भावनात्मक और सुधारवादी हल उपस्थित किया है और विधवाश्रम तथा सेवाश्रम इस समस्या का कोई हल नहीं है, लेकिन उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि वेश्याएँ कोई विधाता की ओर से बनकर नहीं आती, यह निष्ठुर समाज ही हमारी बहू बेटियों को वेश्याएं बनने पर मजबूर करता है। एक म्यूनिसपल मेम्बर कुंवर साहब दालमंडी बनने का कारण बताते हुए कहता है – "जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज्य कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु आदर और सम्मान के पात्र हों, वहां दालमंडी क्यों न आबाद हो? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है? जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद–दर–सूद का अन्त होगा उसी दिन दालमंडी उजड़ जायेगी – पहले नहीं।"

जब रामनवमी के उपलक्ष्य में काशी के प्रसिद्ध मन्दिर में भोली के भजन हुए, तो सुमन घृणा छोड़ कर उससे मेल–जोल बढ़ाने लगी। पति ने एतराज किया, तो उसने भोली के मन्दिर में जाने की बात कही। इस तर्क के जवाब में गजाधर ने कहा – "आजकल धर्म तो धूर्तों का अड्डा है। लंबी–लंबी जटायें, लंबे–लंबे तिलक और लम्बी–लम्बी दाढ़ियाँ तो महज़ पाखंड है और लोगों को धोखा देने के लिये हैं।"

सुमन जब एक गृहस्थ औरत है, तो उसे कोई आश्रय तक नहीं देता, लेकिन जब वह दालमंडी में जा बैठती है तो समाज के रंगे सयार अबुल वफा, सेठ चिम्मनलाल और पंडित दीनानाथ उसके तलवे सहलाते हैं। जब पद्मसिंह वेश्याओं को शहर से बाहर बसाने का प्रस्ताव पेश करता है तो इसी किस्म के लोग उस प्रस्ताव का विरोध करते हैं और उसे मजहब के नाम पर साम्प्रदायिक रंग देने तक से नहीं चूकते। झूठे धर्म और साम्प्रदायिकता के साथ–साथ प्रेमचन्द

ने झूठे सुधारवादियों की पोल खोली है। विट्ठलदास जब सुमन से वेश्यावृत्ति छुड़ाने के लिये 50 रुपया महीना जुटाना चाहता है, उसे सफलता नहीं मिलती। वेश्यावृत्ति के विरोधियों और सुमन का उद्धार चाहने वालों से भी उसे चन्दा नहीं मिलता। उनका समाज सुधार सिर्फ जबानी जमा खर्च है।

इस उपन्यास से बेजोड़ शादी और दहेज की प्रथा आदि पर भी चोट पड़ती है।

प्रेमचन्द के पहले उपन्यासों की अपेक्षा इस उपन्यास में जितनी यथार्थवाद की मात्रा अधिक है, उतना ही चित्र–चित्रण अधिक सुन्दर है। सुमन मानवती और हठीली लड़की है। उसने सुख आराम में जीवन बिताया था और एक अच्छे घर में ब्याहे जाने के स्वप्न देखे थे। लेकिन ब्याह् के उपरान्त उसे न सुख मिला और न आदर। जीवन के अनुभव ने उसे कटु और कठोर बना दिया और वह इस समाज से घृणा करने लगी जिसमें उस जैसी भली और सच्चरित्र स्त्रियों का तो अपमान होता है, लेकिन वेश्याओं का आदर–सम्मान होता है। उन्हें भले घरों के उत्सवों और मंदिरों तक में निमंत्रित किया जाता है, जिसके नेता रंगे संयार ढोंगी और स्वार्थी हैं। उसने कठिनाईयाँ भी सहन की और अपमान भी बर्दाश्त किया, फिर भी पति ने झूठा दोष लगाकर घर से निकाल दिया और भोली वेश्या के घर के सिवा उसे कहीं आश्रय नही मिला, तो उसने विवश होकर कुपथ ग्रहण किया व अपनाया, यह सुमन की अबला नारी की समाज को चुनौती है। वह दुखः और कष्ट सह सकती है, लेकिन अपमान और अवहेलना बर्दाश्त नहीं कर सकती। हमें उसका यह चलन ठीक ही जान पड़ता है।

पद्मसिंह अपने मध्यवर्गी पढ़े–लिखे समुदाय का टाइप चरित्र है। उसका किताबी ज्ञान और कानून की शिक्षा उसे हर समय फूँक–फूँक कर कदम रखने को कहता है। वह जरा–जरा–सी बात पर अपनी बदनामी से डर जाता है। म्यूनिसिपल चुनाव में सफल होने के बाद मुजरा को बुरा समझने के बावजूद मुजरा करवाता है, सुमन को निरपराध समझते हुए भी उसे अपने घर में आश्रय देने से इनकार कर देता है और म्यूनिसिपैलिटी में अपने प्रस्ताव का विरोध होते देखकर सोचने लगता है – 'अपना आराम से जीवन बिताते यह किस झमेले में पड़ गये।' दरअसल वह अपनी पोजीशन बनाने के लिये ही समाज सुधार और लोक–सेवा के कामों में हाथ डालता है और विरोध और बदनामी देख झट पीछे हटने को तैयार हो जाता है। उसके लिये सत्य, न्याय और सुधार सब गौण है, अपना स्वार्थ ही मुख्य है। विट्ठलदास उसे कहता है – 'तुम्हारे संकल्प दृढ़ नहीं होते।' यही उसकी असलियत है।

विट्ठलदास सच्चे मन से समाज का सुधार चाहता है और उसके लिये तन, मन और धन से काम करता है। लेकिन वह तमाम सुधारवादियों की तरह व्यक्तिवादी भी है। वह पद्मसिंह से इसलिये बिगड़ गया कि उसने विरोध के बावजूद मुजरा कराया और फिर वह गजाधर के कहने पर पद्मसिंह पर सुमन को घर में डाल लेने का झूठा लाँछन लगाने से भी बाज नहीं आया। उसके बाद जब उसे मालूम हुआ कि सुमन वेश्या बनकर दालमंडी में जा बैठी है, तब उसे बड़ा दुख और क्षोभ हुआ और वह इसके लिये अपने आपको दोषी समझने लगा क्योंकि उसने पद्मसिंह के विरुद्ध झूठा प्रचार करके सुमन को उसके घर से निकलवाया था। इसका पश्चाताप यही था कि वह सुमन से वेश्यावृत्ति छुड़ाये

और वह इस काम में जीजान से लग गया। ऐसे लोग हमेशा दोष, अपराध और पश्चाताप के चक्र में पड़े रहते हैं। उनकी सुकामनाओं और स्वेच्छाओं के बावजूद सुधार का काम कभी खत्म नहीं होता। सुमन ने उसे ठीक ही कहा – "एक मैं ही तो नहीं। भले और ऊँचे कुल की कितनी ही बहू बेटियाँ दालमंडी में बैठी हैं।" विट्ठलदास फिर भी उनके बारे में नहीं सोचता। सोच ही नहीं सकता क्योंकि सुधारवाद समाज के इस रोग का निदान नहीं है। उससे तो महज़ किसी एक सुमन और एक शांता का उद्धार हो सकता है।

सुमन का पिता कृष्णचन्द्र पाठकों की हमदर्दी और सहानुभूति का पात्र है। इस दूषित सामाजिक व्यवस्था में किसी भी भले आदमी के लिये ईमानदार बने रहना सम्भव नहीं है। वह बेटी के विवाह से मजबूर है और घूस लेकर जेल जाता है। जेल से छूटकर उसका पागल और विकृत सा हो जाना भी स्वाभाविक है क्योंकि वह सोचता है कि न ईमान ही रहा और न धन ही मिला! यश भी गंवाया और घर भी खोया। जेल से निकलकर वह प्रायः यह दोहा पढ़ता है।

'लकड़ी जल कोला भई, कोला जल कर राख।

मैं पापन ऐसी जली कोयला भई, न राख।।'

प्रेमचंद ने यह दोहा ठीक ही उसके मुख से कहलवाया है।

गजाधर भी भला आदमी है। उसकी त्रुटियाँ समाज की त्रुटियाँ हैं। वह अपनी थोड़ी आमदनी के कारण ही ऐसा बना है और इसी कारण सुमन से लड़ता झगड़ता रहता और उस पर संदेह करता है। लेकिन सुमन के वेश्या बन जाने के बाद उसका जो दूसरा रूप हमारे सामने आता है उस पर विश्वास नहीं होता। समाज ने जिन व्यक्तियों को इतना कुचल दिया हो, वे एकदम परिस्थितियों से इतना ऊँचा नहीं उठ सकते। सिर्फ एक सुधारवादी लेखक ही ऐसा सोच सकता है और गजाधर को गजानंद बना सकता है।

महन्त रामदास, अबुलवफा, सेठ चिम्मनलाल और पंडित दीनानाथ अपने वर्ग के टाइप पात्र हैं और उनके द्वारा प्रेमचंद ने इस वर्ग के अन्याय, अत्याचार, ढोंग और पाखंड को भली भाँति प्रस्तुत किया है। शांता और सदन आदि पात्र गौण जान पड़ते हैं।

इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने भाषा और साहित्य के विषय पर भी प्रकाश डाला है। उन्हें इस बात का दुख है कि कुछ म्यूनिसिपल कमिश्नर और पढ़े लिखे स्वार्थी लोग खाह–मखाह विदेशी भाषा बोलते हैं। उन्हें इस बात का भी खेद है कि कोई लेखक महाशय अंग्रेजी के एक दो उपन्यासों अथवा पुस्तकों का, वह भी सीधे अंग्रेजी से नहीं बंगाली या गुजराती के माध्यम से, अनुवाद करके अपने आपको तीस मार खाँ समझने लगते हैं। यही कारण है कि हमारी भाषा में कोई अच्छा उपन्यास नहीं है।

प्रेमचंद ने सेवासदन लिखकर इस अभाव की पूर्ति की।

8.5 कथानक की विशेषताएँ

1. उपन्यास का तत्व 'कथानक' एक महत्वपूर्ण तत्व है। उपन्यास मनोरंजक, उत्सुकता बढ़ाने वाला, संभवनीय, सुगठित कथानक, परिणामकारक तथा अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने वाला बनता है।

2. उपन्यास वृहदाकार लिए है तथा सुगठित कथानक रखने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

3. मुख्य कथानक के साथ अन्य कथाएँ भी विशेष महत्व रखती हैं।

4. संभव के साथ असंभव या चमत्कारिक घटना का वर्णन हुआ है जैसे गजाधर का अंत में आकर मिलना, सुमन को आश्रम के लिए जीवन समर्पित करने की प्रेरणा देना, उच्च आदर्श की बातें करना। शांता का विवाह सदन सिंह से तय होना इसे असंभवनीय बनाता है जिस पर विश्वास करना पाठकर के लिए थोड़ा मुश्किल हो जाता है।

5. नारी जीवन से जुड़ी समस्याओं को लेकर कथावस्तु की रचना हुई है तथा नारी जीवन की समस्याओं को समाज के समक्ष लाना उपन्यास का उद्देश्य है।

6. तत्कालीन समाज के राजनीतिक वातावरण का वर्णन, हिन्दु–मुस्लिम समन्वय की बात करना तथा वेश्या सुधार आश्रम की स्थापना करना लेखक के प्रगतिवादी विचारों की पुष्टि करता है।

8.6 कठिन शब्द

1. बगुला भक्ति
2. कलई
3. घूस
4. आसामी
5. दालमंडी

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास की कहानी संक्षेप में लिखें।

____

____

____

____

____

____

प्रश्न : 'सेवासदन' के कथानक पर प्रकाश डालें।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न : 'सेवासदन' उपन्यास के कथानक की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. सेवासदन – प्रेमचन्द
2. प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व – हंसराज 'रहबर'
3. प्रेमचन्द – सं. सत्येन्द्र

—— 0 ——

प्रेमचन्द की कहानियों का विकास–क्रम

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3. प्रेमचन्द की कहानियों का विकास–क्रम

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्द

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप :

– यह जानेंगे कि प्रेमचन्द 'मनुष्यता' के अमर कथाकार हैं।

– प्रेमचन्द को एक कहानीकार के रूप में भी जानेंगे।

9.2 प्रस्तावना

कथा–ऋषि प्रेमचन्द का कृतित्व व्यक्तित्व हिन्दी कहानी के लिए महत्त्वपूर्ण अवदान है। इस युग–प्रवर्तक पुरोधा साहित्यकार ने हिन्दी कहानी का जो राज–मार्ग निर्दिष्ट किया, हिन्दी कहानी ने उसी पर चलकर विकास की नई दिशाएँ तलाशी और उत्कर्ष के शिखरों को छुआ। प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कहानी में जब–जब भटकाव आया, उसने विभिन्न आंदोलनों के नारों द्वारा अथवा प्रकारान्तर से, प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः, अपने को प्रेमचन्द से ही जोड़ा और इस सम्बद्धता से उसे एक नई स्फूर्ति और ऊष्मा प्राप्त हुई। प्रेमचन्द ने कहानी को जो जीवनधर्मी गंध प्रदान की थी, उससे समस्त हिन्दी कहानी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं की कहानी भी सुवासित हुई। डॉ० नामवर सिंह ने एक परिचर्चा में 'बीसवीं सदी के विश्व–साहित्य पर विचार करते हुए' तीन लेखकों के नाम एक साथ लिए जाने की बात कही है: 'रूस के मैक्सिम गोर्की, चीन के लु–शुन और भारत के

प्रेमचन्द।" किन्तु इस कथन से एक बात स्पष्टतः स्थापित होती है कि प्रेमचन्द बीसवी शती के विश्व–साहित्य में इनी–गिनी प्रतिभाओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। बीसवीं शती के प्रारम्भिक वर्षों में जन्म ग्रहण करती हिन्दी कहानी जब लड़खड़ाते हुए, अटपटे चरणों से, चलना ही सीख रही थी तब प्रेमचन्द जी ने उसे अंगुली पकड़ कर चलना ही नहीं सिखाया अपितु उसे पूर्ण युवा बनाया और यौवन की पूर्ण स्वस्थ स्फूर्ति प्रदान की। निश्चय ही वे हिन्दी कहानी के पुरोधा थे। प्रेमचन्द की प्रतिभा का कलाकार किसी देश और साहित्य में शताब्दियों पश्चात् जन्मता है। उनकी कहानियों में पूर्ववती परम्परा का निषेध है और इस निषेध से ही उनकी नई प्रस्थान–भूमि और क्रान्तिकारी भूमिका बनती है।

9.3 प्रेमचन्द की कहानियों का विकास–क्रम

प्रेमचंद हिन्दी कहानी के शलाका–पुरुष हैं। यदि हिन्दी कहानी को बीसवीं शती पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को दो काल–खण्डों में रख कर देखा जाये तो बीसवीं शती पूर्वार्द्ध के वे जिस प्रकार निर्विवाद रूप से शलाका–पुरुष और अन्यतम व्यक्तित्व हैं, बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में हिन्दी कहानी के प्रेमचन्द और प्रेमचन्द–युग से बहुत आगे बढ़ जाने पर भी कोई ऐसा कृती व्यक्तित्व और शलाका–पुरुष नहीं है जिसे निर्विवादतः इस काल–खण्ड का अन्यतम व्यक्तित्व घोषित किया जा सके। इस लिए वे अपने काल–खण्ड के ही नहीं अपितु बीसवी शती के संपूर्ण हिन्दी कथा–साहित्य के शलाका पुरूष ठहरते हैं। यह उन्हीं का महिमावान व्यक्तित्व है जिसे केन्द्र में रखकर समस्त हिन्दी कथा–साहित्य का मूल्यांकन किया जा सकता है, कहा जाता रहा भी है: प्रेमचन्द–पूर्व–युग, प्रेमचन्दोत्तर युग।

वस्तुतः प्रेमचन्द आधुनिक हिन्दी कहानी को बदलाव की जो दिशा 1930–35 ई० के आस–पास प्रदान करते हैं और जिसकी चरम परिणति का बिन्दु "कफ़न" (1936, अप्रैल) है, 1950–55 ई० तक आते–आते वह अपने पूर्ण गौरव के साथ "नयी कहानी" के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। 1936 से 1950 ई० के बीच उसमें जो एक गतिरोध या विकास की मंथर गति आई थी, "नयी कहानी" आंदोलन ने उसे पूर्ण तीव्रता प्रदान कर पुनः कहानी को प्रेमचन्द की परम्परा से जोड़ा था। यही कारण है कि "नयी कहानी" और उसके बाद की कहानी भी अपना प्रस्थान–बिन्दु प्रेमचन्द की "पूस की रात" (जिसका रचना–काल भ्रांतिवश 1934 ई० दिया जाता रहा है, किन्तु इसका प्रकाशन "माधुरी" के मई 4930 अंक में हुआ था : इसीलिए हमने प्रेमचन्द की कथा–यात्रा में "बदलाव की दिशा" 1930 के आस–पास माना है) और "कफ़न" को मानती हुई उससे अपना सम्बन्ध जोड़ कर गौरवान्वित अनुभव करती है। हिन्दी कहानी को बदलाव की एक नयी दिशा देकर प्रेमचन्द जिस नवीन कथा–भूमि और रचना–शिल्प को प्राप्त करते है, उससे वे तीन कालजयी कहानियों का सृजन करते है: "पूस की रात" (1930), ठाकुर का कुआँ (1962) और "कफ़न" (1936)। हिन्दी कहानी में 'पूस की रात' और "कफ़न" की तो भरपूर चर्चा हुई किन्तु 'ठाकुर का कुआँ' उपेक्षित ही रही। 'ठाकुर का कुआँ' का कथ्य और शिल्प दोनों में 'कफ़न' से गजब की समता रखता है। दोनों कहानियाँ अपने कथ्य और शिल्प, रंगत और तेवर में एक ही कड़ी लगते हैं। इन तीनों कहानियों के बेजोड़ ("मास्टरपीस") कहानियाँ बनने का राज यह है कि प्रेमचंद की

कला को यहाँ तीन अनुपम वरदान मिल गये हैं। प्रथम, अकूत गरीबी का प्रामाणिक और अत्यन्त संवेदनशील वर्णन करने की क्षमता, दूसरे, इस गरीबी से निष्पन्न वर्ग–संघर्ष की तीव्र भावना, और तीसरे व्यंग्य की तीखी मार। प्रेमचंद के इन तीन अस्त्रों का विवेचन आगे किया जायेगा, यहाँ यह कहना ही पर्याप्त होगा कि प्रेमचंद के अमर कथा–शिल्प के ये तीन तत्व ही इन कहानियों को बेजोड़ बना गए हैं। परवर्ती हिन्दी कहानी ने इन कहानियों द्वारा निर्दिष्ट दिशाओं को अन्वेषित कर उनसे अपनी प्राण–शक्ति प्राप्त की है।

हिन्दी कहानी को प्रेमचन्द की सबसे, बड़ी देन है कि उन्होंने मनुष्य और समाज, व्यक्ति और उसके जीवन परिवेश, को कथा के केन्द्र में ला खड़ा किया। उनकी कहानियों का फलक अत्यन्त विशाल है जिसमें समाज के उच्चतम वर्ग से लेकर निम्न और निम्नतम वर्ग के पात्र जीवंत रूप में उपस्थित हुए हैं। उन्होंने कहानी को अतिशय काल्पनिक, पौराणिक और तिलिस्म के रोमानी जगत और बोध से मुक्त कर सामाजिक चिंता से जोड़ दिया। प्रेमचंद का समकालीन कला–बोध कविता के कारण एक छायवादी रोमान से ग्रसित था। 1915 से 1936 ई० के बीच हिन्दी कविता वैयक्तिकता के आग्रह से, अपने समय–सत्य को झुठलाते हुए या उनसे कतराते हुए, जिस अतिशय काल्पनिकता, वायवी वृत्ति, रंगोज्ज्वल शब्दावली आदि की गुंजलक में उलझी रही, हिन्दी कहानी के भी उससे आक्रांत होने या ग्रसित होने की पूरी संभावनाएं थीं क्योंकि प्रायः एक ही कालखण्ड में सभी कलाओं और विधाओं में विकास की प्रवृतियाँ समान होती हैं। किन्तु हिन्दी कहानी को उस समय इस वैयक्तिक धारा से बचा कर ले जाने का श्रेय इस कथा–ऋषि को ही जाता है जिसने कहानी के सामने समाज और उसकी बहुविध समस्याओं का विस्तृत क्षेत्र रख दिया। यहाँ से प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को अपने परिवेश के प्रति जागरूक बनाया। समकालीन कहानी या कहें, '65 के बाद की कहानी की सर्वप्रमुख वृति उसकी परिवेश के प्रति अतिशय जागरूकता है। प्रेमचन्द जी ने कहानी को इस रूप में "मानवेतर" से 'मानवीय' बनाया। उसे 'था' की दुनिया से निकाल कर 'है' की दुनिया में खड़ा कर याथार्थ की चुनौतियों को स्वीकार करने, यथार्थ को निस्संग, बेलौस सच्चाई से चित्रित करने के लिए प्रतिबद्ध किया।

प्रेमचन्द ने कहानी को जो जीवनधर्मी गंध दी, इस स्वभाव से कहानी ने जीवन को उसकी विविधता में ग्रहण किया। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक विसंगतियों को उकेरकर समाज के पीड़ित, शोषित और दलित वर्ग को चित्रित ही नहीं किया, बल्कि उसके पक्षधर भी बने हैं। उनके पात्रों में कृषक–जमींदार, कर्ज़दार–महाजन, धनी–निर्धन, ब्राह्मण–शूद्र, पटवारी–चौकीदार तथा शासनतंत्र के अन्य कर्मचारियों के जीवंत चित्र प्राप्त होते हैं किन्तु उनकी कहानियों का जो नायक, सम्मिलित रूप से उभर कर आता है, वह है 'लघु मानव' या 'सामान्य मानव'। उनकी कहानियाँ प्रथम बार "लघु मानव" मानव या 'सामान्य मानव' को महिमा–मण्डित किए बिना भी नायकत्व प्रदान करती हैं। नायक के रूप में सामान्य मानव की यह प्रतिष्ठा हिन्दी कथा में "नायकत्व" की परिकल्पना या अवधारणा को एक नया संस्कार प्रदान करती है। "धीरोदात्त" और इतिहास–प्रसिद्ध नायक का मिथ यहाँ बुरी तरह भंजित हुआ है। सन् 65 के पश्चात् के अनेक कथा–आंदोलन जिस सामान्य मानव या "आम आदमी" की बात बड़े बलपूर्वक कह रहे हैं, वह प्रेमचन्द की कहानियों में घोषित सिद्धान्तों के बिना ही सहज रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। सामान्य मानव और उसकी समस्याएँ प्रेमचन्द की कहानियों की संवेदना का केन्द्र–बिन्दु है।

समकालीन कहानी और विशेषतः सत्तर के बाद की कहानी सामान्य मनुष्य की आर्थिक समस्याओं से बड़ी गहराई से जुड़ गयी है। अर्थ–तंत्र की मार से त्रस्त सामान्य आदमी जीवन जीने की जिन बदतर होती हुई जीवन–स्थितियों का भोक्ता है, आज कहानी उन स्थितियों को शिद्दत से चित्रित कर रही है। उसका यह रास्ता प्रेमचन्द ने ही सुझाया था। इसका उत्स प्रेमचन्द की उन कहानियों में खोजा जा सकता है जिनमें उन्होंने महाजनी सभ्यता से ग्रसित पात्रों को प्रस्तुत किया है। "सवा सेर गेहूँ" का शंकर कुरमी भी व्यवस्थागत विसंगतियों को उभारकर सामने लाता है। प्रेमचन्द की 'सवा सेर गेहूँ', "मृतक भोज", "पूस की रात", "ठाकुर का कुआँ", "कफ़न" आदि कहानियों के पात्र जिस गरीबी में जीवन जीने को अभिशप्त हैं, वह व्यवस्थागत विसंगतियों से ही उत्पन्न है। प्रेमचन्द का कहानीकार इन व्यवस्थागत विसंगतियों का पर्दाफ़ाश करने में सकुचाता नहीं है। आधुनिक कहानी के वर्तमान कथा–दौर की कहानियाँ इन व्यवस्थागत विसगतियों को विविध आयामों में उद्घाटित कर रही है, हाँ , इनका नायक प्रेमचन्द के नायक से अधिक आक्रोशपूर्ण और आक्रामक मुद्रा धारण किए हुए है किन्तु इस नायक ने व्यवस्था को चुनौतियाँ देना प्रेमचन्द के ज़माने से ही प्रारंभ कर दिया था। "पूस की रात" के हलकू का यह कथन, "और एक–एक भागवान ऐसे पड़े है, जिनके पास जाड़ा जाये तो गर्मी से घबराकर भागे। मोटे–मोटे गद्दे, लिहाफ–कम्बल। मजाल है जाड़े का गुजर हो जाये। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें मजा दूसरे लूटें।" यद्यपि प्रेमचन्द के अधिकांश पात्र सामाजिक अन्याय को "तकदीर की खूबी" कहकर ही स्वीकार कर लेते हैं किन्तु 'ठाकुर का कुआँ' की गंगी इस व्यवस्था को खुल कर चुनौती देती है, "हम क्यों नीच है और ये लोग क्यों ऊँच हैं ? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं। .... इन्हीं पण्डित जी के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहु जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में है हमसे ऊँचे !" इस प्रकार व्यवस्था को चुनौती देने का तेवर–मिजाज समकालीन कहानी का नायक प्रेमचन्द की कहानियों से ही प्राप्त करता है। समय के अंतराल में इस नायक का यह गुण विकसित हुआ है।

प्रेमचंद की कहानियों में आलोचकों को मनोवैज्ञानिकता का प्रायः अभाव ही दीखता रहा है, किन्तु प्रेमचंद की कहानियों के पात्रों की मनोवैज्ञानिकता अपने प्रकार की है। वह बिना किसी सिद्धांत के आग्रह या घोषणाओं के पात्रों के अंतस्तल में प्रवेश करते चले जाते हैं। इस दृष्टि से उनमें गजब की मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। "बड़े भाई साहब", "गुल्ली डण्डा", "ईदगाह", "बूढ़ी काकी", नशा", "शतरंज के खिलाड़ी" आदि कहानियों में मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण की कला का अत्यंत श्रेष्ठ रूप सम्मुख आता है। ये कहानियाँ निश्चय ही मानव–मन के रेशे–रेशे को उघाड़ती आज की कहानी के लिए पथ निर्दिष्ट कर गई हैं। इस मनोवैज्ञानिकता के कारण ही प्रेमचंद के पात्र इतने जीवंत और विश्वसनीय बन सके हैं।

प्रेमचंद के सदर्भ में यथार्थ–चित्रण का प्रश्न जब उठाया जाता है तो प्रायः ही उन्हें "आदर्शवादी", "आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी" और "पूर्णतः यथार्थवादी" या "विशुद्ध यथार्थवादी" का अभिधान दिया जाता है किन्तु प्रेमचंद का यथार्थ चित्रण भी अपना मानक आप है। वस्तुतः प्रेमचंद ने अपने कथा–साहित्य में यथार्थ को जिस

रूप में स्वीकार किया है वह किसी अभिधान का मुहताज नहीं। हम केवल अपनी सुविधा के लिए प्रेमचंद को बने–बनाए खानों में बिठाने के लिए ये फतवे देते हैं। चाहे हम प्रेमचंद को "आदर्शवादी" कहें, "आदर्शोन्मुख यथार्थवादी" कहें या "यथार्थवादी", इससे प्रेमचंद या उनकी कला छोटी या बड़ी नहीं हो जाती। प्रेमचंद महान है, महान रहेंगें, इसलिए किंचित् पूर्वाग्रह विमुक्त दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार अपेक्षित है। अपनी कुछ कहानियों में, जिनमें ऊपर संदर्भित उनकी तीन कहानियाँ भी हैं, प्रेमचंद पूर्णतः यथार्थवादी कलाकार "दिखाई" देते हैं। यहाँ बल दिखाई देने पर है क्योंकि प्रेमचंद का घोषित कला–सिद्धांत यही है कि "कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है। कला दीखती तो यथार्थ है पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो।" ध्यातव्य है कि इस कथन का प्रकाशन–समय जनवरी 1936 ई० है। इससे सिद्ध है कि प्रेमचंद अपने अतिम वर्षों में भी यथार्थ को पूर्णतः आदर्श से अलग करके नहीं देख सके हैं। वे अन्त तक अपने "आदर्शोन्मुख कला–सिद्धांत पर अडिग रहे हैं। किन्तु फिर भी, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अपनी अपरिनिर्दिष्ट तीन कहानियों में वे पूर्णतः यथार्थवादी है। किन्तु आश्चर्यजनक बात यह है कि एक ही समय में कलाकार की रचनाधर्मिता दो मानसिकताओं में कैसे रह सकती है– उपन्यास में "आदर्शोन्मुख यथार्थवादी" और कहानियों में "पूर्णतः यर्थाथवादी" जबकि उपन्यास और कहानी दोनों ही कथा–विधाएँ हैं, दोनों ही जीवन के अत्यधिक निकट भी। प्रेमचंद के कला–सिद्धांतों के प्रकाश में यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि कोरा यथार्थवाद तो उन्हें कभी भाया ही नहीं। वास्तव में कोरा या विशुद्ध यथार्थवाद तो कला न होकर मात्र "न्यूज पेपर रिर्पोटिंग" ही रहेगा। अनुभूति की आँच में तप कर कलागत यथार्थ का रूप ग्रहण करने की प्रक्रिया में यथार्थ आदर्श का निर्मोक अवश्य ही ग्रहण कर लेगा। कलाकार की रचनागत सफलता ही है कि वह इस निर्मोक को पहचानने न दे, वह यथार्थ का, वास्तविकता का, अंगी ही बन जाये। प्रेमचंद के कलाकार को यह महारत हासिल हो गई थी जो उनके आलोचकों को उन्हें विशुद्ध "यथार्थवादी" कहने को बाध्य करती है। दूसरे उपन्यास का फलक विस्तृत है जिसमें कलाकार और प्रेमचंद जैसा कलम की लड़ाई लड़ने वाला "सिपाही कलाकार" आदर्श का अंश नहीं त्याग सकता था, जबकि कहानी जैसी सीमित विधा में जो जीवन का एक विशष्ट खण्ड है प्रेमचन्द पूरी तरह "यथार्थ" की प्रस्तुति कर सके हैं। वस्तुतः प्रेमचंद का यथार्थ–चित्रण की कथा–आदर्श आज भी कहानीकार के लिए काम्य है, तभी उसके साथ लेखकीय सोच जुड़कर जीवन का सत्य, कला का सत्य, कहानी का सत्य, बनता है।

यथार्थ की इस कलात्मक प्रस्तुति से प्रेमचंद अपने सामयिक संदर्भों को शाश्वत संदर्भों में रूपांतरित कर सके हैं। उन्होंने अपने युग और समाज का ऐसा जीवंत कलात्मक आलेखन किया है कि उनका कथा–साहित्य तत्कालीन युग और समाज का प्रमाणिक दस्तावेज बन गया है। उनकी कहानियाँ अपने परिवेश को जिस रूप में प्रस्तुत करती हैं, उसे हिन्दी कथा–साहित्य में आधुनिकता का प्रथम प्रसरण कहा जा सकता है। अपने परिवेश की जीवन्त पहचान साहित्य में आधुनिकता का बहुत बड़ा लक्षण है। उनकी जो कहानियाँ केवल सामयिक महत्व रखती हैं, वे भी परिवेश की सामाजिक विसंगतियों को सामने लाकर उस साहित्य के आधुनिक होने की गवाही देती हैं। प्रायः ही प्रेमचंद–साहित्य पर "उपदेशात्मकता" का दोषा–रोपण किया गया

है किन्तु उन्होंने बड़े बलपूर्वक कहा था, "प्रोपेगण्डा बदनाम शब्द है किन्तु आज का विचारोत्पादक, बलदायक, स्वास्थ्यवर्धक साहित्य प्रोपेगण्डा के सिवा न कुछ है, न हो सकता है, न होना चाहिए।" अपनी इसी प्रतिबद्धता में उन्होंने जो साहित्य–सर्जना की वह निश्चय ही 'सामायिक' न रह कर 'शाश्वत' सिद्ध हो गई है। आधुनिक युग के हिन्दी साहित्यकारों में वे देश ही नहीं, विदेश में भी सबसे अधिक पढ़े जाने वाले और लोकप्रिय साहित्यकार है। प्रेमचंद शती–वर्ष में उनके प्रति व्यक्त विचार और उनके व्यक्तित्व और साहित्य मे देश के हिन्दी–भाषी और अहिन्दी–भाषी प्रान्तों की रुचि तथा विदेशों में हुए व्यापक आयोजन सहज ही यह प्रस्थापित करते हैं कि उनका साहित्य शाश्वत महत्व का अधिकारी है। उनके द्वारा वर्णित समाज की अधिकांश समस्याएँ जस की तस हैं, केवल उनकी 'डिग्री' बदली है। प्रेमचंद से अधिक विश्वसनीय ग्रामीण जीवन का कुशल चितेरा अभी हिन्दी में नहीं आया है। वस्तुतः उन्होंने अपने समय–सत्य को शाश्वत संदर्भ प्रदान कर दिये, यही उनकी प्रासंगिकता का रहस्य है इसीलिए आज भी उनका साहित्य संदर्भच्युत नहीं है।

आज सामान्य मानव के दुःख–दर्द को वाणी देती हिन्दी कहानी अपने को वामपंथी सोच या जनवादी चेतना से सम्बद्ध करने में गौरव अनुभव करती है। जन–सामान्य का पक्षधर अपनी सोच में 'वाम' हो ही जाता है। 'हृदयेश' के कहानी–संग्रह 'अंधेरी गली का रास्ता' की 'प्रसंगवश' शीर्षक भूमिका के ये शब्द द्रष्टव्य हैं, "आज एक श्रेष्ठ और सफल कहानी वाम बनने के लिए बाध्य है–अर्थात् एक ओर वैज्ञानिक वैचारिकता द्वारा आधुनिक बनकर दूसरी ओर समाज की सर्जनामूलक व उत्पादक शक्तियों की मूल्यबोधता धारण कर और उसके साथ–ही–साथ जन–साधारण ही सहज इच्छा–आकांक्षाओं के प्रति व्यापक आदर भाव सुस्थापित कर।" कहना न होगा कि प्रेमचंद की कहानियों में 'जन–साधारण की सहज इच्छा–आकांक्षाओं को व्यापक आदर भाव सुस्थापित' हुआ है। इस दृष्टि से प्रेमचंद वामपंथी सोच या जनवादी चेतना के प्रथम हिन्दी कहानीकार हैं। किन्तु मार्क्स को जान कर और उनसे प्रभावित होकर भी उनकी कहानियाँ वामपंथी या मार्क्सवादी सोच की सिद्धान्त–घोषणा में विश्वास नहीं रखती हैं। वे अपने ढंग से सामान्य मनुष्य के हितों की लड़ाई लड़ते हैं।

सामान्य मानव के हितों की लड़ाई प्रेमचंद अपने तीन अस्त्रों से लड़ते हैं–प्रथम अकूत गरीबी के प्रामाणिक और अत्यंत संवेदनशील चित्रण की क्षमता, दूसरे इस बेइंतहा गरीबी से निष्पन्न वर्ग–संघर्ष की तीव्र भावना, और तीसरे व्यंग्य की तीखी मार। गरीबी और बेइंतहा गरीबी का इतना मार्मिक और प्रामाणिक वर्णन करने वाला कलाकार अभी हमारे पास नहीं है। वे भूख के सत्य के अमर कलाकार हैं। 'पूस की रात' के हलकू की गरीबी जिसे पूस की रात के जाडे से बचने के लिए कम्बल के लिए सहेजे तीन रुपये भी मयस्सर नहीं हो पाते, अपनी पीड़ा आप कहती है। 'कफ़न' में भूख का सत्य और गरीबी का आलम एक अलग कलात्मक धरातल ग्रहण करता है। 'कफ़न' में भूख द्वारा इंसानियत के, मानव–मूल्यों के, लील लिये जाने का सत्य अपनी पूरी भयावहता में प्रकट होता है। प्रसव–पीड़ा से छटपटाती चीत्कार करती बुधिया, आलू के लालच में पड़े भूखे घीसू और माधव, बाप और बेटे, ससुर जिसे बहू प्राणों से प्यारी होती है और पति जो बुधिया का प्राणाधार है, जिसने उसके साथ 'साल–भर' 'सुख–चैन' से काटा,–दोनों ही खेत से चुराए आलुओं को चट कर जाने की फिक्र में

बुधिया को जाकर नहीं देखते। 'भूख' ही उनकी मानवीय संवेदना को चट कर जाती है, भूख ने उनकी मोह, माया–ममता की संवेदना को लील लिया है। इसी इंसानियत के लोप से वे बुधिया का अंतिम संस्कार न कर अपनी क्षुधा शांत करते हैं। इस प्रकार 'कफ़न' गरीबी के दूरगामी परिणाम का कलात्मक आख्यान कर हमारी संवेदना और सोच दोनों को झिंझोड़ कर रख देती है। प्रेमचंद की कहानियों के अनेक पात्र इस गरीबी में बिल–बिलाते देखे जा सकते हैं। 'आंख में घी आँजने तक को' न प्राप्त करने वाले अथवा ठाकुर की आरती में चढ़ाने के लिए पैसा तक मयस्सर न होने वाले होरी जैसे अनेक पात्र उनके उपन्यासों में सहज ही देखे जा सकते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद सामान्य मानव की लड़ाई का एक प्रबल अस्त्र—गरीबी का अत्यंत संवेदनशील और प्रामाणिक वर्णन अत्यंत कुशलता से इस्तेमाल करते हैं।

इस संघर्ष में प्रेमचंद का दूसरा अस्त्र है : गरीबी से निष्पन्न वर्ग–संघर्ष की तीव्र भावना और इसकी अभिव्यक्ति के लिए प्रेमचंद अपना तीसरा अस्त्र प्रयुक्त करते हैं, वह है व्यंग्य का तीखा नश्तर। इससे अमीर–गरीब के बीच की खाई पूरी तरह उजागर होती है। प्रेमचंद के पास व्यंग्य का यह अस्त्र काफी पहले 'शतरंज के खिलाड़ी', 'सवा सेर गेहूँ' आदि कहानियों में ही आ जाता है किन्तु वे उसे निरंतर शाणित करते गए और अंतिम कहानियों में उनके कथन बड़े पैने और धारदार हो गए हैं। 'सवा सेर गेहूँ' में गाँव में गरीब ही गरीब रहने और अमीर न होने की बात को यह अभिव्यक्ति मिली है, "गाँव में सब मनुष्य ही मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतएव देवताओं का खाद्य–पदार्थ कैसे मिलता।" इसी प्रकार 'पूस की रात' में जाड़े के संदर्भ में अमीर और गरीब के बीच की खाई का सशक्त चित्रण हुआ है। 'ठाकुर का कुआँ' की गंगी भी समाज के उच्च वर्ग को खुलकर चुनौती देती है। 'कफ़न' में भी प्रेमचंद इस वर्ग–संघर्ष को ताड़ी के नशे में चूर घीसू के इन उद्‌गारों में अभिव्यक्त करते हैं, "वह बैकुण्ठ में न जाएगी तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं !" इस प्रकार सामान्य मानव के हितों की लड़ाई प्रेमचंद इन विविध रूपों में लड़ते हैं।

प्रेमचंद के द्वारा कृषक जीवन की गरीबी के चित्रण का एक बहुत सशक्त पक्ष यह है कि उन्होंने कृषक से मजदूर होते जाते किसान की पीड़ा को बहुत सूक्ष्मता से पकड़ा है। यह उनके कथा–साहित्य का बहुत ही सशक्त पक्ष है जो उसकी संवेदना को आज के ग्रामीण की संवेदना से सहज ही जोड़ देता है। सवा सेर गेहूँ का शंकर किसान सात साल में 'किसानो से मजूर' हो गया। भारतीय किसान, 'किसान से मजूर' होने के लिए अभिशप्त है और प्रेमचंद ने उसकी इस व्यथा को अपनी कहानियों में बड़ी कुशलता से चित्रित किया है।

कहानीकार प्रेमचंद के कथा–व्यक्तित्व को एक और दृष्टि से मूल्यांकित किया जा सकता है। उन्होंने हिन्दी कहानी की संवेदना को विश्व कथा–साहित्य की केन्द्रीय संवेदना से जोड़ने का अभूतपूर्व और अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया। जिस समय हिन्दी कहानी जन्म ग्रहण करती है, उस समय तक विश्व–कथा–साहित्य अत्यंत समुन्नत हो चुका था। उसे कितने ही कथा–ऋषि अपने दाय से समृद्ध कर चुके थे। एण्टनी चेखव ने जीवन की सामान्य–सी घटनाओं को कहानी में प्रस्तुत कर मानवीय चरित्र का विविध आयामों में उद्‌घाटन किया

था। प्रेमचंद भी जीवन की अत्यंत सामान्य–सी घटनाओं पर कहानी बुनकर हिन्दी कथा को विश्व–कथा की केन्द्रीय संवेदना से संयुक्त कर हिन्दी कहानी को एक नया पथ निर्दिष्ट करते है। चेखव की 'दु:ख' ('दि मिजरी') और 'पूस की रात' में एक आश्चर्यजनक समता प्राप्त होती है। 'पूस की रात' का अत्यंत मार्मिक स्थल वह है जहाँ प्रेमचंद ने हलकू की उस रात की पीड़ा का सहभागी मनुष्य को नहीं अपितु जबरा कुते को बनाया है। कुत्ता जबरा उस पीड़ा का सहभागी पशु ही नहीं रह जाता है अपितु वह हलकू की पीड़ा में सहयात्री बनकर अलाव को कूदता है और हलकू उससे इसी प्रकार संवादरत है जैसे किसी आदमजात से। वह जबरा को बेईमानी नहीं करने देता कि वह अलाव के किनारे से चक्कर काटकर निकल आये, इसको वह 'सही' नहीं करता, उसे अलाव के ऊपर से कूदकर जाने को बाध्य करता है। इसी प्रकार का मार्मिक वर्णन चेखव की 'दु:ख' में प्राप्त होता है, वहाँ भी मानवीय पीड़ा का सहभागी बूढ़ा घोड़ा है जिसे बूढ़ा कोचवान रात्रि के अंधकार में अस्तबल में जाकर अपने पुत्र की मृत्यु की दु:खद खबर सुनाकर हल्का होता है क्योंकि उसके अमीर ग्राहक जीवन की हफड़ा–तफड़ी में इतने व्यस्त हैं कि किसी के पास समय नहीं है कि वे उसकी बात सुन सकें। दोनों ही कहानियाँ अपने इस बिन्दु पर मानवीय पीड़ा का त्रासक और हृदय–द्रावक वर्णन करती है। इस प्रकार प्रेमचंद ने कई रूपों में हिन्दी कहानी को विश्व कथा की केन्द्रीय संवेदना से संयुक्त किया था।

प्रेमचन्द की प्रकाशित कहानियों की संख्या लगभग तीन सौ से ऊपर है। इनमें 292 हिन्दी कहानियों की एक सूची प्रेमचन्द विश्वकोश खंड–2 में है और इसके साथ डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने 228 उर्दू कहानियों की एक सूची दी है।

प्रेमचन्द की लगभग चालीस उर्दू कहानियाँ 1908 से 1915 के बीच प्रकाशित हुईं। इन कहानियों के तीन संकलन– सोज़े वतन (1908), प्रेम पचीसी भाग–1 (1914), और भाग–2 (1918) भी प्रकाशित हुए। सोज़े वतन की कहानियों में देशद्रोह का भाव प्रमुख है, विक्रमादित्य का तेगा, रानी सारन्धा, राजा हरदौल, आल्हा, राजहठ, बांका जमींनदार आदि कहानियाँ देशप्रेम के भाव से ओत–प्रोत थीं।

दूसरी कोटि की कहानियों में मध्यवर्गीय संयुक्त परिवारों की परिस्थितियों और समस्याओं, मानव मूल्यों, समाज में प्रचलित पूजा अर्चन के पाखंडों, संकीर्णताओ आदि का वर्णन किया है। इन कहानियो मे 'ममता', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा', 'अमावस की रात', 'मनावन', 'अन्धेर', 'खून सफेद' आदि उल्लेखनीय हैं। 'सिर्फ एक आवाज' अछूतोद्धार' विषयक कहानी है, जिसमें प्रेमचन्द की दलित संवेदना व्यक्त हुई है। 'शिकारी राजकुमार' में समाज मे अत्याचारियों, धार्मिक पाखंडियों और रिश्वतखोर अमलों के प्रति लेखक का आक्रोश व्यक्त हुआ है। यह कहानियाँ अत्याचारी और मार्गभ्रष्ट पात्रों के हृदय–परवर्तन को दर्शाती हैं जो प्रेमचन्द की मानवीय मूल्यों में आस्था का परिचायक है।

दिसंबर, 1915 में प्रेमचन्द की पहली हिन्दी कहानी 'सौत' प्रकाशित हुई। 'सौत' में बदलती हुई परिस्थितियों में संपत्तियों के ईर्ष्या भाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द के रचना–काल में 1916–1929 का काल विषय वैविध्य, सामाजिक चेतना मनोवैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि और कहानी कला के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस समयावधि में

उन्होंने लगभग 200 कहानियाँ लिखीं जो समकालीन सामाजिक राजनीतिक जीवन के अनेक पक्ष उद्घाटित करती हैं। 1916–1920 के समय में प्रकाशित उनकी कहानियाँ राजनीतिक गतिविधियों से जुड़ी है परन्तु राजनीतिक स्वर मन्द है। प्रेमचन्द की अधिकतर कहानियाँ ग्रामीण जीवन के पारिवारिक संबंधों, मूल्यबोध, और आदर्श प्रस्तुत की भावना से ओत–प्रोत हैं। जैसे ईश्वरीय न्याय, सज्जनता का दंड, पंच परमेश्वर, घमंड का पुतला, दो भाई, दुर्गा का मंदिर, बेटी का धन, बूढ़ी काकी आदि। 1921 के बाद की कहानियों में स्वाधीनता आंदोलन का खुलकर प्रयोग हुआ है जैसे अजीब होली, लागडाट, आदर्श–विरोध, त्यागी का प्रेम, लाल फीता, हार की जीत, अधिकार चिंता, चकमा, इस्तीफा, माँ आदि कहानियाँ।

भारतीय नारी की दुर्भाग्यपूर्ण नियति की अभिव्यक्ति सेवासदन उपन्यास में हो चुकी थी। 1923–25 में महिला पत्रिका चांद में उनकी लगभग डेढ़ दर्जन कहानियों में जो प्रमोद शीर्षक संग्रह (1926) में भी प्रकाशित हुई थी। समकालीन नारी की दयनीय स्थिति के सजीव चित्र उपलब्ध होते हैं। परीक्षा, तेंतर, नैराश्य, निर्वासन, उद्धार, स्त्री और पुरुष, नरक का द्वार, एक आँच की कसर, स्वर्ग की देवी, आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में नारी के प्रति प्रेमचन्द की करुणा ही व्यक्त हुई है परन्तु विद्रोह नहीं।

साम्प्रदायिक भेदभाव मुक्त सहजीवन प्रेमचन्द की मूल्य चेतना का अहम् हिस्सा था। नमक का दरोगा, पंच परमेश्वर, दफ्तरी, ताँगेवाले की बढ़ आदि कहानियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी मन्त्र, हिंसा परमोधर्म और जिहाद आदि कहानियों में धार्मिक उन्माद के तहत किए जाने वाले धर्म परिवर्तन का चित्रण और विरोध किया गया है।

इस अवधि में प्रेमचन्द ने परिवेश, घटनाओं और किवंदतियों पर आधारित कुछ कहानियाँ लिखीं जैसे परीक्षा (1923) और शतरंज के खिलाड़ी (1924)। जुगनू की चमक, वफा का खंजर, राज्य भक्त, परीक्षा आदि ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित साधारण कहानियाँ हैं। (1921–29) की अवधि की कहानियाँ समकालीन जीवन पर आधारित हैं जैसे विध्वंस, गुप्त धन, मूठ, लोकमत का सम्मान, गृहदाह, बैर का अन्त, मुक्ति मार्ग, शंखनाद, निमंत्रण, कजाकी, रामलीला मंदिर आदि। मंदिर (1927) और घासवाली (1929) दलितों के शोषण पर आधारित है। कजाकी और सुजान भक्त उच्च कोटि की चरित्र–प्रधान कहानियाँ है। 'प्रेम की होली' प्रेम संवेदना की अभिव्यक्ति है।

संवेदना और शिल्प की दृष्टि से 1930–36 के समय में प्रकाशित प्रेमचन्द की कहानियाँ हिन्दी कहानी–साहित्य में विशेष महत्व रखती हैं। कथ्य की दृष्टि से इस काल की कहानियाँ समकालीन जीवन के अनेक पक्षों को उदघाटित करती हैं। यह वह दौर था जब स्वाधीनता की लड़ाई अपने पूरे जोर पर थी। प्रेमचन्द की जुलूस, पत्नी से पति, समर यात्रा, शराब की दुकान, मैकू, आहुति, कौम का खादिम, कातिल (1930–31 में प्रकाशित) कुत्सा, अनुभव (1932) आदि की कहानियों में देशप्रेम की चेतना के दर्शन होते हैं। पूस की रात (1930) सदगति (1931) ठाकुर का कुआँ (1932), ईदगाह (1933), नशा, दूध का दाम (1934), कफन (1935), लॉटरी (1935), जुरमाना (1936) आदि तो हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक महत्व की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में आदर्श का स्थान यथार्थ ने, विचारों का स्थान संवेदनाओं ने और घटनाओं का स्थान रोजमर्रा के कार्य–व्यापारों ने ले लिया है। समाज में नारी की स्थिति और उसके शोषण, ग्रामीण मध्यवर्गीय समाज, मालिकों के साथ मजदूरों का संघर्ष आदि दो कब्रें, सुभागी, आखिरी हीला, प्रेम का उदय, स्वामिनी,

मृतक भोज, नेउर, दो बैलों की कथा, लेखक, सौत, सती, बेटों वाली विधवा, झाँकी, कुसुम, गुल्ली डंडा, कायर, ज्योति, बड़े भाई साहब आदि कहानियों में मिलता है।

9.4 सारांश

कहानीकार प्रेमचंद के मूल्यांकन का यह प्रयास अपूर्ण ही रह जाएगा। यदि हिन्दी कहानी को उनके भाषा–दाय पर विचार नहीं किया गया। बीसवीं शती में हिन्दी के दो बड़े गद्यकार सर्जक हुए हैं–प्रसाद और प्रेमचंद। दोनों ही समकालीन थे, और दोनों ही 'पण्डितों' की नगरी काशी के वासी किन्तु दोनों के भाषा–संस्कार अलग–अलग थे। प्रसाद बहुत उच्च कोटि के कलाकार हैं, इसमें दो मत नहीं हो सकते। किन्तु यहाँ हम केवल उनके गद्य के भाषा–संस्कार की बात कर रहे हैं और प्रसाद और प्रेमचंद के बाद के समय–अंतराल ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी का भविष्यत् प्रेमचंद के भाषा–संस्कारों के पग–चिह्नों पर चला है और इस रूप में ही उसका उज्जवल और समृद्ध भविष्य सुरक्षित है। प्रेमचंद का योगदान हिन्दी को सर्वग्राह्य भाषा के रूप में प्रस्तुत करने में ही नहीं है अपितु वे हिन्दी कहानी की ऐसी भाषा गढ़ रहे थे, कहानी को भाषा का ऐसा संस्कार प्रदान कर रहे थे जो आज भी हिन्दी कहानी लेखकों का आदर्श है। प्रेमचंद की परवर्ती कहानियों में यह भाषागत रचाव और भाषा को सरली–करण का सौंदर्य प्रदान करने का कौशल दर्शनीय है। 'सवा सेर गेहूँ' की प्रारम्भिक पंक्तियों से उनकी इस कला का उदाहरण दिया जा सकता है, "किसी गांव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था। सीधा–सादा, गरीब आदमी था। अपने काम से काम, न किसी के लेन में न देन में। छक्का–पंजा न जानता था, छल–प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी। ठगे जाने की चिंता न थी, ठगविद्या न जानता था। भोजन मिला, खा लिया, न मिला चबेने पर काट दी, चबेना भी न मिला तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो रहा।" कहना न होगा कि इस भाषा–अंश को हम जब सातवें–आठवें दशक के अनेक कहानीकारों के ऐसे ही स्थलों से मिला कर देखते हैं, इनमें बहुत समानता दिखाई देती है। आज का कहानीकार प्रेमचंद के इस भाषा–संस्कार को पाकर धन्य हो उठा है।

इस प्रकार प्रेमचंद का कथा–व्यक्तित्व अनेक दृष्टियों से आधुनिक हिन्दी कहानी का मार्ग–दर्शक सिद्ध हुआ है। वस्तुतः वे हिन्दी कहानी के पुरोधा पुरुष थे।

9.5 कठिन शब्द

1. ऐच्छिक	2. शोचनीय	3. सर्वोत्कृष्ट	4. अविस्मरणीय	
5. पतनोन्मुख	6. दुरावस्था	7. परिच्छेद	8. पुरोधा	9. निषेध
10. निर्विवादित	11. अंतस्तल	12. किंचित	13. आलेखन	14. अपरिनिदिष्ट

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रेमचन्द की कहानियों के विकास–क्रम पर प्रकाश डालें।

2. प्रेमचंद एवं उपन्यासकार ही नहीं अपितु एक सफल कहानीकार भी थे – स्पष्ट कीजिए।

9.7 पठनीय पुस्तके

1. कफ़न : एक पुनः पाठ – सं पल्लव
2. प्रेमचन्द : एक विवेचन – डॉ. इन्द्रनाथ मदान
3. कहानीकार प्रेमचन्द रचनादृष्टि और रचना शिल्प – शिवकुमार मिश्र
4. प्रेमचन्द साहित्य में हाशिए का समाज –डॉ शुभ्रा सिंह
5. प्रेमचन्द – सं. सत्येन्द्र
6. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रज़ा

***

प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श और यथार्थ

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श और यथार्थ

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्द

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.7 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे –

– प्रेमचन्द का यथार्थवाद कहानियों में भी परिलक्षित होता है।

– प्रेमचन्द की कहानियां यथार्थ चेतना लिए हुए है।

– कहानीकार के रूप में प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना की है।

10.2 प्रस्तावना

आलोचकों में प्रेमचन्द के विषय में वाद–विवाद रहा है कि वे आदर्शवादी थे कि यथार्थवादी। यह प्रश्न कहानीकार प्रेमचन्द से ही नहीं अपितु उपन्यासकार प्रेमचन्द से भी सम्बन्धित है। यदि आलोचकों का एक वर्ग उन्हें आदर्शवादी स्वीकार करता है तो दूसरा वर्ग उन्हें यथार्थवादी कहता है। इन दोनों के विपरीत प्रेमचन्द स्वयं अपने आपको आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहते हैं। तथापि यह अत्यावश्यक हो जाता है कि हम

उनकी लगभग 300 कहानियों के विश्लेषण के आधार पर तथा स्वयं प्रेमचन्द की आदर्श–यथार्थ विषयक विचारधारा के आधार पर देखें कि क्या वे पूर्णतः आदर्शवादी अथवा यथार्थवादी हैं। उनका आदर्श और यथार्थ अपना रूप बदलता हुआ प्रतीत होता है।

10.3 प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श और यथार्थ

प्रेमचन्द वस्तुतः भारतीय संस्कृति एवं आदर्श में आस्था रखते थे। इस आस्था को वे किसी भी मूल्य पर नही छोड़ना चाहते थे। योरूप की पाश्चात्य सभ्यता को वे भारतीय संस्कृति के पासंग बराबर भी न समझते थे। "योरुप और भारत की दृष्टि में अन्तर है। योरुप की दृष्टि सुन्दर पर पड़ती हैं– पर भारत की सत्य पर। सम्पन्न योरुप ने मनोरंजन के लिए गल्प लिखे। लेकिन भारतवर्ष कभी इस आदर्श को स्वीकार न करेगा। हम पराधीन हैं–पर हमारी सभ्यता पाश्चात्य से कहीं ऊँची है। यथार्थ पर निगाह रखने वाला योरुप हम आदर्शवादियों से जीवन संग्राम में बाजी क्यों न ले जाये, पर हम अपने परम्परागत संस्कारों का आधार नहीं त्याग सकते। साहित्य में भी हमें अपनी आत्मा की रक्षा करनी ही होगी।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उनका भारतीय आदर्श के प्रति कितना मोह था ? यही मोह उनकी आरम्भिक काल की कहानियों में दृष्टिगत होता है। यद्यपि प्रेमचन्द भौतिकवादी न थे–बुद्धिवादी थे। परन्तु वे घोर बुद्धिवादी भी न थे। उन्हें सदैव पाश्चात्य सभ्यता की प्रवृतियों से शंका बनी रहती थी। यही कारण है कि इस आशंका के प्रति खुली चेतावनी भी दी। "उन्होंने घोषित किया कि त्राण शक्ति में नहीं सेवा में है। महिमा उद्धण्ड विभूति में नहीं–शान्त समर्पण में है।" प्रेमचन्द का विश्वास था कि गाँव की संस्कृति, गाँव का वातावरण ही श्रेष्ठ है। क्योंकि वहाँ तक आधुनिक युग की सभ्यता के पैशाची पंजे नहीं पहुँच पाये–वहाँ पर अब भी मानवता है। मनुष्य के सद्भावों का लोप नहीं हो गया। इस सबका वर्णन करने से मेरा आशय यही है कि प्रेमचन्द का यह विश्वास था कि भारत का कल्याण पाश्चात्य चरित्रों के दर्शन से एक विशेष आनन्द होता है।" तत्कालीन क्लान्त भारत के लिए ये आदर्श चरित्र प्रेरक थे।

"यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान पर पहुँचा देता है।... किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।"

प्रेमचन्द की विचारधारा को समझ लेने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कहानीकार प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है। उनकी पृष्ठभूमि यथार्थवादी है और उनके निष्कर्ष आदर्शवादी। परन्तु उनका आदर्शवाद निठ्ठलों का नहीं अपितु कर्मठ व्यक्तियों का आदर्शवाद है। वस्तुतः उनकी प्रारम्भिक कहानियों में कोरे आदर्शवाद की अवतारणा उस युग की ही पुकार थी। वह युग ही सुधारवादी था। उनकी सभी ऐतिहासिक कहानियाँ आदर्शवादी हैं। यथार्थवाद से प्रभावित प्रेमचन्द की कहानियाँ हैं–'पूस की रात', 'सवासेर गेहूँ', 'कफन', 'बाबा जी का भोज', 'सज्जनता का दण्ड', 'शिकार', 'लांछन–1', 'लांछन–2', 'बूढ़ी काकी', 'मनोव्रत', 'घासवाली', 'सती', 'विश्वास', 'बोध', 'बेटी का धन', 'माँ', 'सौत', 'शांति', 'बड़े घर की बेटी', 'अलग्योझा', 'पंचपरमेश्वर', 'सती', 'मूठ', 'उपदेश', 'दो बहनें', 'भूत', 'सौभाग्य के

कोड़े', 'कामना तरू', 'आगा–पीछा', 'नरक का मार्ग', 'गृहनीति', 'आभूषण', 'दो कब्रें', 'शंखनाद', 'फातिहा' आदि। परन्तु उनका यथार्थवाद फ्रायडियन यथार्थवादियों से भिन्नता लिए हुए है। वे यथार्थ परिस्थिति का उद्घाटन मात्र करते हैं। डा० रामविलास शर्मा कहते हैं–उनके पात्र एकदम जिन्दा हैं उनके पात्र यथार्थवादी हैं जो निष्क्रियता त्याग कर लड़ने के लिए सन्नद्ध हैं। प्रेमचन्द जी के पात्र यथार्थ की संकरी गलियों से गुजरता है, निर्बलताओं के वशीभूत होता है परन्तु उसका अंतःस्थित देवत्व पुनः जाग्रत होता है और निर्बलताओं को जीत कर जीवन में यशस्वी बनकर जीवन के रंगमंच पर आता है। यही उनका आदर्शोंमुख यथार्थवाद है। जो 'बूढ़ी काकी', 'मृतक भोज', 'अलग्योझा', 'ठाकुर का कुआँ' आदि में दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार प्रेमचन्द की कहानियों में उनका आदर्शवाद तीन विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। "आरम्भिक कहानियां भावना प्रधान और आदर्शवादी हैं। वे प्रत्येक स्थिति में किसी ऊंचे आदर्श पर जाकर समाप्त होती हैं। उनका प्रभाव भावुकतापूर्ण और उपदेशात्मक सा होता है।" प्रेमचन्द की यह आदर्शवादिता यहाँ कर्तव्य, त्याग, प्रेम, न्याय, मित्रता, देश सेवा आदि कई दिशाओं में प्रतिष्ठित हुई है। हमेशा असत्य पर सत्य की जीत दिखाकर आदर्श की प्रतिष्ठा दिखाई है। इसी सत्य के धरातल पर–'बड़े घर की बेटी', 'पंच परमेश्वर', 'नमक का दारोगा', 'उपदेश', 'परीक्षा' और 'पछतावा' आदि कहानियाँ निर्मित हुई हैं। 'बड़े घर की बेटी' कहानी स्रोत की दृष्टि से प्रकल्पित श्रेणी के अन्तर्गत आती है। इसकी रचना लेखक ने अपने जीवन के आस–पास के व्यवहार जगत से घटनाएँ लेकर, भोगे जा रहे यथार्थ के आधार पर की है। ग्राम्य वातावरण पर आधारित इस कहानी में मानवीय सम्बन्धों और पारिवारिक–सामाजिक जीवन के महत मूल्यों को सफलता के साथ उकेरा गया है।

'पंच–परमेश्वर' कहानी बहुत सरल–सीधी, परंपरागत वर्णन–शैली की यह कहानी प्रेमचन्द के शुरूआती दौर की कहानियों में शायद सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। 'हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है" यह घोषणा प्रेमचन्द ने अपनी विकास कालीन कहानियों के विषय में की थी। उनकी 'ईश्वरी न्याय', 'महातीर्थ', 'धर्म संकट', 'बौढ़म सुहाग की साड़ी', 'लाल फीता', 'आत्माराम' आदि कहानियों में आदर्शोंमुख यथार्थवाद परिलक्षित हुआ है। वस्तुतः इस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पीछे गांधीवाद की प्रेरणा ही कार्य कर रही थी। इसी काल में उनकी विशुद्ध यथार्थवादी कहानियाँ प्रकाश में आई। 'बूढ़ी काकी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'शान्ति' तथा 'दफ्तरी' आदि कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

10.4 सारांश

"उत्कर्ष काल में आकर प्रेमचन्द का यह यथार्थवादी दृष्टिकोण और भी स्पष्ट हो गया है। 'कफन', 'पूस की रात', 'मिस पदमा', 'कुसुम' आदि कहानियों की यथार्थता प्रेरणा तीव्रतम हुई है। 'कफन' में जीवन का नग्नतम यथार्थ अट्टहास कर उठा। 'पूस की रात' में यही यथार्थ व्यंग बनकर रह गया है। मानों 'हल्कू' समाज को चुनौती दे रहा हो कि अब समाज की यह व्यवस्था और अधिक दिनों तक नही सही जा सकती। इस तरह विशुद्ध आदर्शवादी प्रेमचन्द अन्त में विशुद्ध यथार्थवादी बन जाते हैं।

10.5 कठिन शब्द

1. उत्कर्ष
2. यथार्थवाद
3. विशुद्ध
4. अट्टहास
5. परिलक्षित
6. प्रतिष्ठा
7. उद्घाटित
8. विभूति
9. भौतिकतावादी
10. निष्क्रियता

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रेमचन्द की कहानियों में अभिव्यक्त यथार्थ चेतना पर प्रकाश डालिए।

2. प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का चित्रण हुआ है – स्पष्ट कीजिए।

10.7 पठनीय पुस्तकें

1. कफन : एक पुनः पाठ – सं पल्लव
2. प्रेमचन्द : एक विवेचन – डॉ. इन्द्रनाथ मदान
3. कहानीकार प्रेमचन्द रचनादृष्टि और रचना शिल्प – शिवकुमार मिश्र
4. प्रेमचन्द साहित्य में हाशिए का समाज –डॉ शुभ्रा सिंह
5. प्रेमचन्द – सं. सत्येन्द्र
6. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रज़ा

*****

प्रेमचन्द की कथा–शैली

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3. प्रेमचन्द की कथा शैली

11.4 प्रारम्भ

11.5 प्रेमचन्द की कहानियों का विकास

11.6 चरम सीमा

11.7 कठिन शब्द

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.9 पठनीय पुस्तकें

11.1. उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप

– कहानियों की कथा शैली के बारे में जानेगे।

– प्रेमचन्द की कहानियों का विकास कब हुआ? इससे अवगत होंगे।

11.2 प्रस्तवाना

साहित्य में भावों विचारों अथवा तथ्यों को प्रकट करने की रीति को शैली कहते हैं। शैली का अन्तिम उद्देश्य साहित्य गत वस्तु को अधिक प्रेषणीय, संवेद्य बनाना होता हैं। पाठक की रुचि को आकृष्ट करने की योग्यता शैली की न्यूनतम योग्यता है।

11.3 प्रेमचन्द की कथा – शैली

शैली से दो प्रकार के अर्थ लिए जाते हैं। एक सामान्य और दूसरा व्यापक अर्थ। शैली के अन्तर्गत इसके व्यापक पक्ष में कहानी के तीन भाग आरम्भ, विकास और चरम सीमा का अध्ययन किया जाता है। सामान्य

पक्ष में कहानी के अन्य तत्वों का उल्लेख किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस शैली के व्यापक पक्ष के अन्तर्गत दो दृष्टियों से विचार करेंगे। अर्थात् लेखन की विभिन्न शैलियों की दृष्टि से तथा कहानी के आरम्भ–विकास–चरम सीमा की दृष्टि से। लेखन की विभिन्न पद्धतियों के अन्तर्गत–हम यह अध्ययन करेंगे कि प्रेमचन्द ने प्रमुख रूप से कितने प्रकार की शैलियों या पद्धतियों में कहानी रचना की अर्थात् ऐतिहासिक, डायरी, पत्र शैली, आत्मकथात्मक शैली, रूपक शैली, अथवा मिस्र शैली आदि किसमें कहानी की रचना की गई है।

प्रेमचन्द ने लगभग सभी प्रकार की 'शैली' में कहानियाँ लिखी हैं। संक्षेप्त में हम कह सकते हैं कि उनकी सभी प्रकार की पद्धतियों में कहानी लिखने की कलापूर्ण प्रतिभा थी। प्रत्येक शैली में वे सफल उतरे हैं। प्रेमचन्द की उत्कर्ष कालीन कहानियों में शैली की दृष्टि से कतिपय सुन्दर कहानियाँ हैं। आरम्भकालीन, विकासकालीन एवं उत्कर्ष कालीन अपनी कहानियों में प्रेमचन्द ने लगातार शैली गत प्रयोग किया है।

11.3.1 ऐतिहासिक शैली

इस शैली के अन्तर्गत उनकी अधिकांश कहानियाँ आ जाती हैं क्योंकि प्रेमचन्द को अपनी बात कहने का अधिक अवसर इसी प्रकार की शैली में मिलता है। लगभग आधी कहानियों में इसी शैली का सहारा लिया गया है। कतिपय प्रसिद्ध कहानियों–'मृत्यु के पीछे', 'आभूषण', 'आत्माराम', 'बड़े घर की बेटी', 'महातीर्थ', 'मर्यादा की वेदी', 'विक्रमादित्य का तेगा', 'विस्मृति', 'प्रारब्ध', 'कजाकी', 'ईश्वर न्याय', 'इस्तीफा' तथा 'पिसनहरी का कुआँ' आदि में ऐतिहासिक शैली है। ऐतिहासिक शैली वस्तुतः उपयुक्त नाम करण नहीं है। यह सबसे सरल प्रचलित शैली है। जिस रीति से इतिहास लिखा जाता है उसी रीति से इन कहानियों को लिखा जा सकता है। इनमें अधिकतर अन्य पुरुष का प्रयोग किया जाता है। ऐतिहासिक कहानियों और ऐतिहासिक शैली में लिखी कहानियों में पर्याप्त भिन्नता होती है। वर्तमान युग की आज के दिन की कोई कहानी ऐतिहासिक शैली में लिखी जा सकती है–परन्तु उसे ऐतिहासिक नहीं माना जाता।

11.3.2 डायरी शैली

दैनन्दिनी के पृष्ठों में कभी–कभी अत्यन्त महत्वपूर्ण अथवा रोचक घटनाएँ अकिंत हो जाया करती हैं। इसी तथ्य का आधार लेकर कहानी लिखने के लिए इस शैली का प्रयोग प्रचलित हुआ है। प्रेमचन्द ने इस शैली में मात्र एक कहानी लिखी है। इसमें कुछ स्थानों में डायरी शैली का पूर्ण निर्वाह नहीं हुआ है। यह कहानी है–'पंडित मोटेराम की डायरी'।

11.3.3 पत्र शैली

सापेक्षतः अप्रचलित किन्तु विधान की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण, कहानी लिखने की यह एक आधुनिक शैली है। इस प्रकार की कहानियों का सम्पूर्ण ढाँचा पत्रों से बनता है। कहानी के समस्त तत्व या तो एक ही पत्र में सिमटे हुए होते हैं या कई पत्रों में अभिव्यक्त होते हैं। प्रेमचन्द की उल्लेख योग कहानी 'दो सखियां' है–जो एक मात्र पत्र शैली में लिखी गई है। इस कहानी में शैली के अनुसार एक बाधा यह है कि स्वतन्त्रता पूर्वक वार्तालाप प्रस्तुत किए गये हैं– जिनसे कथा में कहीं–कहीं विकास रुकता सा अनुभव होता है। यह कहानी १३

(13) पत्रों में विभक्त है। इस कहानी की लम्बाई ६७ (67) पृष्ठ है।

11.3.4 आत्मकथात्मक शैली

इस प्रकार की कहानियों में एक पात्र में लेखक 'मैं' की संज्ञा देता है। परन्तु इसका सदा यह अर्थ नही होता कि उस 'मैं' में लेखक का व्यक्तित्व निहित रहता है। यह सारी कहानी मूलतः ऐतिहासिक शैली में चलती है। प्रेमचन्द ने इस शैली में कई कहानियाँ लिखी हैं। 'शांति' (मा० स० भाग–७) 'बौढ़म', 'शाप', 'हार की जीत', तथा 'यह मेरी मातृ भूमि' है। 'बौढ़म' कहानी लेखक स्वयं 'मैं' के रूप में प्रस्तुत हुआ है। अन्य कहानियों में अन्य पात्रों को रखा गया है। 'हार की जीत' में कुछ भिन्नता है। इसमें कहीं–कहीं परिछेदों में पात्रों के नाम इस तरह दिया गया है :– ५ : शारदाचरण आदि। परन्तु पूर्ण रूप से आत्म–कथात्मक शैली में नहीं रखा जा सकता।

11.3.5 मिश्र शैली

इस प्रकार की कहानियों में से ऊपर विवेचना किये दो या अधिक विधानों को मिला दिया जाता है अर्थात् ऐतिहासिक और पत्र शैली को मिला दिया या अन्य किन्हीं दो शैलियों के मिश्रण से नवीन शैली बना दी। इस प्रकार की कहानियाँ प्रेमचन्द की कई हैं। पत्रों और चिन्तन को मिलाकर 'धर्म संकट' आदि की रचना की गई है। आत्मकथा और ऐतिहासिक शैलियों में मिश्रित कहानी 'ब्रह्मा का स्वांग' आदि है।

11.3.6 रूपक शैली

इसमें प्रेमचन्द ने कम कहानियों की रचना की है। 'मार्ग', 'ज्वालामुखी', 'अधिकार चिन्ता' आदि कुछ कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

8.3.7 कथोपकथन शैली

इसके अन्तर्गत उन कहानियों गणना की जाती है जिनमें संवादों को अधिक महत्व प्रदान किया जाय। तथा सारी की सारी कथा का विकास–अन्त कथोपकथन में ही हो। प्रेमचन्द की 'जादू' 'मनोवृत्ति' कहानियाँ कथोपकथन शैली की सुन्दर कहानियाँ हैं।

इसके अतिरिक्त नाटकीय शैली, भाषण शैली, लघु कथात्मक शैली आदि कई शैलियों में प्रेमचन्द ने कहानियों की रचना की है। परन्तु प्रमुख रूप से ऐतिहासिक एवं मिश्र शैली का आश्रय लिया।

अब हम कहानियों की तीनों अवस्थाओं पर विचार करेंगे। अर्थात् कहानी के प्रारम्भ विकास तथा अन्त पर दृष्टिपात करेंगे। इस दृष्टि से हमें उनकी कहानियों में तीन कालों में विभिन्न स्थितियाँ मिलती हैं। आरम्भिक युगीन कहानियों में प्रेमचन्द न तो सफल आरम्भ ही कर पाते हैं न ही उसका विकास न अन्त ही। विकास काल की कतिपय कहानियाँ इस दृष्टि से सफलतम हैं तथा उत्कर्ष काल में आकर प्रेमचन्द अपनी कहानियों के संघर्ष और चरम सीमा को प्रस्तुत करने में अतिशय सफलता अर्जित करते हैं।

11.4 प्रारम्भ :

आरम्भिक कहानियों का प्रारम्भ परिचयात्मक है। इस प्रकार की कहानियों में प्रेमचन्द पहले पात्रों का तथा बाद में परिस्थितियों का परिचय देते हुए कथापात्र को आगे बढ़ाते हैं। यही नहीं पात्रों का परिचय संक्षिप्त नहीं होता अपितु भूमिका हित विस्तृत रुप से परिचय प्रस्तुत किया जाता है। 'सप्त सरोज' एवं नवनिधि की कोई भी कहानी ऐसी नहीं जिसमें इस प्रकार का आरम्भ प्रस्तुत न किया गया हो। प्रेमचन्द की यह भी घोषणा थी कि पात्रों के परिचय के साथ ही साथ उसकी परिस्थितियों का भी परिचय आवश्यक रूप से कहानीकार को देना चाहिये। यही प्रवृति उनकी आरम्भिक युग की कहानियों में दृष्टिगत होती हैं। इस प्रकार वे आरम्भ में ही बता देते हैं कि पाठक को कुछ सोचने के लिए शेष नहीं रहता। पूर्ण संवेदना में पात्रों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

"अपनी माधव सिंह गौपुर गाँव के जमींदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धान्य से सम्पन्न थे। गाँव का पक्का तालाब और मन्दिर, जिन की अब मरम्मत मुश्किल थी, उन्हीं के कीर्ति स्तम्भ थे कहते हैं इस दरवाजे पर हाथी झूमता था, उसकी जगह पर एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीर में पंजर के सिवा और कुछ न रहा था। पर दूध शायद बहुत देती, क्योंकि एक न एक आदमी हाँडी लिए उसके सर पर सवार ही रहता था। बेनी माधव सिंह अपनी आधी से अधिक सम्पत्ति सेलों की भेंट कर चुके थे। उनकी बर्तमान आय वार्षिक एक हजार से अधिक न थी। ठाकुर साहब के दो बेटे थे।"

यह था 'बड़े घर की बेटी' का प्रारम्भ। इसमें हमें परिस्थितियों का पात्रों का परिचय मिल जाता है। अर्थव्यवस्था का भी अनुमान लगा लेते हैं। इसी प्रकार प्रारम्भ हुआ 'पंचपरमेश्वर', 'नमक का दारोगा', 'ममता', 'राजा हरदौल' आदि कई कहानियों का प्रारम्भ हुआ है।

"जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे और अलगू जब कभी बाहर जाते तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ जाते थे। उनमें न खान पान का नाता था न धर्म का नाता, केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूलमंत्र भी यही है।"

"जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया, तब लोग चोरी छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल प्रपंचों का सूत्र पात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ बारह थे। पटवारी गिरी का सर्व सम्मानित पद छोड़–छोड़ कर लोग इस विभाग की परकन्दाजी करते थे।" इसमें आगे आने वाली कथा की भूमिका दी गई है।

विकास कालीन कहानियों में प्रेमचन्द इस दृष्टि से अपेक्षाकृत आगे बढ़े हुए हैं। परन्तु अब भी पुरानी आदत के कारण कुछ कहानियों का आरम्भ उसी प्रकार का है। परन्तु कुछ कहानियों का आरम्भ बिल्कुल परिवर्तित एवं नवीन है। 'आत्मा राम', 'नैराश्य लीला' 'लोक मत का सम्मान' आदि कहानियों का आरम्भ पूर्व की तरह ही है।

परन्तु कुछ कहानियों में भूमिका और पात्रों का परिचय नहीं दिया जाता। कुछ बिल्कुल नये ढंग से शुरु हुई हैं। भूमिका रहित कहानियों में–'दफ्तरी', 'नागपूजा', 'शतरंज के खिलाड़ी', आदि का प्रारम्भ एवं नितान्त नवीन ढंग से प्रारम्भ की गई है। 'मैकू', 'शान्ती' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। दोनों के उदाहरण द्रष्टव्य है। "प्रातःकाल का आषाढ़ का पहला दौदड़ा निकल गया था। कीट पतंग चारों तरफ रेंगते दिखायी देते थे। तिलोत्तमा ने वाटिका की ओर देखा तो वृक्ष और पौधे ऐसे निखर गये थे। जैसे साबुन से मैला कपड़ा निखर जाये। उन पर एक विचित्र आध्यात्मिक शोभा छायी हुई थी मानो योगीवर आनन्द में मग्न पड़े हों। चिड़ियों में आसाधारण चंचलता थी।"

"जब मैं ससुराल आई तो, बिल्कुल फूहड़ थी। पहनने ओढ़ने का सलीका न बातचीत करने का ढंग। सिर उठा कर किसी से बातचीत न कर सकती थी। किसी के सामने जाते शर्म आती। स्त्रियों तक के सामने बिना घूघंट झिझक होती थी।" – पहला उदाहरण 'नाग पूजा' और दूसरा 'शान्ति' से है।

उत्कर्ष कालीन कहानियों के आरम्भ और विकास, दोनों में अन्तर करना कठिन है। दोनों ही मिले हुए हैं। 'कफ़न', 'मनोवृत्ति', 'जादू' आदि कहानियों में आरंभ और विकास अलग–अलग नहीं मिलते। "झोपड़ी के द्वार पर बाप और बेटा दोनों बुझे अलाव के सामने चुपचाप बैठे हैं और अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव पीड़ा से पछाड़ खा रही थी"। यहाँ पर कहानी का आरम्भ और विकास दोनों मिलते हैं।

11.5 प्रेमचंद की कहानियों का विकास

आरम्भ और चरम सीमा के बीच हमें प्रेमचन्द की कहानियों के विकास के दर्शन तीन भिन्न कालों में तीन भिन्न विकास मिलते हैं। प्रारम्भिक कहानियों में विकास धीरे–धीरे होता है। यह विकास चार अवस्था क्रमों में होता है। (1) मुख्य घटना की तैयारी। (2) मुख्य घटना की निष्पति (3) व्याख्या (4) घात–प्रतिघात। इन कहानियों में उपस्थित किया गया संघर्ष सत् और असत् का संघर्ष होता है। उसी संघर्ष की समाप्ति पर कहानी चरमसीमा स्थल पर आ जाती है। प्रेमचन्द 'व्याख्या' में घटित घटना के विषय में अपना वैचारिक दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं।

विकास कालीन कहानियों में प्रेमचन्द ने इस दिशा में बहुत सफलता प्राप्त की है। यद्यपि इस युग की कई कहानियों में वही पहले की सी दशा है। नवीन और विकसित अवस्था क्रम इस प्रकार मिलता है। (1) समस्या का संकेत (2) समस्या उद्घाटन (3) संघर्ष–परिसमाप्ति से पूर्व दशा। इस प्रकार के 'विकास' में प्रेमचन्द व्याख्या और घात प्रतिघात को स्थान नहीं देते। अब घटना का स्थान एक मनोभाव ने ग्रहण कर लिया है। अब अनावश्यक विस्तार नहीं मिलता। 'शतरंज के खिलाड़ी' 'मैकू' 'विध्वंस' कहानियों में अवस्था क्रम इसी प्रकार का है।

उत्कर्ष कालीन कहानियों में विकास की अवस्थाओं को सूक्ष्म रूप से ढूँढना असम्भव है। अब आरम्भ के साथ ही साथ विकास हो जाता है। कालान्तर में घटना की उत्तेजना में वृद्धि होती है। तथा फिर घात–प्रतिघात होता है। यह घात प्रतिघात मानो जगत में होता है। क्योंकि इस युग की श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक

कहानियों में सामान्य रूप से यही देखने को मिलता है। 'कफ़न' की कहानी में प्रेमचन्द ने कहानी का विकास क्रम बहुत तीव्र दिखाया है। इस तरह विकास की अवस्थाओं की दृष्टि से आरम्भ की और उत्कर्ष कहानियों में पर्याप्त अन्तर आ गया है।

11.6 चरम सीमा : उपसंहार : अन्तः परि समाप्ति

चरम सीमा की दृष्टि से भी तीनों युगों में भिन्नता मिलती है। 'सप्तसरोज' की कहानियाँ में चरम सीमा और उपसंहार दोनों मिलते हैं। 'बड़े घर की बेटी' में चरम सीमा आनन्दी का देवर को रोक लेना है। इसके पश्चात आता है उपसंहार। इसे ही हम अन्त भी कह सकते हैं। कई कहानियों में–यद्यपि अपवाद स्वरूप एक आध ही प्राप्य हैं–मात्र चरम सीमा ही है–फिर शीघ्र ही अन्त हो जाता है। इन कहानियों के अन्त सदा आदर्शवाद पर टिके रहते हैं। प्रेमचन्द उपसंहार के अन्तर्गत उपदेश देने लगते हैं। इस कारण इसमें कलागत दोष आ जाता है। कहानी का सारा सौन्दर्य–सारा प्रभाव नष्ट हो जाता है।

विकास कालीन कहानियों में कुछ दूर तक प्रेमचन्द यही परम्परा लिए चलते हैं परन्तु अब उस तरह के दोष का परिहार एक सीमा तक कर लिया गया है। चरम सीमा और उपसंहार अब भी मिलता है–परन्तु अब उसमें कलागत विशेषता आ गई है। अब उसमें किसी उपदेश को प्रसारित नहीं किया जाता। अपितु अब तो उपसंहार कहानी के प्रभाव को एक सीमा तक आगे बढ़ाने वाला, मार्मिक बनाने वाला–नुकीला बनाने वाला, सिद्ध होता है। 'शतरंज के खिलाड़ी' इस प्रकार का अच्छा उदाहरण है–"चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। खंडहर की टूटी रुई मेहरावे, गिरी हुई दीवारें और धूल धूसरित दीवारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती।"

उत्कर्ष कालीन कहानियों में यह स्थिति कम पाई जाती है। अब यहाँ की कहानियों की चरम सीमाएँ और अन्त मिले हुए हैं। साथ ही साथ कहानियों की चरम सीमा किसी न किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर प्रतिष्ठित हुई है। मनोवैज्ञानिक अनुभूति अब अधिक सक्रिय हो उठी है। यह चरम सीमाएँ नितान्त कलात्मक हुई हैं। साथ ही साथ उपदेश का अवतरण या उपसंहार का अवतरण नहीं जोड़ा जाता।

अब अन्त अधिक व्यंजक होता है। कहानी पाश्चात्य कहानियों की तरह समाप्त होती है। अन्त कुतूहल पूर्ण होता है। पाठक पर स्थायी प्रभाव रहता है। 'कफ़न' का अन्त अद्वितीय रूप से सफल है। "तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे। ...साहु जी एक बोतल हमें भी देना। .... फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, भटके भी। भाव भी बनाए, अभिनय भी किये और आखिर नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़ें!"

11.7 कठिन शब्द

1. आकृष्ट	2. मनोवृत्ति	3. प्रतिधात
4. उत्कर्ष	5. दृष्टव्य	6. अपवाद

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कहानियों की कथा शैली पर प्रकाश डालिए।

2. प्रेमचन्द की कहानियों में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है – स्पष्ट कीजिए।

3. प्रेमचन्द की कहानियों का प्रारम्भ हुआ है – स्पष्ट कीजिए।

4. प्रेमचन्द के कहानियों के विकास पर प्रकाश डालें।

11.9 पठनीय पुस्तके

1. कफन : एक पुनः पाठ – सं पल्लव
2. प्रेमचन्द : एक विवेचन – डॉ. इन्द्रनाथ मदान
3. कहानीकार प्रेमचन्द रचनादृष्टि और रचना शिल्प – शिवकुमार मिश्र
4. प्रेमचन्द साहित्य में हाशिए का समाज –डॉ शुभ्रा सिंह
5. प्रेमचन्द – सं. सत्येन्द्र
6. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रज़ा

***

निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना

12.0 रुपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 निधारित कहानियों की मूल संवेदना

12.3.1 'पंच परमेश्वर' कहानी की मूल संवेदना

12.3.2 'बूढ़ी काकी' कहानी की मूल संवेदना

12.3.3 'ईदगाह' कहानी की मूल संवेदना

12.3.4 'नमक का दरोगा' कहानी की मूल संवेदना

12.3.5 'कफ़न' कहानी की मूल संवेदना

12.3.6 'पूस की रात' कहानी की मूल संवेदना

12.3.7 'नशा' कहानी की मूल संवेदन।

12.3.8 'ठाकुर का कुआँ' कहानी की मूल संवेदना

12.4 निष्कर्ष

12.5 कठिन शब्द

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.7 पठनीय पुस्तकें

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रेमचन्द की आठ कहानियों के मूल भाव से परिचित हो सकेंगे।

– कहानीकार के रुप में प्रेमचन्द के आदर्शवादी एवं यथार्थवादी विचारधारा को समझेंगे।

– प्रेमचन्द ने जीवन में जो भोगा, जो समाज में देखा, उसे निष्कपटता के साथ लेखनी के माध्यम से पाठक वर्ग के सामने लाया।

12.2 प्रस्तावना

सरल शब्दों में किसी के सुख–दुख की समान अनुभूति करना संवेदना है किन्तु साहित्य में किसी रचना की मूल संवेदना से तात्पर्य उसकी विषय–वस्तु व उद्देश्य से है। कहानी की केन्द्रीय विषय–वस्तु या कहानी में कहानीकार किन्न–किन्न मूल भावों को व्यक्त कर रहा है वही कहानी की मूल संवेदना होती है। प्रेमचन्द की बात करें तो इन्होंने अपनी कहानियों में संवेदना के विविध रूपों को दर्शाया है। अर्थात् अपने भावबोध के माध्यम से कहानियों में समाज व व्यक्ति से सम्बधित समस्त छोटी–बड़ी संवेदनाओं को साकार रूप देने का प्रयास किया है।

12.3 निधारित कहानियों की मूल संवेदना

प्रेमचन्द की कहानियों के केन्द्रीय विषय में भारतीय मूल्यों व जीवन तथा विशेष रूप से निम्न मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं को बहुत सरलता एवं मार्मिकता से व्यक्त किया है। उन्होंने अधिकांश कहानियों में संवेदना को उजागर करने हेतु आर्थिक विषमता का वर्णन किया है।

12.3.1 'पंच परमेश्वर' कहानी की मूल संवेदना

मुंशी प्रेमचन्द ने मूलतः अपने देखे –परखे व अनुभूत किए ग्रामीण परिवेश को ही साहित्य में चित्रित किया है। इनके द्वारा सन 1916 में रचित 'पंच परमेश्वर' कहानी भी ग्रामीण परिवेश को चित्रित करती संवेदना के विविध बिंदुओं को उभारती है

यह कहानी 'जुम्मन शेख' और 'अलगू चौधरी' दो मित्रों की मित्रता व शत्रुता को पृष्ठभूमि बनकर पौराणिक ग्रामीण न्याय व्यवस्था को चित्रित करते हुए पंचायत में पंच के पद की मर्यादा, गरिमा और प्रतिष्ठा सिद्ध करने का प्रयास करती है।

कहानी के आरम्भ में ही संवेदना का जो पहला बिन्दु उभरकर सामने आया है, वह है मानव द्वारा धर्म व जाति से ऊपर उठकर आपसी सद्भाव एवं भाईचारे की भावना को कायम रखना। कहानी में 'जुम्मन शेख' मुस्लिम है तो 'अल्गू चौधरी' हिन्दू, किन्तु दोनों के मध्य मित्रता इतनी है कि दोनों घर से बाहर जाने पर एक–दूसरे को अपने घर की देखरेख सौंप जाते। जहाँ तक की खेती और कुछ लेन–देन भी साझा था। अलग–अलग धर्मों के होते हुए भी उनकी मित्रता गहरी थी किन्तु एक घटना ऐसी घटित होती है कि दोनों के मध्य शत्रुतता की भावना उत्पन्न हो

जाती है। यह घटना जुम्मन द्वारा बूढ़ी खाला की सम्पत्ति अपने नाम होने के पश्चात उनकी देख–रेख न करने पर खाला द्वारा पंचायत बुलाना और अलगू द्वारा जुम्मन के हित में फैसला न सुनना थी। जुम्मन को विश्वास था कि अलगू तो मेरा मित्र है वह तो कभी मेरे विपरित फैसला नहीं सुनाएगा। जुम्मन का ऐसा सोचना गलत भी नहीं था क्योंकि खाला द्वारा अलगू को जब पंच का प्रस्तात दिया गया तो उसने मित्रता का हवाला देकर ही पंच बनने से इंकार किया था। अलगू के इंकार करने पर खाला उसे मानवीय कर्त्तव्य बोध करवाती है– "बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।" खाला द्वारा कहे यह शब्द जहाँ अलगू को अपने मानवीय कर्त्तव्य को प्रमुखता देने हेतु विवश करते हैं वहीं पंच पद की मर्यादा तथा ग्रामीणओं का पंच पर अटूट विश्वास भी व्यक्त करते हैं।

इस कहानी में मूल रूप से यह भाव स्पष्ट हुआ है कि पंच पद पर आसीन व्यक्ति न तो किसी का मित्र होता है, न किसी का दुश्मन। वह मात्र न्याय का साथ दे तथा अन्याय, को सजा देने वाला होता है। इसलिए पंच के निर्णय को ईश्वर का निर्णय स्वीकार किया जाता है। अलगू जुम्मन का मित्र था लेकिन उसका निर्णय निष्पक्ष खाला के हित में होता है चाहे इसके प्रतिदान में उसे जुम्मन की द्वेष भावना को क्यों न सहना पड़ा। मूलतः देखने को मिलता है कि द्वेष या बदले की भावना रखने वाला व्यक्ति अवसर की तलाश में रहता है कि वह कब अपना प्रतिशोध ले सके। जैसे इस कहानी में जुम्मन के भीतर प्रतिशोध की भावना प्रबल थी। सौभाग्य से अलगू और समझू साहू के मामले में जुम्मन को यह अवसर भी मिला की वह अलगू से अपना प्रतिशोध ले सके। बदले की भावना होने के उपरान्त भी जुम्मन निर्दोष अलगू के विपरीत फैसला नहीं लेता, क्योंकि अलगू के हित में निर्णय लेकर उसने न्याय का साथ दिया और समझू साहू को दोषी मानते हुए उसे सजा दी। ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि पंच बनने पर जुम्मन के मन में जिम्मेवारी का भाव पैदा होता है और उसके भीतर से बदले की भावना मिट जाती है। उस समय जुम्मन सोचता है, "मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश है और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नहीं।" जुम्मन के न्यायपूर्ण निर्णय से वहां उपस्थित समस्त लोग प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसंता का करण जुम्मन का अपनी द्वेष भावना को भूल युक्ति संगत न्याय कर पंच पद की गरिमा, मर्यादा एवं प्रतिष्ठा को बनाए रखना है। स्वयं पंच बनने के उपरान्त जुम्मन को यह अनुभव भी हुआ कि अलगू के प्रति द्वेष भावना रखना उसकी गलती थी क्योंकि अब वह भली–भाँति इस सत्य से अवगत हो चुका था कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का मित्र है न शत्रु। न्याय के सिवा उसे कुछ नहीं सूझता। जुम्मन के परिवर्तित हृदय को देखकर अलगू भी भावुक हो उठता है। दोनों की आँखों से बहते आँसु उनकी मन की मैल को साफ कर देते हैं जिससे उनकी मित्रता की मुरझाई लता पुनः हरी हो जाती है। अतः अलगू तथा जुम्मन द्वारा पंच वन न्याय पूर्ण निर्णय करने में पंच न्याय व्यवस्था की सार्थकता का मूल भाव निहित है।

यह कहानी पंचायत व्यवस्था की गरिमा को प्रतिष्ठित करने के साथ –साथ कुछ अन्य संवेदनशील पक्षों को भी उभारती है जैसे – जुम्मन का बुढ़ी खाला की सम्पत्ति पर अधिकार स्थापित कर उनके प्रति अपने दायित्व को भूल पूर्ण रूप से स्वार्थी प्रवृत्ति को अपनाना हमारे समक्ष वृद्ध जीवन की विवशता को प्रकट करता है। वृद्ध अवस्था में व्यक्ति

को अत्याधिक प्रेम और देख–रेख की आवश्यकता होती है। ऐसे में वृद्धों को उपेक्षा मिले तो उनका जीवन पूर्ण रूप से निराशा तथा अलगाव से भर जाता है। इस कहानी मे पंच न्यायानुसार वृद्ध के प्रति जुम्मन को अपने दायित्व निर्वाह करने की हिदायत दी जाती है साथ ही खाला की इच्छानुसार मासिक पैसे देने का आदेश भी जुम्मन को दिया जाता है। पंच का यह न्याय समाज में वृद्ध उपेक्षा की समस्या का समाधान सुनिश्चित करता है।

कहानी में एक अन्य तथ्य समझू साहू द्वारा अलगू से खरीदे गए बैल के साथ अमानवीय व्यवहार करने में सामने आता है। समझू एक ऐसे स्वार्थ व्यापारी का प्रतिनिधित्व कर रहा है जिसके लिए मात्र अपना हित महत्त्व रखता है। उसके हित से अन्य के साथ जो अहित हो रहा है उसकी चिंता उसे नहीं होती । कहानी में समझू की संवेदनशून्यता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है– ''समझू साहू ने नया बैल पाया, तो लगे उसे रगेदने। वह दिन में तीन–तीन, चार–चार खेपे करने लगे। न चारे की फिक्र थी, न पानी की बस खेपो से काम था।... बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया।'' बैल समझू की निर्दयता के आगे अन्ततः अपनी जान गवा बैठता है। इस घटना से व्यापारी व्यक्ति की स्वार्थी बुद्धि स्पष्ट होती है जिसके लिए उसका हित ही सर्वोपरि है।

समझू द्वारा बैल से अत्याधिक काम लेने के कारण जब बैल की मृत्यु हो जाती है तब भी उसे अपनी संवेदनाशून्यता का अहसास नहीं होता। वह तो उल्टा बैल को दोष देते हुए यही कहता है कि "मरना ही था, तो घर पहुँच कर मरता। ससुरा बीच रास्ते ही मर रहा! अब गाड़ी कौन खींचे?'' समझू की यह सोच यह स्पष्ट करती है कि स्वार्थ के कारण उसके भीतर की मनुष्यता समाप्त हो गई है। वह जानवर के प्रति ही नहीं व्यक्ति के प्रति भी उतना ही अमानवीय है क्योंकि बैल के मरने के उपरान्त वह अलगू को यही कहकर बैल का दाम नहीं देता कि उसने ही ऐसा मरा हुआ बैल बेचा जिसके कारण उनकी सारी कमाई का सत्यानाश हो गया। मनुष्य चाहे कितना भी निर्दयी क्यों न हो ईश्वर उसके कर्मो का फल अवश्य देता है। पचायत मे समझू को अलगू के पैसे देने का आदेश दिया जाना ईश्वर के न्याय को स्पष्ट करता है!

इस प्रकार यह कहानी मूल भाव से पंच व्यवस्था की सत्यता को प्रतिष्ठित करती है। इस कहानी को पढ़कर पंच–पद के प्रति आस्था और विश्वास के भाव प्रकट होते है।

12.3.2 'बुढ़ी काकी' कहानी की मूल संवेदना

'बूढ़ी काकी' प्रेमचन्द द्वारा रचित विशुद्ध भारतीय जीवन– व्यवहार की एक मार्मिक कहानी है। एक सामान्य खाते–पीते ग्रामीण परिवार के जीवन–व्यवहार के माध्यम से प्रेमचन्द ने कहानी की केन्द्रीय संवेदना के रूप में एक ऐसे पहलू को उजागर किया है, जो उस परिवार की सीमा लांघकर अनेक गाँवों व नगर–महानगर की परिधि के लाखों परिवारों की मानसिकता को स्वयं में समेट लेता है। मूल संवेदना के रूप में इस कहानी में वृद्धत्व को रेखांकित किया गया है। लेखक ने बूढ़ी काकी के साथ होने वाले जिस उपेक्षापूर्ण व्यवहार को दर्शाया है, वह अकेला काकी के साथ ही नहीं है अपितु समाज में ऐसे कितने ही वृद्ध हैं जिन्हें बुद्धिराम जैसे लालची लोग मीठी–मीठी बातों से बहला–फुसलाकर तथा झूठे वादे कर बूढ़ों से उनकी सम्पत्ति आपके नाम लिखवा लेते हैं लेकिन सम्पत्ति अपने हाथ

आते ही वृद्धों के प्रति उपेक्षित व्यवहार कर उनका निरादर करते हैं।

कहानी में एक प्रसंग – विशेष है जिसके भीतर ही कहानी अपने पूरे त्रासद प्रभाव के साथ सामने आती है। कहानी के आरम्भ में ही प्रेमचन्द मानव जीवन की वृद्धावस्था और बाल्यावस्था को एक दृष्टि से देखते हुए कहते हैं, ''बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है'' उनका यह भी कहना है कि बुढ़ापे में सारी इन्द्रियाँ शिथिल होकर महज एक वृत्ति पर केन्द्रित हो जाती हैं। बूढ़ी काकी के संदर्भ में इस वृत्ति का संबंध उन्होंने उनके चटोरपन को माना है। आँखों से अंधी, कानों से बहरी, एकमात्र उनकी स्वादेन्द्रिय सक्रिय थी। इच्छानुकूल, तृप्ति–भर भोजन न पाने पर वे मात्र गला फाड़ कर रोती थीं। बच्चों द्वारा परेशान किए जाने पर उन्हें गालियों देतीं। वैसे चुपचाप कोठरी में पड़े रहना ही उनकी दिनचर्या थी। प्रेमचन्द काकी के अतीत के विषय में भी बताते हैं कि उनका जीवन क्लेशकर ही रहा। एक के बाद एक जवान बेटों को खोती हुई अंततः वह पति को खोने के पश्चात् अपने भतीजे पं॰ बुद्धिराम के आश्रय में थीं। दो–ढ़ाई सौ रुपयों की वार्षिक आमदनी वाली अपनी समस्त ज़मीन – जायदाद भतीजे बुद्धिराम के नाम लिखकर वे अपने बुढ़ापे के प्रति आश्वस्त होती है लेकिन बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा का व्यवहार काकी के प्रति अत्यधिक कठोर होता है। जहाँ तक की बुद्धिराम के दोनों बेटों का व्यवहार भी काकी के प्रति उपेक्षित ही रहा। दोनों उन्हें परेशान करके खुश होते, कई बार अपने मुंह का पानी काकी के ऊपर उड़ेल देते। दोनों बच्चों का उपेक्षित व्यवहार चित्रित कर जहां प्रेमचन्द इस बात की ओर संकेत करते हैं कि यदि माता–पिता वृद्धों का सम्मान न करें तो संतान भी वृद्धों का सम्मान न कर उनका अपमान करती है। इसलिए माता–पिता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह कैसे मूल्यों को संतान के समक्ष स्थापित कर रहे हैं। उस पूरे परिवार में मात्र बुद्धिराम की छोटी लड़की लाड़ली थी जो काकी के प्रति संवेदनशील है। कहानी में परिवार के व्यवहारिक परिवेश का वर्णन करने के अनंतर ही वह विशिष्ट प्रसंग उदघाटित होता है, जो बूढ़ी काकी कहानी की मूल संवेदना वृद्धों की दयनीय स्थिति को उजागर करता है।

वह प्रसंग है, पं० बुदिराम के लड़के का तिलक–समारोह घर में कई मेहमानों को दावत, ऐसे में अपनी कोठरी में बेठी बूढ़ी काकी की मनोभूमि को प्रेमचन्द बहुत विशद रूप में सामने लाते हैं। – मसालों की महक, पूड़ियों की सुगंध, दही रायते का स्वाद, बूढ़ी काकी की आकुल प्रतीक्षा, धैर्य टूटने पर उनका उकड़ूँ रेंगते हुए पूड़ियों के कड़ाह तक पहुँचना और रूपा का उग्ररूप, काकी के साथ किया गया उसका अमानवीय व्यवहार। रूपा के मुख से काकी के लिए निकला प्रत्येक अपशब्द मानो प्रेमचन्द ने वास्तविक जीवन के किसी ऐसे ही त्रासद प्रसंग में बोलने वाले के मुँह से कागज़ पर उतार दिया हो। इतना ही नहीं काकी का पश्चाताप, अपने उपर ही खीझना, अपमान का दंश भूल पुनः दावत की कल्पनाओं में खो जाना। तृष्णा का एक बार फिर बलवती होना, उकड़ू रेंगते हुए पुनः उस पंक्ति में बैठ जाना जहाँ मेहमान खाना खा रहे थे। इस बार पं० बुद्धिराम का रौद्र रूप और काकी को घसीटते हुए उनकी कोठरी में आना, अपशब्दो और अपमान से आहत काकी का संज्ञा विहीन होना। दंड–स्वरूप पति–पत्नी का काकी को भोजन न देने का निर्णय, यह पूरा प्रसंग रूपा और बुद्धिराम के अमानुषिक व्यवहार को स्पष्ट करने के साथ ही बुढ़ापे के यथार्थ से जुड़ी त्रासदी को अपने पूरे उत्कर्ष में त्रास और करुणा की सम्मिलित अनुभूतियों के साथ मूर्तिमान करता

है। विडंबना तो यह है कि यह सब जिसके साथ घटित होता है। उसका अपमान करने वाले यह नहीं सोचते कि उन्होंने आज जो हैसियत पाई है वह उसी बूढ़ी काकी से पाई संपत्ति का परिणाम है।

कहानी में काकी की और भी दियनीय स्थिति तब उजागर होती है जब लाड़ली माँ से छिपकर रात को चुपके से अपने हिस्से की पूड़ियाँ काकी को कोठरी में जाकर खिलाती है। सारे अपमान को भूल काकी का पूड़ियों पर टूट पड़ना और अंततः अपनी तृष्णा को उस बिंदु पर ले जाना जो कहानी का सबसे मार्मिक बिंदु है। लाड़ली की सहायता से काकी का उस स्थान पर पहुँचना, जहाँ लोगों की खाई हुई जूठी पत्तले पड़ी थी। उन पत्तलों से काकी का लोगों की जूठन को पूरे स्वाद के साथ खाना विवशता की पराकाष्ठा है। त्रासदी की इस पराकाष्ठा को देख रूपा का हृदय सन्न रह जाता है। आत्मग्लानि एवं पश्चाताप से भर वह यही सोचती है कि एक ब्राह्मणी हमारे कारण लोगों की जुठी पत्तलें चाटने को विवश हुई, इसके लिए भगवान हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे। अपने अपराध की क्षमा मांगते हुए रूपा कमरे में जाती है और पकवान तथा मिठाई का थाल सजाकर काकी के समक्ष रखकर उनसे आग्रह करती है कि वे ईश्वर से प्रार्थना करें कि वे हमारे अपराध को क्षमा कर दें। काकी बच्चों की भाँति सब भूल खाना खाती है, उनके प्रत्येक रोएँ से सच्ची सदिच्छाएं निकल रही थी और रूपा इस स्वर्गीय दृश्य को देख आनंद का अनुभव करती है।

रूपा के हृदय–परिवर्तन के मूल में उसका सात्विक अपराध – बोध हो अथवा उसकी धर्म भीरूता से उपजी परिवार के संभावित विनाश की आशंका किन्तु जिन स्थितियों में, काकी को जूठी पत्तले चाटते देख, रूपा का हृदय–परिवर्तन होता है, वह स्वाभाविक लगता है। यह एक साधारण स्त्री पर, अपने अमानवीर आचार के अहसास से उपजा हृदय–परिवर्तन है।

अतः यह कहानी वृद्ध समस्या को प्रभावी ढंग से उठाती है, काकी की दुर्दशा को देख मानवीय हृदय न केवल करुणा व सहानुभूति से भर उठता है अपितु आत्मचिन्तन के लिए बाध्य भी होता है। लाड़ली की काकी के प्रति संवेदना युवा वर्ग द्वारा वृद्धों का सम्मान की ओर संकेत करती है तथा रुपा का हृदय परिवर्तन समाज में स्वस्थ मानसिकता का विकास करता है।

12.3.3 'ईदगाह' कहानी की मूल संवेदना

'ईदगाह' प्रेमचंद द्वारा रचित अत्यंत संवेदनशील कहानियों में से एक है। यह कहानी चार–पाँच साल के बच्चे हामिद की बाल – सुलभ आकांक्षाओं, कल्पनाओं, आशाओं, जिज्ञासाओं से गुजरती हुई एक ऐसे क्षण तक पहुँचती है जहाँ वह बालक अपनी समस्त बाल–सुलभ क्रियों को छोड़कर प्रेम और त्याग का परिचय देते हुए पाठक की आँखों को नम करता है।

यह कहानी छोटी–सी उम्र में अभावग्रस्तता के कारण हामिद में आई परिपक्वता एवं संवेदनशीलता को दर्शाती है। माता–पिता की असमय मृत्यु तथा निर्धनता ने हामिद को हमउम्र बच्चों से अधिक समझदार बना दिया है। हामिद के जीवन में दादी अमीना के अतिरिक्त कोई नहीं है। अमीना के पास कपड़े सिलकर अपना और हामिद का

पेट भरने के अलावा आमदनी का कोई जरिया नहीं है। इसलिए ईद के त्यौहार पर जहां दूसरे घरो के लोग खुशियाँ मना रहे हैं वहीं अमीना के लिए ईद चिंताओं का पहाड़ लेकर आई है। अमीना के पास मात्र आठ पैसे हैं जिनमें से पाँच पैसे घर के लिए रखकर शेष तीन पैसे वह हामिद को देकर मेले में भेजती है। अपनी आर्थिक अभावग्रस्तता के कारण ही वह ईद को कोसती है। चूंकि ईद खुशी का दिन है लेकिन दादी अमीना यही सोचती है कि, "....किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं है।" अमीना का ईद को इस प्रकार कोसना इस बात को स्पष्ट करता है कि धन के अभाव में त्यौहार खुशी नहीं दुख व चिंताओं को लेकर आते हैं तथा त्यौहार पर वही प्रसन्न हो सकता है जिसके पास पैसे है। अन्यथा गरीब के लिए प्रसन्नता क्या उस त्यौहार की रीतियों को ही पूरा करना एक बहुत बड़ा प्रश्न बन जाता है जैसे "अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं।" अमीना की चिंताओं की कोई सीमा नहीं है। वह यह भी सोच रही है कि अन्य बच्चों के साथ तो उसके पिता मेले में जा रहे हैं लेकिन हामिद अकेला कैसे जाएगा? वह मेले में हामिद की देखरेख को लेकर चिंतित भी है और उसके उत्साह को भी रौंदना नहीं चाहती। यदि उसके पास पैसे होते तो वह हामिद के साथ मेले में उसका सुरक्षा कवच बनकर जाती और आते समय सारी सामग्री एकत्रित करके ले आती लेकिन उसे तो माँगने भर का सहारा था ऐसे में हामिद के साथ वह नहीं जा पाती। अपनी आठ पैसे की पूंजी में से पाँच वह घर खर्च के लिए रख कर तीन पैसे हामिद को मेला देखने के लिए देती है। अमीना की यह प्रतिक्रिया जहाँ हामिद के प्रति उसकी संवेदनशीलता व ममता का परिचय देती है वहीं उसकी आर्थिक विवशता को भी उजागर करती है।

गरीब के बच्चे प्रायः हालात और घर के बड़े बुजुर्गों की सोहबत में सामान्य बच्चों की तुलना में अधिक समझदार और दुनियादार हो जाते हैं। इस तथ्य को हम हामिद के चरित्र में फलीभूत होते देखते हैं। क्योंकि उसकी उम्र के बच्चे खिलौने व मिठाई के लिए रोते तथा जिद्द करते हैं किन्तु हामिद उनकी निन्दा करता है," मिट्टी ही के तो हैं, गिरे तो चकनाचूर हो जायें।' लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है।' इच्छा होते हुई भी खिलौनों की निन्दा करना स्पष्ट करता है कि उस गरीब बच्चे के मन–मस्तिष्क पर अपनी इच्छाओं से अधिक दादी की गरीबी हावी है। अर्थिक अभाव के चलते एक बच्चा किस हद तक समझदार हो चुका है इसका प्रबल उदहारण कहानी में उस समय मिलता है जब हामिद अपने तीन पैसों से खिलौने व मिठाई न लेकर लौहे का चिमटा खरीदता है क्योंकि एक गरीब बच्चे के लिए खिलौने तथा मिठाई उतनी आवश्यक नही जितना वह लोहे का चिमटा है। सद्भाव तथा दादी के ख्याल ने ही उसे चिमटा लेने को विवश किया है। हामिद का यह कार्य दादी के प्रति उसके स्नेह को तो व्यक्त करता ही है साथ ही सामाजिक व्यवस्था की हीनता भी सामने लाता है क्योंकि इसी व्यवस्था के कारण दादी को बुढ़ापे में कड़ी मेहनत करने के उपरान्त भी आर्थिक अभाव का सामना करना पड़ता है। इन्हीं अभावों ने हामिद को विवश किया कि वह खिलौने आदि की निन्दा कर चिमटा खरीदे। हामिद खुश था कि उसकी दादी चिमटा देखकर उसकी समझदारी पर प्रसन्न होगी, किन्तु दादी की प्रतिक्रिया उसकी सोच से विपरीत होती है। वह चिमटा देखकर हामिद पर क्रोधित होती है कि उसने पूरे दिन भर बिन कुछ खाए–पीए यह चिमटा ले आया। दादी का यह क्रोध भी हामिद के प्रति उसकी चिंता का ही एक रूप है। दादी के क्रोधित होने पर हामिद जब अपराधी भाव से कहता है कि,

"तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थी, इसलिए मैंने इसे ले लिया।" तब अमीना का क्रोध तुरंत स्नेह में परिवर्तित हो गया। वह मूक अश्रु बहाते हुए मन–ही–मन यह सोच रही है कि इस छोटे से बालक में कितना त्याग, सद्भाव और विवेक है। अन्य बच्चों को खिलौने लेते व मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा। इसने अपने मन पर कितना सयंम रखकर मात्र अपनी बुढ़ी दादी को याद रखा। दादी का बच्चों की भाँति रोते हुए हामिद को गले लगाना व दुआएँ देना पाठक को दादी की आर्थिक–विषमता का बोध करवाने के साथ–साथ अत्यन्त भावुक भी करता है। बालक का प्रौढ़ व्यवहार पाठक को भी यह सोचने पर भी विवश करता है कि किस प्रकार आर्थिक अभाव में जी रहे बच्चे अपने बचपन को खो देते हैं। अतः इस कहानी की मूल संवेदना दरिद्रता व आर्थिक–विषमता की कथा व्यक्त करना है। इसमें मार्मिकता का पुट पूर्ण कथा की संवेदना को सफल अभिव्यक्ति देता है।

12.3.4 'नमक का दरोगा' कहानी की मूल संवेदना

'नमक का दरोगा' कहानी की मूल संवेदना वर्तमान समाज तथा शासन–प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को उजागर कर कर्त्तव्यनिष्ठ समाज का निर्माण करना है। समाज के सुधार संबंधी आदर्शों की स्थापना इस कहानी में युगीन परिस्थितियों की विषमताओं का अंकन करते हुए की गई है। समाज में मध्य वर्ग के लिए अनुचित साधनों से अर्थ की प्राप्ति जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राथमिकता हो चुकी है।

कहानी के आरम्भ में प्रेमचन्द अंग्रेज सरकार द्वारा बनाएं नमक कानून के पश्चात नमक विभाग की वास्तविकता को सामने लाते हुए कहते हैं – "जब नमाक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यवहार करने करने लगे। अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों का सूत्रपात हुआ। कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ–बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा–पद के लिए तो वकीलों का मन भी ललचाता था ..." यह भूमिका इस उद्देश्य से आवश्यक थी क्योंकि प्रेमचन्द अपने केन्द्रीय पात्र वंशीधर को सही परिप्रेक्ष्य में पाठकों के सामने ला सके। वंशीधर भ्रष्ट समाज व्यवस्था में एक ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस काहानी में प्रेमचन्द ने संवेदना के विविध रूपों को व्यक्त किया है जैसे – मध्यवर्ग मानसिकता और उसका अंतर्विरोध, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता तथा सत्यचरित्र व्यक्ति का महत्व। कहानी में मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता को प्रेमचन्द ने बहुत ही मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। वंशीधर के पिता का कहना है, "बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। न मालूम कब गिर पड़ूँ।" वंशीधर के पिता द्वारा करे ये शब्द, एक तरफ निम्न मध्यवर्गीय आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करते हैं तो दूसरी तरफ मध्यवर्गीय मानसिकता में आए अंतर्विरोध के कारण की ओर भी संकेत करते हैं। वंशीधर चाहे नैतिक मूल्यों के प्रबल समर्थक थे किन्तु नौकरी की तलाश में जब वह घर से बाहर निकलता है तो पिता की यही शिक्षा थी, "ऐसा काम ढूँढ़ना, जहाँ कुछ उपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखायी देता है और घटते–घटते लुप्त हो जाता है। उपरी आय बहता हुआ स्त्रोत है, जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती है। उपरी आमदनी ईश्वर देता

है, इसी से उसकी बरकत होती है", पिता की यह शिक्षा सीधे–सीधे बेटे को रिश्वत लेने की ओर मोड़ रही है, लेकिन प्रेमचन्द ने इस शिक्षा पर वंशीधर को अमल करते नहीं दिखाया है, वह वंशीधर को इस सीख का उललंघन करते चित्रित करते हैं। जबकि वंशीधर को ऐसे विभाग में दरोगा की नौकरी मिली यहाँ उपरी आय का बहता हुआ स्रोत था, किन्तु फिर भी वह इस सुनहरे अवसर को ठुकराकर ईमानदारी की राह पर चल कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय देता है।

आज जबकि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त है, ऐसे में ईमानदार व्यक्ति को मात्र समाज की अवहेलना व प्रताड़ना ही नहीं सहनी पड़ती बल्कि उसका परिवार भी उसकी ईमानदारी से नाखुश होता है जिसके चलते उसे परिवार व समाज में उपेक्षित जीवन जीने पर विवश होना पड़ता है। कहानी में वंशीधर नमक विभाग में इमानदार दरोगा पद पर आसीन तो थे लेकिन भष्ट्र समाज में ईमानदार के साथ न्याय कैसे संभव है, इसलिए वंशीधर प्रतिष्ठित जमींदार पंडित आलोपीन को नमक की कालाबाजारी के चलते हिरासत में तो ले लेते हैं किन्तु धन के बल पर आलोपीदीन बरी हो जाते हैं तथा वंशीधर को अपनी ईमानदारी का पुरस्कार मिलता है– नौकरी से निलम्बन के रूप में। प्रेमचन्द वंशीधर को अदालत में हारते हुए दिखाकर वर्तमान भ्रष्ट प्रशासन तन्त्र को सामने लाते है। इस घटना से वह यह सत्य सामने लाते हैं कि इस भ्रष्ट समाज में जीत ईमानदार व्यक्ति की नहीं अपितु धनवान व्यक्ति की होती है। ईमानदार व्यक्ति को तो परिवार भी दोषी की ठहराता है। कहानी में इसका साक्ष्य वंशीधर के परिवार की प्रतिक्रिया से देख सकते है– "....जब मुंशी वंशीधर इस दुरावस्था में घर पहुंचे और बूढ़े पिताजी ने समाचार सुना तो सिर पीट लिया। बोले जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूँ। ... वृद्धा माता को भी दुःख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर की यात्रा की कामनाएँ मिट्टी में मिल गयी। पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे मुँह से बात भी नही की।" वंशीधर के परिवार की यह असंवेदनशील प्रतिक्रिया मध्यवर्ग की मानसिकता और उसके अंतर्विरोध को उजागर करती है। जिससे हमें यह ज्ञात होता है कि यदि मध्यवर्ग में नैतिक मूल्यों का समर्थन मिलता है तो उन नैतिका मूल्यों को वह स्वयं तोड़ते भी हैं, चाहे इसके पीछे उनकी आर्थिक विषमता की स्थिति ही क्यों न हो। अर्थात यहाँ एक ही परिवार से नैतिक मूल्यो की रक्षा भी मिलती है और उनका विघटन भी। साथ ही यहाँ तक हम कहानी में धर्म पर धन की विजय स्वीकार करते हैं। किन्तु यहीं से कहानी में एक नाटकीय मोड़ आता है जब पंडित आलोपीन, वंशीधर के घर पहुंचकर उसकी ईमानदारी से स्वयं को परास्त स्वीकार करते हैं। आलोपीदीन का कहना था, "उस रात को आपने अपने अधिकार बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था किन्तु आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हज़ारों रईस और अमीर देखे, हज़ारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किन्तु परास्त किया तो आपने।" यहां आलोपीदीन का परिवर्तित रूप देख यह भाव उभर कर सामने आता है कि ईमानदारी का फल चाहे विषम परिस्थितियों का सामना करना ही क्यों न हो, पर जीत हमेशा धर्म की होती है। अर्थात धन से आप सब खरीद सकते हो, पर ईनामदार व्यक्ति से ईमानदारी नहीं।

कहानी का अंत यहीं होता तो कहानी आदर्श की स्थापना करती, किन्तु कथा आगे बढ़ती है आलोपीदीन द्वारा वंशीधर को अपनी समस्त संपत्ति का स्थायी मैनेजर नियुक्त करने के प्रस्ताव पत्र से। आलोपीदीन का यह प्रस्ताव इस सत्य को सामने लाता है कि भ्रष्ट व्यक्ति को भी ईमानदार व्यक्ति की आवश्यकता होती है। इस प्रस्तात में

आलोपीदीन ने वंशीधर को छह हजार वार्षिक वेतन के साथ–साथ समस्त सुख–सुविधा प्रदान करने का वादा किया। इस प्रस्ताव पत्र को पढ़कर कृतज्ञता से वंशीधर की आँखों में आंसू आ गए और आत्मग्लानि के साथ कुछ सकुचाते हुए इस प्रस्ताव को स्वीकार कर धनवान आलोपीदान के नौकर बन जाते हैं। यह मध्यवर्गी मानसिकता के विरोधावास का सटीक उदाहरण है। जहाँ ईमानदारी की दुहाई देने वाला स्वयं बेईमानी के आगे नतमस्तक हो जाता है। भ्रष्ट आलोपीदीन द्वारा ईमानदार वंशीधर को अपना मैंनेजर नियुक्त करवाकर चाहे प्रेमचन्द धन पर धर्म की विजय दिखाना चाहते हो किन्तु वर्तमान में यह कहानी इसी मूल संवेदना को व्यक्त करती प्रासांगिक लगती है कि सामाजिक अर्थव्यवस्था ने नैतिक मूल्यों का विघटन किया है। आज ईमानदारी व योग्यता को भी धन के बल पर खरीदा जा सकता है। आर्थिक विषमता और भष्ट प्रशासनतंत्र के आगे ईमानदार भी अन्ततः अपना सिर झुकाने के लिए विवश है।

12.3.5 'कफन' कहानी की मूल संवेदना

'कफन' सामन्तवादी शोषण का शिकार भूमिहीन किसानों की पीड़ा और अमानवीकरण की भयावह त्रासदी को सामने लाती है।

मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था में घीसू और माधव जैसे व्यक्ति विपन्नता और महंगाई से परम संतुष्ट हैं क्योंकि जिस समाज में वे रहते हैं वह सामन्ती मूल्यों वाला समाज है जिसमें परिश्रम का कोई मूल्य नही अपितु परिश्रम दूसरों के लाभ के लिए किया जाता है। यह सोचकर कि श्रम करना श्रम न करने से किसी भी मायने में बेहतर नहीं। वे श्रम और उसके फल के प्रति लगाव खो बैठते हैं और धीरे–धीरे निकम्मेपन का शिकार हो जाते हैं।

जिस समाज में रात दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा संपन्न थे। वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी हम तो कहेंगे घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था, जो किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की मंडली में जा मिला था, हाँ उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मंडली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे। उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तस्कीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जी तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती। उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेवजह फायदा तो नहीं उठाते।

निकम्मेपन से भले ही घीसू और माधव शीर्षको को अंगूठा दिखा दे किन्तु विडंबना यह है कि भूख के सर्वग्रासी आक्रमण में वे संपूर्ण मानवीय गुणों से वंचित हो जाते हैं। त्रासदी यह है कि उनकी मानवीय चेतना इस हद तक जड़ हो जाती है कि बुधिया की प्रसव संवेदना की पछाड़ और दिल हिला देने वाली चीखों से निरपेक्ष बाप–बेटा चोरी के भुने हुए आलुओ पर टूट पड़ने की फिराक में था। माधव को डर था कि वह कोठरी में गया तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा। बोला मुझे वहाँ जाते डर लगता है।

ओझा को एक रुपया देने की संभावना से भी क्षुब्ध घीसू माधव इस प्रतीक्षा में है कि बुधिया मर जाये तो ये आराम से सोयें और माधव की पत्नी धनाभाव के कारण मर जाती है। उसकी दाह क्रिया के लिए समाज चन्दा के तौर पर पाँच रुपये माधव को देता है। वे दोनों कफन और लकड़ी खरीदने की लिए बाजार जाते हैं। सर्वप्रथम वे निश्चय करते हैं कि चन्दे में लकड़ियों के आ जाने के कारण अब लकड़ी खरीदने की आवश्यकता नहीं। कई बाजारों की दुकानें देखने के पश्चात् वे दोनो अनायास ही मानो किसी दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला में पहुँच जाते हैं। घीसू इस सुख का आनंद लेते हुए कहता है। कफन लगाने से क्या निकलता? आखिर जल ही जाता वह बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निष्पाप का साक्षी बना रहा हो। दुनिया का दस्तूर है, नहीं तो लोग बामनों को हजारों रुपये क्यों देते हैं। कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं। बड़े आदमियों के पास धन है, चाहें तो फेंके। हमारे पास फूंकने को क्या है। लेकिन लोगों को जबाव क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं कफन कहाँ है? घीसू हँसा, अब कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गये। लोगों को विश्वास तो न आयेगा, लेकिन फिर वही रुपये देंगे।

घीसू और माधव के अंतर के नग्नतम यथार्थ का उद्घाटन बेलाग होकर लेखक करता है। न जाने कब के भूखे–प्यासे आशान्वित और दुखी माधव और घीसू अपने पास रुपयों के आते ही एकाएक अपनी सारी झूठी मर्यादाओं, मान्यताओं को भूलकर अपनी आत्मा की यथार्थतम भूमि पर उतर पड़ते हैं। किन्तु यहाँ प्रेमचन्द की खूबी इस नग्न यथार्थ मात्र का उद्घाटन नहीं है और न ही घीसू और माधव के अमानवीय होने की प्रक्रिया का तटस्थ चित्रण है। प्रेमचन्द एक संवेदनशील कलाकार हैं। यहाँ उनके आक्रोश का केन्द्र बिन्दु मनुष्य मन की दुष्प्रवृत्तियाँ और कुरीतियां नहीं हैं। केन्द्र बिन्दु हैं वह कुव्यवस्था जिसके कारण यह सब होता है। विपरीत और विषम परिस्थितियों में श्रमजीवी पिसकर इतना टूट जाता है कि उसका कर्तव्यबोध लुप्त हो जाता है उस पर विडंबना यह है कि वह इस बात के प्रति स्वयं सचेत नहीं होता। क्योंकि उनके पास ये सुख–सुविधायें नहीं है, सामर्थ्य नहीं है कि वे उनमें से कुछ का त्याग कर महानता का अनुभव कर सके। वे जानते हैं कि वे समाज पर निर्भर हैं और उनकी निरीहता और सरलता शोषण को बनाये रखने के लिए अनिवार्य है। ये लोग संख्या में तो बहुत हैं पर वे विचारशून्य समूह के अलावा कुछ भी नही। कारण कि इस सामन्ती समाज में शोषण का तन्त्र इतना कठोर व निर्मम है कि विचारशून्यता उसका अनिवार्य परिणाम है। विचारों से ही मनुष्य, मनुष्य बनता है। और विचारहीन मनुष्य पशु के समान है। यदि इस समाज में असंख्य श्रमजीवी लोगों को मनुष्य की तरह जिन्दा रहने दिया जाता तो उनमें विचार होता और जब विचार होता तो उन्हें यह अहसास होता कि उनका शोषण हो रहा है। तब वे एक होकर स्वाभिमानी मनुष्य की तरह जीवित रहने की कोशिश करते। इन श्रमजीवियों की दुर्दशा देखकर ही घीसू, माधव निकम्मे कामचोर और काहिल हो गये हैं। नैतिकता, प्यार, त्याग, कर्तव्यबोध आदि ऊँचे सामाजिक गुणों से रहित हो गए हैं। या कहें वे समाज के नियम कानून उनके लिए नहीं हैं। उनको मार–मारकर वहाँ खदेड़ दिया गया है जहाँ परावलंबी बनने के लिए वे विवश हैं। मार खाना, गाली सुनना, कर्ज से लदकर भी चिन्तामुक्त रहना उनकी प्रवृत्ति बन गई है। सदियों से घीसू, माधव जैसे व्यक्ति को इस दुर्गति को अंगीकार करने के अभ्यस्त हैं और निरन्तर अभ्यास प्रवृत्ति बन जाती है, संस्कार बन जाता है। इस पर अन्तर्विरोध यह कि इस समाज के विधायकों को शोषण के साथ दया करने का भी अभ्यास है क्योंकि उनकी उच्चता

के अहसास के लिए समाज में ऐसे लोगों का अस्तित्व जरूरी है जिन पर दया माया दिखाई जा सके। सत्ता संपन्न दया कर सकें और दूसरे विपन्न उस दया पर खुशी–खुशी निर्भर कर सकें।

उसका प्रत्यक्ष प्रमाण कहानी में लेखक उस समय देता है जब माधव चिंतित होकर कहता है कि बचवा हो गया तो क्या होगा। उस समय घीसू उसे आश्वासन देता है। सब कुछ हो जायेगा भगवान दें तो। जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कुछ न था, मगर भगवान ने किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया। प्रकट रूप में पनपता दया का यह मानवीय रूप वस्तुतः शोषण का वीभत्स अस्तित्व ही है। कारण कि यह दया शोषण की उच्चता के अहंकार को पुष्ट करती है। उनकी गर्दन को ऊँचाई देती है कि असंख्य लोग उनकी प्रजा हैं। यह समाज इन गुलामों को न ठीक से जीने देता है न ठीक से मरने देता है। क्योंकि उनका जिन्दा रहना उनकी उच्चता बनाये रखने के लिए जरूरी है और ठीक से जीवित रहने देने का मतलब है स्वाभिमान के साथ जीवित रहने का अधिकार देना। जबकि शोषक समाज के लिए मानवीय चेतना व मानवीय स्वाभिमान एक खतरनाक चीज है। इस चेतना को पैदा होने ही न दिया जाये। लोगों की आत्मा को उनके स्वाभिमान को, उनकी मनुष्यता को, इस तरह कुचल डाला जाये कि उनको अहसास ही न हो कि वे मनुष्य हैं।

माधव और उस सरीखे के लोग इतने समर्थ नहीं कि प्रत्यक्षतः इस व्यवस्था का विरोध कर सके, पर अप्रत्यक्षतः प्रतिकार और प्रतिशोध की चेतना ही उन्हें शराबखाने की ओर ले जाती है। वे कफन के पैसों से कफन न खरीद शराब पीकर समाज में इस महान पुण्य की अवहेलना करके मस्ती की दुनिया में डूब जाते हैं। दार्शनिकता की तरंग में वे स्वर्ग–नर्क का विवेचन करते हैं और उनकी अन्तरात्मा की सच्चाई निर्भीक भाव से कह उठती है।

हां बेटा! बैकुण्ठ में जायेगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं, मरते–मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न वैकुण्ठ में जायेगी तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जायेंगे, जो गरीब को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं। यहां है विरोध चेतना की चिंगारी, जो शोषण के पहाड़ के नीचे दबी गरीबों की आत्मा में कहीं धीमे–धीमे सुलग रही है, जो घीसू के मुँह में सच्चाई के रूप से निकलकर चमक उठती हैं। शोषण और अन्याय की राख का पहाड़ इस विरोध की चिंगारी को दबाये हुए है, पहले उसे हटाना पड़ेगा तभी यह अन्यायी व्यवस्था समाप्त हो सकेगी। अन्यथा घीसू माधव की चेतना शराबखाने में धाराशायी होती ही रहेगी।

12.3.6 'पूस की रात' कहानी की मूल संवेदना

पूस की रात प्रेमचंद की यथार्थवादी कहानियों में अग्रणी है। 1930 ई. में रचित यह कहानी प्रेमचन्द द्वारा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के रास्ते को छोड़कर यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपना लेने की घोषणा करती है। यह उस यात्रा की शुरूआत है जो 1936 में कफन कहानी में चरम यथार्थ पर जाकर पूर्ण होती है। किसान वर्ग प्रेमचन्द की चिंताओं में शीर्ष पर है। पूस की रात कहानी उनकी इसी चिंता का प्रतिनिधित्व करती है। कहानीकार ने इसमें किसान के हृदय की वेदना को कागज के पन्ने पर उतारा है।

पूस की रात की मूल समस्या गरीबी की है, बाकी समस्याएँ गरीबी के दुष्चक्र से जुड़ कर ही आई है। जो

किसान राष्ट्र के पूरे सामाजिक जीवन का आधार है उसके पास इतनी ताकत भी नहीं है कि पूस की रात की कड़कती सर्दी से बचने के लिए एक कंबल खरीद सके। दूसरी ओर समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसके पास साधनों की इतनी अधिकता है कि उन्हें वह खर्च भी नहीं कर पाता है। यही है आवारा पूंजीवाद का चरम विकृत रूप जिसकी वजह से समाज में आर्थिक विषमता की दरार दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अर्थव्यवस्था की इसी फूहड़ता एवं विकृति पर यह मार्मिक कहानी व्यंग्य करती है। प्रेमचंद ने सर्दी को प्रतीक के रूप में इन दोनों वर्गों की तुलना दिखाते हुए समाज की कड़वी हकीकत को उकेरा है – "हल्कू ने घुटनियों को गर्दन में चिपकाते हुए कहा – "क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था घर में पुआल पर लेट रह तो यहाँ क्या लेने आये थे। अब खाओ ठण्ड, मैं क्या करूं। मैं यहाँ हलुआ, पूरी खाने आ रहा हूँ दौड़े–दौड़े आगे चले आये ... कल से मत आना मेरे साथ नहीं तो ठंडे हो जाओगे। ... यह खेती का मजा है। और एक भगवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गर्मी से घबड़ाकर भागे मोटे–मोटे गद्दे लिहाफ–कम्मल। मजाल है, जाड़े का गुजर हो जाय। तकदीर की खूबी। मजूरी हम करें मजा दूसरे लूटें।" ये सिर्फ हल्कू की वेदना नहीं है बल्कि भारतीय किसान के हृदय की वेदना है जो आज भी किसी मुक्तिदाता का इन्तजार कर रही है।

हल्कू तो सिर्फ एक माध्यम भर प्रतीत होता है। यह हल्कू की ही नहीं बल्कि हल्कू के माध्यम से कृषिप्रधान देश में रह रहे अरबों लोगों का पेट भरने वाले उस अन्नदाता किसान की हृदयविदारक कथा है जो सूरज के उदय होने से पहले ही खेतों में आ जाता है और अस्त होने के बाद भी खेत की मेड़ पर बैठकर अपने सपनों की फसलों के माध्यम से पूरा करने का अरमान सजा लेता है। लेकिन वह अरमान पूरा कहाँ होता है? एक समस्या से निकले नहीं कि दूसरी आकर सर पे खड़ी हो जाती है, एक भँवर से निकले नहीं कि दूसरा उन्हें अपने चपेटे में ले लेता है। इसी जद्दोजहद में उसकी पूरी उम्र कट जाती है और एक दिन वह इस संसार को हमेशा–हमेशा के लिए छोड़कर अनंत यात्रा पर चला जाता है। वास्तव में पूस की रात में जो दुर्दशा हल्कू की है, वही आजादी के सत्तर साल बाद भी है। किसानों की जो भी आज दिन–हीन दशा है, उसका कारण उनकी सामाजिक–आर्थिक वर्गीय स्थिति है। भारतीय समाज में राजनीति, राजनेता, पूँजीपति, अधिकारी, पटवारी, शासन–सत्ता के तथाकथित एवं स्वघोषित रहनुमाओं का पहला और आखिरी निशाना यही मासूम भारतीय किसान बनता है। महंगाई की मार हो या प्राकृतिक आपदा हो सबसे पहले इसका आसान शिकार किसान ही होता है।

पूस की रात किसान के जीवन संघर्ष की कहानी है। पूस की रात का हल्कू जिन स्थितियों से गुजर रहा है, वे इतनी कठिन हैं कि मरजाद का विचार निरर्थक हो गया है। कहानी का अंत इसी नाटकीय मोड़ पर हुआ है जहाँ हल्कू किसानी छूटने से खुश नजर आता है –

"दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छायी थी, पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा – अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न–मुख से कहा – रात को ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।"

12.3.7 'नशा' कहानी की मूल संवेदना

मुन्शी प्रेमचन्द की कहानी 'नशा' के प्रमुख पात्र दो विद्यार्थी हैं जो एक ही कक्षा में पढ़ते हैं और एक ही होस्टल में रहते हैं। एक छात्र ज़मींदार का अमीर बेटा है और दूसरा बेहद गरीब परिवार का। फिर भी दोनों में गहरी दोस्ती है। गरीब छात्र (बीर) हमेशा ज़मींदारी की कटु आलोचना करता रहता है और उन्हें समाज का शोषण करने वाला बता कर उनके विरुद्ध बोलता है। इस विषय पर अक्सर उनका आपस में विवाद हो जाता है। यों तो ईश्वरी के मिजाज़ में जमींदारी के सारे तेवर हैं, पर बीर के प्रति उसका व्यवहार मित्रों वाला है। बीर द्वारा की गई ज़मींदारों की आलोचना पर भी वह कभी उत्तेजित नहीं होता। एक बार गर्मी की छुट्टियों में ईश्वरी बीर को अपने साथ अपने घर ले जाता है। वह बीर का परिचय ऐसे धनवान के रूप में करवाता है जो कि महात्मा गांधी का भक्त होने के कारण धनवान होते हुए भी निर्धन का सा जीवन व्यतीत करता है। इस परिचय से बीर की धाक जम जाती है, लोग उसे 'गाँधी जी वाले कुंवर साहब' के नाम से जानने लगते हैं। ईश्वरी के साथ बीर का भी भरपूर स्वागत सत्कार किया जाता है।

ईश्वरी तो ज़मींदारी विलास का अभ्यस्त था परन्तु बीर झूठ मूठ में मिली अमीरी का आनन्द महसूस करता है। वह जानता है कि ईश्वरी ने उसका झूठा परिचय कराया है। पर स्वागत सत्कार में अन्धा होकर वह अपना आपा खो बैठता है। उसे नशा हो जाता है। पहले जिन बातों के लिए वह जमींदारों की निन्दा किया करता था जैसे नौकरों से अपने पैर दबवाना, नौकरों से सारे काम करवाना – अब वह स्वयं भी उन आदतों में लिप्त होने लगता है। ईश्वरी चाहे थोड़ा काम अपने आप भी कर ले पर गांधी जी वाले कुंवर साहब नौकरों का काम भला अपने हाथों से कैसे करता? नौकरों से ज़रा भी भूल हो जाती तो कुंवर साहब उन पर आगबबूले हो उठते। इस प्रकार उस गरीब छात्र पर ज़मींदारी का नशा सिर चढ़ कर बोलने लगता है और कल तक जिन ज़मींदारों को समाज का शोषक और दुश्मन बताया करता था आज मौका मिलते ही उन्हीं की तर्ज पर उनसे भी बुरा अत्याचार नौकरों पर करने लगता है। झूठ–मूठ के कुंवर साहब का नशा टूटते देर नहीं लगती। ईश्वरी के घर से लौटते समय रेलगाड़ी खचाखच भरी हुई होती है। अब नए–नवेले कुंवर साहब को ऐसी असुविधा कैसे बर्दाश्त होती? क्रोध में आकर वह अपने पास बैठे एक यात्री की पिटाई कर देते हैं, जिससे पूरे डब्बे में हंगामा मच जाता है। ईश्वरी झल्ला कर बीर को फटकारता है, "व्हाट ऐन ईडियट यू आर, बीर।"

प्रेमचन्द की यह कहानी मनोरंजक तो है ही, इसमें समाज एवं मानव व्यवहार की वास्तविकताओं का भी भरपूर चित्रण है। जिसके पास धन, सत्ता, संसाधन, सुविधा है, वह उनका उपभोग अवश्य करता है। जिसके पास यह नहीं है, वह इस उपभोग की निन्दा करता है, उसको अनैतिक बताता है। और अधिकतर वह निन्दा इसीलिए करता है क्योंकि उसको वह सुविधा उपलब्ध नही है, यदि किसी कारण वह सुविधा उपलब्ध हो जाती है, तो बीर की तरह निन्दक भी उसके उपभोग में पीछे नहीं रहता।

कहानी 'नशा' एक अन्य पहलू की ओर भी संकेत करती है वह है समाज के शीर्षकों तथा सम्मानों के सामने मनुष्य का अन्धापन। 'गांधी जी वाले कुंवर साहब' अपने नशे में एक गरीब आदमी को अपने पास नौकरी देने का आश्वासन दे देते हैं। खुशी में पागल वह आदमी उस रात को शराब पीता है, अपनी पत्नी को पीटता है, और महाजन से लड़ाई करता है। बीर ईश्वरी से उसका असली परिचय न बताने का कारण पूछता है, तो ईश्वरी मुस्कुरा कर जबाव देता है, "इन गधों के सामने यह चाल जरूरी थी, वरना सीधे मुँह बोलते भी नहीं।"

अतः मानव स्वभाव के चितेरे मुंशी प्रेमचन्द की इस कहानी से यही सीख मिलती है कि मौका आने पर व्यक्ति का मूल स्वभाव प्रकट होता है और व्यक्ति की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। अर्थात यह जरूरी नहीं कि गरीब व दबे–कुचले वर्ग से आने वाला व्यक्ति प्रतिष्ठित होने पर उन्हीं लोगों के तौर–तरीके नहीं अपनाएगा जिनकी वह आलोचना करता था।

12.3.8 'ठाकुर का कुआँ' कहानी की मूल संवेदना

प्रेमचन्द द्वारा 'ठाकुर का कुआँ' दलित–जीवन पर आधारित बहु–चर्चित कहानी है। यह कहानी रचनाशिल्प के धरातल पर सामान्य होते हुए भी संवेदना के धरातल पर विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण है। 'ठाकुर का कुआँ' में प्रेमचन्द ने यह दिखाया है कि जाति–प्रथा, ऊँच–नीच के भेदभाव तथा छुआछूत के कारण अछूत कैसा नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

इस कहानी में यह कटू सत्य उद्घाटित होता है कि जीवन की बुनियादी आतश्यकता और प्राकृतिक सम्पदा जल के लिए भी दलित सवर्णो की दया पर निर्भर है। दूसरी तरफ सवर्ण इतने संवेदनाशून्य तथा अमानवीय हैं कि दलित उनके कारण इस प्राकृतिक सम्पदा से भी वंचित रहते हैं। इतना ही नहीं अछूत परिवार को अभाव, अपमान, भयग्रस्त और असुरक्षा का जीवन व्यतीत करने पर विवश होना पड़ता है।

ऐसे देखा जाए तो कहानी बहुत छोटी–सी, एक ही घटना को लेकर चलती है लेकिन वह एक प्रसंग भी पूरी बेधकता और प्रभाव के साथ कहानी में सामने आता है। कहानी के दो अंशों को देखे तो समूचा कथ्य एक बार में ही पूरे इतिहास और वर्तमान के साथ रुपायित होता है। पहला अंश है– अछूत जाति की गंगी अपने बीमार पति जोखू हेतु पानी की तलाश में ठाकुर के कुएं की ओर जाती है क्योंकि दलितों के अपने कुएं का पानी दूषित हो चुका था और साहू का कुआँ गाँव की दूसरी सीमा पर था इसलिए गंगी को आशा थी कि वह रात के अँधेरे में चुपके से ठाकुर के कुएं से पानी भर लाएगी। ठाकुर के कुएँ के पास छिपकर वह अवसर मिलने की आशा में बैठी थी कि उसके मन में सवर्ण लोगों के प्रति विद्रोह उत्पन्न होता है वह मन–ही– मन सोचती है– हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहाँ तो जितने हैं, एक से एक छँटे हैं। चोरी ये करें, जाल–फरेब ये करें, झूठे मुकदमें ये करें.....काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे ? हाँ, मुहँ से हमसे ऊँचे है, हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे। कभी गाँव में आ जाती हूँ तो रस–भरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है; परन्तु धमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं।" गंगी के मन में सुलगता यह विद्रोह जितना निम्न की विवशता और उच्च की वास्तविकता को सामने लाता है वहीं दूसरी तरफ ठाकुर का भय भी इससे कम वास्तविक नहीं। अवसर पाकर गंगी ठकुर के कुएँ में घड़ा डालकर जब भरा घड़ा ऊपर तक खींच, उसे कुँए की जगत पर रखने ही वाली थी कि ठाकुर का दरवाजा खुलता है। उस समय ठाकुर के खुले दरवाजे को प्रेमचन्द ने गंगी के लिए शेर के मुँह भाँति भयानक बताता है–" शेर का मुहँ इससे अधिक भयानक न होगा। गंगी के हाथ से रस्सी छूट गई। रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी में हलकोरे की आवाजे सुनाई देती रही। ठाकुर 'कौन है, कौन है?' पुकारते हुए कुएँ की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत

से कूदकर भागी जा रही थी। घर पहुंचकर देखा कि जोखू लोटा मुँह से लगाए मैला – गन्दा पानी पी रहा है।" गंगी के मन का सारा विद्रोह ठाकुर के भय व आतंक के समक्ष निष्फल हो जाता है। यह भय सदियों से चली आ रही व्यवस्था, उसकी अखण्डता को आहत करने, धर्म शास्त्रों के विधान के विरुद्ध जाने से उपजा संस्कार–जन्य भय है। यह उतना ही यथार्थ है, जितना नरकीय जीवन जी रहे गंगी या दलितों के मन में उत्पन्न विद्रोह का भाव। समय के बहुत हद तक परिवर्तित होने के उपरान्त भी दलित की वास्तविकता इस कहानी से बहतर नहीं है। इस कहानी में प्रेमचन्द गंगी के विद्रोह स्वरूप पानी उपलब्ध करवाकर आदर्श को स्थापित नहीं करते, बल्कि यर्थाथ को अभिव्यक्त करते हुए गंगी के साहस उपरान्त उसे हार का सामना करते चित्रित करते हैं। ठाकुर का कुआँ में यह मात्र कहानी नहीं लिख रहे बल्कि दलित जीवन की वास्तविकता सामने ला रहे है। इस कहानी की मूल संवेदना ही दलित के नरकीय जीवन और स्वर्ण के भय को चित्रित करना है। जिसमे प्रेमचन्द पूर्णतः सफल होते हैं।

गंगी दलित वर्ग की नारी है और उसके द्वारा कुएँ को छूना भयंकर अपराध में शामिल है। गंगी के माध्यम से प्रेमचन्द बताना चाहते हैं कि दलित वर्ग अपमानबोध, असुरक्षा, अनिश्चितता, जातिगत उत्पीड़न का शिकार है, इस वर्ग के मानवीय अधिकारों का हनन हो रहा है, मात्र इसलिए कि वह अछूत है। यह शोषण की पराकाष्ठा ही है कि दलित को एक घड़ा पानी की कीमत अपनी जान गंवाकर चुकानी पड़ सकती है। यह इस समाज की कितनी त्रासदी हैं कि उन्हें दुषित जल पीने के लिए विवश होना पड़ रहा है। अतः इस कहानी की मूल संवेदना हमारे समाज में व्याप्त जातिप्रथा की सबसे घृणित परंपरा छुआछूत के फलस्वरूप तिरस्कार, अपमान व मौलिक अवश्यकताओं से वंचित जीवन व्यतीत कर रहे दलितों की सामाजिक व आर्थिक स्थित को मुखरित करती है।

12.4 निष्कर्ष

प्रेमचन्द की कहानियों में संवेदना के विविध रूपों को चित्रित होते देखा जा सकता है। जैसे–सामाजिक यार्थाथ, किसान, ज़मीदार, अमीर–गरीब, बच्चा–बूढ़ा, शिक्षित–अशिक्षित आदि समस्त समाज पूर्ण संवेदनशीलता के साथ इनकी कहानियों में प्रतिबिंबित होता है। अतः प्रेमचन्द अपने भावबोध द्वारा समाज व व्यक्ति से संबंधित समस्त छोटी–बड़ी संवेदनाओं को अपनी कहानियों में साकार रूप देने में सफल रहे हैं।

12.5 कठिन शब्द

1. संवेदना	2. विषमता	3. प्रतिरोध	4. मनोविकार
5. पुनरागमन	6. मनोभूमि	7. कर्त्तव्यनिष्ठा	8. अपमानबोध
9. पराकाष्ठा	10. त्रासदी		

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1 'पंच में परमेश्वर वास करते हैं' इस पंक्ति को स्पष्ट करें।

प्र2 'बूढ़ी काकी' कहानी वृद्ध जीवन की त्रासदी को व्यक्त करती है, सोदाहरण स्पष्ट करें।

प्र3 'ईदगाह' कहानी की मूल संवेदना को स्पष्ट करें।

प्र4 'नमक का दरोगा' की मूल संवेदना क्या है?

प्र5 'कफन' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

प्र6 'पूस की रात' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

प्र7 'नशा' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

प्र8 'ठकुर का कुआँ' कहानी दलित जीवन की दयनीय स्थिति को सामने लाती है, स्पष्ट करें।

12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मानसरोवर, भाग–1 – प्रेमचन्द।

2. समकालीन कहानी : सोच और समाज – पुष्पपाल सिंह।

*****

निर्धारित कहानियों के प्रमुख पात्र

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 निर्धारित कहानियों के प्रमुख पात्र

13.3.1 'पंच परमेश्वर' के प्रमुख पात्र

13.3.2 'बूढ़ी काकी' के प्रमुख पात्र

13.3.3 'ईदगाह' के प्रमुख पात्र

13.3.4 'नमक का दरोगा' के पात्र

13.3.5 'कफ़न' के प्रमुख पात्र

13.3.6 'पूस की रात' के प्रमुख पात्र

13.3.7 'नशा' के प्रमुख पात्र

13.3.8 'ठाकुर का कुआँ' के प्रमुख पात्र

13.4 निष्कर्ष

13.5 कठिन शब्द

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.7 पठनीय पुस्तके

13.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रेमचन्द की आठ कहानियों के प्रमुख पात्रों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

प्रेमचन्द से पूर्व जो साहित्य रचा जा रहा था उसमें चरित्र– चित्रण पर ध्यान नहीं दिया जाता था। कथा घटनाओं के सहारे आगे बढ़ती थी। प्रेमचन्द को ही यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने जीवन की साधारण घटनाओं को अपने कथा–साहित्य का विषय बनाया व हाड़–माँस के बने हुए जीते–जागते व्यक्तियों का स्वाभाविक चरित्र – चित्रण किया। उनका मानना है कि 'अपने विचार किसी पात्र के माध्यम से समाज तक पहुंचाए जा सकते हैं।' अतः प्रेमचन्द यथार्थ जीवन को सामने लाना चाहते थे इसलिए उनके पात्र भी यथार्थ जीवन से ही लिए गए हैं जो पाठक की संवेदना से अधिक जुड़ते हैं।

13.3 निर्धारित कहानियों के प्रमुख पात्र

पात्रों का चरित्र–चित्रण कहानी का महत्त्वपूर्ण तत्व होता है। कहानी में पात्रों की संख्या कम होती है। चरित्रों का चित्रण जितना स्पष्ट होगा, पढ़ने वाले पर उसका उतना ही गहरा प्रभाव पड़ेगा। रचनाकार पात्रों के माध्यम से ही पाठको तक अपने अनुभवों को पहुंचाता है। प्रेमचन्द की कहानियों के पात्र अपने समाज तथा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

13.3.1 'पंच परमेश्वर' कहानी के प्रमुख पात्र

'पंच परमेश्वर' कहानी में जुम्मन शेख और अलगू चौधरी प्रमुख पात्र है। इनके अतिरिक्त जुम्मन का पिता जुमराती शेख, जुम्मन की बेगम (करीमन) जुम्मन की खाला, अलगू की बीवी, समझू साहू और उसकी बीवी, रामधन मिश्र आदि पात्रों की उपस्थिति कहानी के विकास में सहायक सिद्ध होती है।

अलगू चौधरी के चरित्र की विशेषताएँ :–

1) **धनवान** :– अलगू चौधरी धनवान व्यक्ति है। धन के कारण ही उसे आस–पास के गांव से मान–सम्मान मिलता है। गाँव में उच्च पद पर आसीन और प्रतिष्ठा सम्पन्न व्यक्तियों के साथ उसका उठना–बैठना है। यह सब उसके धन के प्रताप का फल है।

2) **आज्ञाकारी शिष्य** :– अलगू चौधरी के व्यक्तित्व की यह भी एक खास विशेषता है कि वह एक आज्ञाकारी शिष्य है। गुरु की सच्चे मन से सेवा करता है। जुमराती शेख (जुम्मन के पिता) अलगू के गुरु हैं, उनके पास पढ़ते समय अलगू का समय उनकी चिलम सुलगाने में ही बीत जाता है। इस पर भी अलगू के पिता का अटूट विश्वास होता है कि यदि उसके नसीब में विद्या लिखी होगी तो गुरु की सेवा करने से आ जाएगी। इसलिए अलगू गुरु के सेवा सत्कार में कोई आना–कानी नहीं करता, ''अलगू ने गुरुजी की बहुत सेवा की थी, खूब रकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोए। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी

विश्राम न लेने पाता था; क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आधे घंटे तक किताबों से अलग कर देती थी।" इस पर भी अलगू गुरु के विषय में गलत नहीं सोचता।

3) **ईमानदार व सत्यनिष्ठ व्यक्तित्व** :– अलगू चौधरी ईमानदार व्यक्ति है। ईमानदारी व सत्यनिष्ठा उसके चरित्र के विशेष गुण हैं। अलगू समझता है की उसका कहना था कि जुम्मन खाला के साथ बेईमानी कर रहा है। खाला की पंचायत में आने के लिए पहले तो अलगू मना कर देता है किन्तु खाला द्वारा ईमान और धर्म का वास्ता देने पर वह पंचायत में जाता है और पंच की भूमिका में सच्चाई के पक्ष में फैसला सुनाता है, "खालाजान को माहवार खर्च दिया जाय। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है... अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्बानामा रद्द समझा जाए।" इसके बाद जुम्मन और अलगू घनिष्ठ मित्र से जानलेवा शत्रु बन जाते हैं लेकिन अलगू सच के साथ खड़ा रहता है।

4) **सच्चा मित्र** :– अलगू चौधरी जुम्मन शेख का अतरंग मित्र होता है। धर्म अलग–अलग होने पर भी वे दोनों बाल्यावस्था से अंत तक मित्र बने रहते हैं। खाला की ओर से पंच खड़ा किया जाने तथा खरा फैसला सुनाने के बाद भी वह जुम्मन के विषय में बाहर कुछ नहीं कहता।

5) **पशु प्रेमी** :– अलगू चौधरी पशुओं के प्रति भी स्नेह भाव रखता है। दो बैलों को वह बड़े प्रेम से रखता है। कहानी में अलगू की इस प्रवृति का ज्ञान लेखक के शब्दों में इस प्रकार हुआ है, "अलगू चौधरी के घर था तो चैन की बंशी बजती थी। बैलराम छठे–छमाहे कभी बहली में जोते जाते थे। खूब उछलते–कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराम का रातिब था, साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली और यही नहीं, कभी–कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था।"

इस तरह अलगू जानवरों से भी अगाध प्रेम करता है। अतः हम कह सकते हैं कि अलगू चौधरी एक ईमानदार और सत्यवादी व्यक्ति है जो सच का साथ देकर अपने अतरंग मित्र से शत्रुता मोल ले लेता है किन्तु सत्य के मार्ग से नहीं डगमगाता।

जुम्मन शेख का चरित्र चित्रण

1) **पढ़ाई–लिखाई में प्रवीण** :– जुम्मन शेख पढ़े–लिखे व्यक्ति हैं। उनके पिता भी पढ़े–लिखे थे। अलगू चौधरी को यदि धन के कारण मान–सम्मान मिलता है तो जुम्मन शेख को अपनी विद्या के कारण, " हल्के का डाकिया, कांस्टेबिल और तहसील का चपरासी....... सब उनकी कृपा की आकांक्षा रखते थे।...... जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या से ही सबके आदरपात्र बने थे।" अतः समाज में जुम्मन का रुतबा उसकी शिक्षा के कारण ही था।

2) **पैसों का लालची और स्वार्थी** :– जुम्मन शेख लालची और स्वार्थी प्रवृत्ति का है। जुम्मन की खाला के पास थोड़ी–सी ज़मीन होती है, उसे पाने के लिए जुम्मन और उसकी बीवी खाला का खूब ख्याल रखते हैं, किन्तु ज़मीन जुम्मन के नाम होने पर खाला के प्रति उनका व्यवहार बदल जाता है। खाने को रुखा–सूखा दिया जाता है, " उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाए गए। हलवे–पुलाव की वर्षा–सी की गई; पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानो मुहर लगा

दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज, तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निष्ठुर हो गए। अब बेचारी खालाजान को प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं।''

3) **धृष्टता** :– धृष्टता भी जुम्मन के चरित्र की विशेषता है। जुम्मन की निठुरता जब खाला से सही न गयी तो उन्होंने जुम्मन से अपनी जायज मांग कि मुझे पैसे दे दिया करो, मैं अपना खाना खुद पका लूंगी। इस पर जुम्मन अपनी धृष्टता का परिचय इस प्रकार देता है ''रुपये क्या यहाँ फलते हैं?..... कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम मौत से लड़कर आई हो?''

4) **न्यायप्रिय पंच** :– जुम्मन शेख न्यायप्रिय पंच की भूमिका में भी आता है। अपने मामले में अलगू चौधरी के पंच बनकर खाला के पक्ष में फैसला होने पर जुम्मन शेख सकते में आ जाता है। वह मन–ही–मन अलगू से बदला लेने की सोचता है और उसे यह मौका शीघ्र ही मिल जाता है। समझू साहू अलगू को उसके बैल के पैसे नहीं देता इस पर अलगू पंचायत बुलाता है। जुम्मन को पंच चुना जाता है यह सुनकर अलगू को लगता है कि जुम्मन, समझू का पक्ष लेगा किन्तु पंच के पद पर विराजमान जुम्मन फैसला सुनाता है, ''समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी... बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने–चारे का कोई अच्छा प्रबन्ध न किया गया।'' इस तरह पंच का आसन ग्रहण करने पर जुम्मन के भीतर बदला लेने की भावना मिट जाती है।

5) **सच्चा मित्र** :–जुम्मन और अलगू बाल्यावस्था से गहरे मित्र होते हैं। धर्म अलग–अलग होने पर भी धर्म इनके मध्य नहीं आता। इनकी मित्रता का मूल मंत्र विश्वास है। कहानी में यह विश्वास थोड़े समय के लिए डगमगा जाता है किन्तु अंत में दोनों के मध्य मित्रता की मुरझाई लता फिर से हरी हो जाती है। अलगू के हित में फैसला सुनाकर जुम्मन सच्चे मित्र का दायित्व निभाता है।

अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जुम्मन लालची व स्वार्थी होने के साथ–साथ सच्चा मित्र और न्यायप्रिय पंच की भूमिका में भी पाठकों के समक्ष आता है

13.3.2 'बूढ़ी काकी' कहानी के प्रमुख पात्र

मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित कहानी 'बूढ़ी काकी' में पात्रों की संख्या भले ही कम है लेकिन प्रत्येक पात्र कथानक के विकास में अपनी सजग भूमिका निभाता है। इसमें मुख्य पात्र तीन हैं– बूढ़ी काकी, बुद्धिराम और रूपा। इसके अतिरिक्त कथा को चरम तक पहुँचाने में बुद्धिराम की बेटी लाड़ली की भी अहम भूमिका है। गौण पात्रों में बुद्धिराम के दो बेटे आते हैं।

बूढ़ी काकी के चरित्र की विशेषताएँ

1) **शारीरिक रूप से कमज़ोर** :– 'बूढ़ी काकी' कहानी की प्रमुख पात्र है। सम्पूर्ण कहानी काकी के इर्द–गिर्द घूमती है। बूढ़ी काकी शारीरिक रूप से कमज़ोर है। हाथ–पैरों से लाचार काकी मुख्यतः कोठरी में ही पड़ी रहती है। लेखक के शब्दों में–''समस्त इन्द्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पड़ी रहतीं।'' इससे बूढ़ी काकी की जीर्ण अवस्था का पता चलता है।

2) **जिह्वा–स्वाद :–** कहानी में बूढ़ी काकी के चरित्र की एक ही कमज़ोरी है वह है जिह्वा स्वाद। जीभ के स्वाद के कारण ही काकी को उनके भतीजे बुद्धिराम और रूपा द्वारा अपमानित किया जाता है किन्तु कहानी की मूल संवेदना काकी के जिह्वा स्वाद में ही निहित है। आरम्भ में प्रेमचन्द लिखते हैं, "बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है।" इस अवस्था में व्यक्ति के भीतर बचपन के गुण और जिद् दोबारा आ जाती है। काकी के साथ भी ऐसा ही था, "बूढ़ी काकी में जिह्वा–स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का रोने के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा ही... जब भोजन का समय टल जाता उसका परिणाम पूर्ण न होता अथवा बाज़ार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो रोने लगती थी।" इसी कमज़ोरी के कारण बूढ़ी काकी पाठकों की सहानुभूति का पात्र बनती है।

3) **अकृत्रिम और छल कपट रहित व्यवहार :–** बूढ़ी काकी के व्यवहार में कहीं भी बनावटीपन नहीं है। उसका चरित्र छल कपट रहित है। पति और बेटों की मृत्यु उपरान्त काकी अपनी सारी सम्पत्ति अपने भतीजे के नाम कर देती है किन्तु बाद में काकी को भरपेट खाना भी नहीं दिया जाता। क्षुधा मिटाने के लिए उसे जूठी पत्तलें चाटनी पड़ती हैं इसके लिए भी वह बुद्धिराम और रूपा को दोष नहीं देती।

4) **सहनशीलता :–** सहनशीलता भी बूढ़ी काकी के चरित्र की विशेषता है। बुद्धिराम और रूपा द्वारा तिरस्कृत होकर काकी जहर का घूंट पी लेती है लेकिन उनको कुछ नहीं कहती जबकि दोष अपनी जीभ को देती है। रूपा मेहमानों के सामने काकी को भला बुरा सुनाती है, "बूढ़ी काकी ने सिर उठाया, न रोई, न बोली। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गयीं।"

इस प्रकार 'बूढ़ी काकी' के चरित्र चित्रण से स्पष्ट होता है कि बुढ़ापे में बचपन के गुण आने लगते हैं। काकी स्वच्छ हृदय वृद्धा है जिसके मन में तनिक भी मैल नहीं। बुद्धिराम और रूपा के दुर्व्यवहार से आहत काकी सबकुछ चुपचाप सहन कर लेती है।

बुद्धिराम के चरित्र की विशेषताएँ

बुद्धिराम काकी का भतीजा है। कहानी में यह प्रमुख पात्र के रूप में आता है। अतः इसके चरित्र की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1) **स्वार्थी और लालची :–** बुद्धिराम स्वभाव से स्वार्थी और लालची प्रवृत्ति का है। तन से जर्जर निराश्रय बूढ़ी काकी अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति बुद्धिराम के नाम कर देती है किन्तु सम्पत्ति अपने नाम होने के बाद काकी को भरपेट भोजन देना भी बुद्धिराम को महँगा लगता है। वह इतना कंजूस तथा लालची है कि उसे काकी को खाना खिलाना भी अखरता है। कभी–कभी वह स्वयं सोचता है, 'विचारते कि इसी सम्पत्ति के कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूँ। यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता तो उन्हें कदायित् कोई आपत्ति न होती, परन्तु विशेष व्यय का भय उनकी सचेष्टा को दबाये रखता था।" इस तरह वह मुँह से आश्वासन देकर बिना पैसा खर्च किए सहानुभूति दिखाने में भलाई समझता है।

2) **निर्दयी :–** बुद्धिराम के चरित्र की एक विशेषता यह भी उभरती है कि वह निर्दयी है। भूख से व्याकुल काकी जब मेहमानों की पंक्ति में उसे दिखाई देती है उस समय बुद्धिराम क्रोधित होता है और बूढ़ी काकी को घसीटता हुआ उनकी कोठरी में छोड़ आता है। निराश्रय और असहाय काकी के ऊपर उसे तनिक भी दया नहीं आती। बुद्धिराम की निर्दयता का चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया है–"पण्डित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिल–मिला गये।... जिस प्रकार निर्दय महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े कर्जदार को देखते ही झपटकर उसका टेंटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपककर उन्होंने बूढ़ी काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अंधेरी कोठरी में धम से पटक दिया।" इसमें बुद्धिराम की निर्दयता स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

3) **कृतघ्न :–** बुद्धिराम कृतघ्न प्रवृत्ति का है। वह काकी द्वारा अपने ऊपर किए गए उपकार को शीघ्र ही भूल जाता है, "भतीजे ने सम्पत्ति लिखाते समय तो खूब लम्बे–चौड़े वादे किये, परन्तु वे सब वादे कवेल कुली डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्ज़बाग थे।" बूढ़ी काकी की सम्पत्ति से बुद्धिराम को दो ढ़ाई सौ वार्षिक आय प्राप्त होती है किन्तु वह इतना कृतघ्न है कि काकी को पेट भर खाना भी नहीं खिलाता। पिता का व्यवहार देखकर बुद्धिराम के दोनों बेटे भी काकी को तंग करते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि स्वभाव से लालची बुद्धिराम इतना स्वार्थी है कि जिस काकी की सम्पत्ति के कारण गाँव में उसे मान–सम्मान मिलता है, बाद में उसके प्रति अत्यंत कठोर व निर्दयी बन जाता है।

13.2.3 रूपा का चरित्र चित्रण

'बूढ़ी काकी' कहानी की तीसरी प्रमुख पात्र रूपा है जो बुद्धिराम की पत्नी है। उसका चरित्र–चित्रण इस प्रकार से है–

1) **स्वभाव में तीखापन :–** रूपा के स्वभाव में तीखापन है, जुबान की कड़वी है। बेटे के तिलक वाले दिन बूढ़ी काकी को हलवाई के निकट बैठे देखकर रूपा जल–भुन कर अपने आपे से बाहर हो जाती है और मेहमानों के सामने ही काकी का तिरस्कार करते हुए कहती है– "ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता है? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गयी जल जाय ऐसी जीभ।" इसमें रूपा के स्वभाव का तीखापन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

2) **धर्मभीरू :–** धर्मभीरू भी उसके चरित्र की विशेषता है। उसके भीतर ईश्वर का डर भी बना रहता है। कहानी के अंत में बूढ़ी काकी जूठी पत्तलें चाटती है यह देखकर रूपा का धर्मभीरू मन भयभीत हो जाता है, "करूणा और भय से उसकी आँखें भर आयीं। इस अधर्म के पाप का भागी कौन है? उसने सच्चे हृदय से गगन–मण्डल की ओर हाथ उठाकर कहा– "परमात्मा, मेरे बच्चों पर दया करो, इस अधर्म का दण्ड मुझे मत दो, नहीं तो हमारा सत्यानाश हो जायेगा।" इस तरह रूपा अपने कुकृत्य के लिए डरती हुई भी दिखी है जो उसके धर्मभीरू होने का परिचायक है।

3) **आत्मग्लानि का भाव :–** रूपा के भीतर आत्मग्लानि का भाव भी जागृत होता है। काकी को जूठन खाते देख रूपा अवाक् रह जाती है, उसे अपने ऊपर क्रोध आता है कि मेरे कारण काकी को यह रास्ता अपनाना पड़ा,"वह सोचने लगी– हाय!

कितनी निर्दयी हूँ मैं। जिसकी सम्पत्ति से मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण। हे दयामय भगवान! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई, मुझे क्षमा करो।'' और वह काकी के लिए थाली सजाकर लाती है तथा अपने अपराध ा के लिए काकी से माफी भी मांगती है।

इस तरह रूपा जुबान की तेज़ है किन्तु उसके भीतर अधर्म का भय बना रहता है यही कारण है कि अपने कुकृत्य के लिए उसे आत्मग्लानि होती है और उसके निराकरण के लिए फिर वह काकी से क्षमा याचना करती है।

13.3.3 'ईदगाह' करनी के प्रमुख पात्र

'ईदगाह' कहानी के दो प्रमुख पात्र हैं– दादी अमीना और बालक हामिद।

अमीना का चरित्र–चित्रण

1. प्रमुख नारी पात्र

'ईदगाह' कहानी में अमीना प्रमुख नारी पात्र है। वह इस कहानी के मुख्य बालक हामिद की दादी है इसलिए कहानी में आदि से अन्त तक उसका चरित्र विशेष महत्व रखता है। हामिद के माता–पिता की असमय मृत्यु होने के पश्चात अमीना ने ही हामिद का पोषण किया है।

2. दुखी स्त्री

कहानी में अमीना का चरित्र दुखी स्त्री के रूप में सामने आता है। उसके जीवन में एकमात्र सहारा उसका पोता हामिद है क्योंकि उसके जवान बेटे–बहू की असमय मृत्यु हो चुकी है। कहानी में उसका दुख अनेक स्तरो पर सामने आता है। बालक हामिद जब दादी से अपने माता–पिता के विषय में पूछता तो उसे झूठे आश्वासन देने पड़ते हैं कि ''उसके अब्बाजान रुपये कमाने गये हैं। बहुत सी थौलियाँ लेकर आएंगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी–अच्छी चीजें लाने गयी हैं;'' हामिद तो इसी आशा में प्रसन्न रहता लेकिन अमीना तो वास्तविकता जानती है इसलिए बालक को इस प्रकार झूठे सपने दिखाना अमीना को दुख पहुंचाता है। ईद के त्योहार पर भी अमीना अपनी कोठरी में बैठकर रोती हुई दिखती है क्योंकि इस खुशी के त्योहार पर उसके घर अन्न का दाना नहीं है। वह दुखी होकर सोचती है कि क्या बेटे आबिद के होने पर भी ईद ऐसे आकर चली जाती। उसका मन–ही–मन ईद को कोसना कि – ''किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं है...'' अमीना की दुखद स्थिति को व्यक्त करता है।

3. गरीब

अमीना इस कहानी में निर्धन स्त्री के रूप में चित्रित हुई है क्योंकि उसके बेटे–बहु का देहान्त हो चुका है, इसलिए पोते की परवरिश के साथ–साथ घर को चलाने का दायित्व उस पर है। किन्तु दूसरों के घर काम करके तथा सिलाई द्वारा अर्जित पैसों से अपना व पोते का पालन पोषण करती है। ईद के समय उसके घर अन्न का दाना न होना उसकी आर्थिक अभाव ग्रस्तता को चित्रित करता है। अपनी गरीवी के कारण ही वह मन–ही–मन ईद को कोसती

है। जबकि ईद खुशी का त्योहार है पर गरीबी के कारण वे खुशी का त्योहार भी उसके लिए दुख तथा चिंता का विषय बन जाता है। अमीना गरीब अवश्य है लेकिन तह अपनी मेहनत और परिश्रम से जीवन की कठिन पास्थितियों का सामना भी कर लेती है।

4. साहसी व उदार ह्रदय

अमीना के जीवन में चाहे कठिन समय आया है किन्तु व कभी घबराई नहीं। कम पैसों में भी उसने अपने साहस व उदारता को छोड़ा नहीं है। बेटे–बहु की मृत्यु पश्चात शोकग्रस्त नहीं रहती बल्कि साहस दिखाते हुए अपना और पोते का ध्यान रखती है। ईद के समय आठ आने होने पर भी वह पूरा हिसाब लगाते हुए उसमें से तीन आने हामिद को देती है ताकि वह मेला देख आए तथा धोबन, नाइन, मेहतरानी और चुड़िहारिन सबसे आँख नहीं चुराती उसका मानना है कि, "... मुँह क्यों चुराए? साल–भर का त्यौहार है। जिंदगी खैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रक्खे, ये दिन भी कट जाएंगे।" अमीना की ऐसी सोच उसके साहस और उदार ह्रदय को व्यक्त करती है।

5. आशावादी

अमीना चाहे गरीबी तथा विपरीत परिस्थितियों से घिरी है किन्तु वह निराशावादी नहीं है। उसमें सुखमय जीवन तथा उज्वल भविष्य की कामना सदैव विद्यमान रहती है। कठिन समय को भी वह इसी आशा में काट रही है कि अच्छे दिन भी आएँगे उसके द्वारा यह कहना कि; "ये दिन भी कट जाएंगे।" उसकी आशावादी सोच को स्पष्ट करता है।

6. भावुक

अमीना अपने पोते हामिद के लिए सदैव भावुक चित्रित हुई है। पैसे कम होने पर भी उसे तीन आने देकर मेले में भेजती है। हामिद के अकेले मेले जाने पर चिंता व्यक्त करती है। मेले से हामिद द्वारा चिमटा लाने पर उसका पोते पर क्रोध व्यक्त करना और अन्ततः हामिद द्वारा चिमटा लाने का कारण जानने पर अमीना का आँसू बहाते हुए उसे अपने दामन में लेना सभी दृश्य उसकी भावुकता को प्रदर्शित करते है।

'ईदगाह' कहानी की अमीना अपने चरित्र की विशिष्ट विशेषताओं के कारण कहानी में विशेष बनी है। संघर्षमयी जीवन जीते हुए भी वह टूटी बिखरती नही और न ही किसी के समक्ष अपनी गरीबी का राग अलापती है। अतः पाठक के लिए अमीना एक प्रेरणादायक चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुई है।

2. हामिद का चरित्र–चित्रण

'हामिद' ईदगाह कहानी का हदयस्पर्शी केंद्रीय पात्र है। वह बालक है किंतु उम्र से अधिक समझदार चित्रित हुआ है। हामिद के चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **समझदार**

हामिद चार–पाँच वर्ष का बालक है किन्तु कहानी में वह बड़ों की तरह समझदार है। उसकी उम्र के बच्चे मेले, खिलौने, मिठाई आदि को पसंद करते हैं लेकिन हामिद पैसे का महत्त्व समझता है इसलिए वह अन्य बच्चों की भांति पैसे व्यर्थ नहीं करता बल्कि मेले से अपनी दादी के लिए चिमटा लेकर आता है ताकि रोटी बनाते समय दादी के हाथ न जलें। इतने छोटे बच्चे का मेले में जाकर खिलौने, मिठाई न लेकर चिमटा लेना उस बच्चे की उम्र से पहले आई समझदारी को चित्रित करता है। उसकी समझदारी का परिचय उस समय भी मिलता है जब उसके मित्र उसका मज़ाक उड़ाते हैं। मित्रों के मजाक उड़ाने पर वह घबराता नहीं अपितु समझदारी से काम लेते हुए शांत रहता है।

2. **निडर**

हामिद निडर बालक है। ईद के अवसर पर गाँव के सभी बालक अपने पिता के साथ मेला देखने जा रहे थे लेकिन हामिद अकेले ही मेले में जाने के लिए तैयार हो जाता है। अपनी दादी को चिंतित होते देख उन्हें आश्वासन देते कहता है, "तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।" चाहे हामिद के पाँव में जूते नहीं थे लेकिन वह पूर्ण साहस के साथ सब बच्चों से आगे, बिना थके चल रहा था। छोटे से बालक का अकेले मेले में जाना और दादी को भी अपनी पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन देना उसकी निड़रता व साहस का परिचय देता है।

3. **दृढ़ संकल्पी**

हामिद आयु से छोटा है लेकिन दृढ़ संकल्पी बड़ों जैसा है। मेले में उसके मित्र मोहसिन, सम्मी, नूर, महमूद आदि उसका मज़ाक उड़ाते हैं तो उस समय वह उनके मज़ाक से व्यथित होकर अपने तीन पैसे से कोई खिलौना या मिठाई नहीं लेता, क्योंकि वह व्यर्थ में इन तीन पैसों को खर्च नही करना चाहता था। उसने दृढ़ संकल्प किया था कि वह कोई उपयोगी वस्तु ही खरीदेगा। इसलिए वह लोहे की दुकान पर चिमटा देखकर रुक जाता है। चिमटा उसके लिए उपयोगी वस्तु है क्योंकि उसने अपनी दादी को रोटी बनाते समय हाथों को जलते देखा है बस दादी के हित का सोचकर वह चिमटा खरीदता है जिसमें उसके दृढ़ संकल्पी होने का परिचय मिलता है। चिमटे को लेने के पश्चात उसे अपूर्व संतुष्टि का अनुभव होता है यह सोचकर कि अब रोटी बनाते हुए उसकी दादी के हाथ नहीं जलेंगे।

4. **तर्कशील**

हामिद एक तर्कशील बालक है। मेले में जब उसके साथी मित्र खिलोनें खरीदकर अपने – अपने खिलौने की प्रशंसा करते हैं और हामिद के चिमटे की खिल्ली उड़ाते हैं तब हामिद अपनी तर्कशीलता से चिमटे को सब खिलौनों से श्रेष्ठ सिद्ध कर देता है। जब मोहसिन कहता है कि, "तुम्हारे चिमटा का मुँह रोज आग में जलेगा।" तब हामिद अपने तर्क देता है, "आग में बहादुर ही कूदते हैं ज़नाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लौंडियों की तरह घर में घुस जाएँगे। आग में कूदना वह काम है, जो यह रुस्तमे – हिंद ही कर सकता है।" इस प्रकार हामिद की तर्कशीलता उसे सब मित्रों में विजेता का सत्कार दिलाती है।

5. संवेदनशील

हामिद के माता–पिता का देहांत हो चुका है इसलिए उसका एकमात्र सहारा उसकी दादी ही है। वह अपनी दादी के प्रति अति संवेदनशील है। दादी जब रोटी बनाती है तो उनके हाथ जलते है यह बात हामिद को अच्छी नहीं लगती। वह मेले में जाता है तो भी उसके दिमाग में दादी का कष्ट घूमता रहता है इसलिए अपनी दादी से मिले तीन पैसों से वह कोई खिलौना या मिठाई नहीं लेता बल्कि दादी के लिए एक लोहे को चिमटा लेता है ताकि दादी के रोटी बनाते समय हाथ न जलें। दादी जब उसके चिमटे को देखकर उसपर क्रोध करती है तब वह अपराधी भाव से कहता है, "तुम्हारी उंगलियों तवे से जल जाती थी, इसलिए मैंने इसे ले लिया।" हामिद का यह वाक्य मात्र दादी के प्रति उसकी संवेदनशीलता को ही व्यक्त नहीं करता बल्कि दादी को भावुक भी करता है।

हामिद की संवेदनशीलता उस समय भी सामने आती है जब उसके सारे दोस्त अपनी हार मानकर मायूस हो जाते हैं तब, "हामिद ने हारने वालों के आँसू पोछे – मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच। यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की बराबरी करेगा," अतः स्पष्ट है कि हामिद एक संवेदनशील बालक है जिसको दूसरों का दुख नहीं देखा जाता।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि हामिद इस कहानी का केंद्रीय पात्र है। अल्प आयु में उसके व्यक्तित्व की उपरोक्त विशेषताओं का होना इस तथ्य को सिद्ध करता है कि अभावग्रस्त व्यक्ति समय से पहले समझदार बन जाता है।

13.3.4 'नमक का दरोगा' कहानी के प्रमुख पात्र

'नमक का दरोगा' कहानी में प्रमुख रूप से दो पात्रों की सृष्टि प्रेमचन्द ने की हैं– मुंशी वंशीधर और पं. अलोपीदीन इन दोनों पात्रों के आधार पर सम्पूर्ण कथा को गति मिली हैं।

मुंशी वंशीधर का चरित्र–चित्रण

यह मुंशी वंशीधर 'नमक का दरोगा' कहानी का प्रमुख पात्र है जो पाठक को सर्वाधिक प्रभावित करता है। इनके चरित्र की विशेषताओं का आंकलन इस प्रकार है।

1. ईमानदार दरोगा

वंशीधर नमक विभाग में कार्यरत एक ईमानदार दरोगा थे। नौकरी की खोज में निकलते समय चाहे उनके पिता ने उन्हें बेईमानी की सीख दी, "... नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना... ऐसा काम ढूँढना, जहाँ कुछ ऊपरी आय हो।" किन्तु वंशीधर के लिए कर्तव्य और ईमानदारी ही सर्वस्व थी। अपनी ईमानदारी व कर्तव्यनिष्ठ हेतु वह बड़े से बड़े लोभ का त्याग कर सकते थे। नौकरी तो उन्हें ऊपरी आय वाले विभाग में ही मिली, लेकिन उन्होंने पिता की सीख का विरोध करते हुए वहाँ ईमानदारी का परिचय दिया। जिस क्षेत्र में वंशीधर नमक के दरोगा नियुक्त हुए वहाँ

के प्रतिष्ठित जमींदार पंडित अलोपीदीन नमक की कालाबाजारी करते थे। वंशीधर को भी उन्होंने धन के बल पर खरीदना चाहा लेकिन वंशीधर धन के लोभ में न आकर अलोपीदीन को नमक–कालाबाजारी के आरोप में गिरफ्तार करते हैं। वंशीधर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और पिता ने भी उन्हे रिश्वत लेने की सीख दी, फिर भी वंशीधर ने अलोपीदीन के आगे सिर न झुकाते हुए अपने सत् मार्ग को नहीं छोड़ा। उनका अपने कर्त्तव्यपथ पर अडिग रहना उनके ईमानदार दरोगा होने का परिचय देता है।

परिवार द्वारा उपेक्षित

वंशीधर ऐसे निम्न मध्यवर्गीय परिवार के सदस्य थे जो आर्थिक विषमताओं का सामना कर रहा था। ऐसे में अपनी आर्थिक स्थिति से उभरना पूरे परिवार का सपना था। वंशीधर के नमक विभाग में दरोगा नियुक्त होने पर उस परिवार में यह आशा उत्पन्न हुई कि अब उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार अवश्य होगा क्योंकि औपनिवेशिक शासन व्यवस्था द्वारा जब नमक का नया विभाग बना और नमक कानून के तहत नमक के व्यपार का निषेध हो गया तो लोग चोरी–छिपे या घूस द्वारा इसका व्यापार करने लगे। इसलिए उस समय इस विभाग में नौकरी करने के लिए हर कोई प्रयासरत रहता क्योंकि जहाँ घूस का खुला स्रोत्र था। ऐसे में वंशीधर के परिवार का सपने देखना भी स्वाभिक लगता है किन्तु जब वंशीधर धूस न लेकर ईमानदारी का परिचय देते हैं और इस ईमानदारी का पुरस्कार उन्हें नौकरी से निलम्बित करके मिलता है तो वंशीधर का परिवार उनका साथ भी नहीं देता और उनकी उपेक्षा भी करता है। चाहे पिता हो, माँ हो या पत्नी सब वंशीधर से क्रोधित होकर उपेक्षित व्यवहार करते है।

विवश व्यक्ति

वंशीधर चाहे ईमानदार व्यक्ति थे लेकिन परिस्थितियों के चलते वह इतना विवश हो गए कि उन्हें भ्रष्ट व्यवस्था का नौकर बनना पड़ा। वंशीधर ईमानदार दरोगा तो बने लेकिन भ्रष्ट व्यवस्था के आगे उनकी ईमानदारी झूठी साबित हो गई। अलोपीन को पकड़कर जहाँ वह अपने पद के साथ न्याय करते हैं वहीं अदालत में धनवान अलोपीदीन के आगे न्याय व्यवस्था को भ्रष्ट पाकर वंशीधर दोषी माने जाते हैं और भ्रष्ट अलोपीदीन निर्दोष होकर छूट जाते हैं। जब व्यवस्था में और परिवार ने वंशीधर को दोषी माना तो अन्ततः वह भ्रष्ट व्यवस्था के हाथ की कठपुतली बनने पर विवश होता है। अतः वंशीधर के माध्यम से लेखक ने यह सत्य उद्घटित करने का प्रयास किया है कि आर्थिक विषमताओं से संघर्षरत व्यक्ति परिस्थितियों के आगे अधिक देर तक अपने नैतिक मूल्यों को बचा नहीं पाता है और अन्ततः भ्रष्ट व्यवस्था का हिस्सा बनने पर उसे विवश होना पड़ता है।

अलोपीदीन का चरित्र – चित्रण

पं० अलोपीदीन ऐसे धनवान जमींदार का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। जिनका लाखो का कारोबार चलता है। प्रेमचन्द ने उनका परिचय इस प्रकार दिया है, ''....पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपये का लेन–देन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे, जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बा–चौड़ा था। बड़े चलते – पुरजे आदमी थे। अँगरेज अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके

मेहमान होते। बारहों मास सयाव्रत चलता था।" स्पष्ट है कि अलोपीदीन अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित व धनवान व्यक्ति थे। यहाँ तक कि भारत पर शासन तथा नमक पर प्रतिबंध लगाने वाले अंग्रेजों का भी उनके घर आना जाना था।

अलोपीदीन को अपने धन पर बहुत अभिमान जो था, क्योंकि उनका मानना था कि धन के बल पर संसार भी समस्त वस्तुओं व साधनों को खरीदा जा सकता है। अलोपीदीन की यह मानसिकता भ्रष्ट समाज में सार्थक भी सिद्ध होती है। इसी धुन के बल पर तो वह नमक की कालाबजारी कर रहे थे। अधिकांश विभागों के अधिकारियों का उनके साथ होने के पीछे भी अलोपीदीन का धन बल ही है।

अलोपीदीन मात्र धनवान ही नहीं, चतुर बुद्धि सम्पन्न भी थे। उनकी चतुरता का बोध कहानी के आदि से अंत तक मिलता है। नमक की कालाबज़ारी में जब दारोगा वंशीधर द्वारा उनकी गाड़ियों रोकी जाती हैं तो वह अपनी चतुर बुद्धि का प्रयोग करते हुए विनम्र स्वभाव में वंशीधर को कहता है, "हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधर से जायें और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ावे। मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था।" अलोपीदीन का यह वक्तव्य उसकी चतुराई को स्पष्ट करता है। अपनी बुद्धि व धन का प्रयोग कर वह कोर्ट के वकीलों को भी अपने हक में कर लेता है। वकील भी धन के लालच में सच को झूठ और झूठ को सच साबित कर देते हैं। परिणामणतः अलोपीदीन अपनी बुद्धि व धन बल के कारण न्यायालय में वंशीधर को दोषी ठहराकर स्वयं निंदोष होकर बाहर आ जाते हैं। अलोपीदीन चाहे धनी, लालची, रिश्वत के बल पर कानून को अपने हित में करने वाले व्यक्ति क्यों न हों कहानी के अंत में उनका साकारात्मक रूप भी सामने आया है। वह वंशीधर की ईमानदारी व कर्तव्यनिष्ठ का सम्मान करते हुए उन्हें अपनी समस्त सम्पत्ति का मैनेजर नियुक्त करते हैं।

अलोपीदीन का वंशीधर को अपना मैंनेजर नियुक्त कारने से दो बाते स्पष्ट होती हैं कि चाहे वह धन–बल से अदालत में निर्दोष साबित हो गए, लेकिन भीतर से वह वंशीधर की ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के आगे अपनी हार स्वीकार करते हैं। दूसरा मानव के सद्‌गुणों का आदर भी करते हैं। वंशीधर से कहें उनके ये शब्द "न मुझे विद्वता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य– कुशलता की। इन गुणों के महत्व का परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है, जिसके सामने योग्यता और विद्वता की चमक फीकी पड़ जाती है।" अलोपीदीन द्वारा ईमानदारी के महत्व को पहचाने के द्योतक हैं। अतः स्वयं भ्रष्ट होते हुए भी वह व्यक्ति की ईमानदारी का महत्व समझाते हैं।

13.3.5 'कफ़न' कहानी के प्रमुख पात्र

कफ़न कहानी के दो ही प्रमुख पात्र हैं– घीसू और माधव। घीसू पिता है और माधव पुत्र। दोनों पात्र दो अलग–अलग व्यक्ति होते हुए भी समान चरित्र के हैं। दोनों चरित्रों के माध्यम से प्रेमचन्द ने गाँव की दीनता और

अभावग्रस्तता को रेखांकित किया है। इनके चरित्र की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1 आलसी तथा निकम्मे

घीसू–माधव दोनों प्रवृत्ति से आलसी तथा कामचोर हैं। प्रेमचन्द इनकी इस प्रवृत्ति को इस प्रकार व्यक्त करते हैं– "चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता दो तीन दिन आराम करता। माधव इतना कामचोर था कि आधे घण्टे काम करता तो घंटे भर चिलम पीता।" इनकी इसी प्रवृत्ति के परिणानस्वरूप गाँव में काम होने के उपरान्त भी कोई इन्हें काम न देता । जब तक उनके घर अनाज रहता ये कोई काम न करते। दो–चार दिन भूखे रहने पर ही घीसू लकड़ियों तोड़ लाता तो माधव उन्हें बाजार में बेच आता। इन दोनों को गांवों के लोग तभी काम के लिए कहते जब दो आदमियों से एक व्यवित का काम कराना होता था।"

2. संवेदनशून्य

घीसू – माधव ही संवेदनशून्य चित्रित हुए हैं। माधव की पत्नी बुधिया जब तक जीवित व स्वस्थ रही तब तक मेहनत–मज़दूरी करके दोनों पिता–पुत्र का पेट भररती रही लेकिन जब वह प्रसव पीड़ा से तड़प रही थी तब दोनों पिता–पुत्र मरणासन्न बुधिया को देखने को नहीं जाते, दोनों किसी के खेत से चुराकर आलुओ को भूनकर खाने में मस्त रहते हैं। वे इतने संवेदनशून्य हैं कि बुधिया से ज्यादा महत्व आलुओं को देते हैं। इतना ही नहीं बुधिया के मर जाने के उपरान्त वे उसके कफ़न के पैसों से भर–पेट पूरी–मिठाई खाते तथा मदिरा पीकर नाचते हैं। अपना मन प्रसन्न करने के पश्चात जब माधव को कफ़न की चिंता होती है तो घीसू कहता है जिन्होंने अब पैसे दिए वहीं पूर्ण कफ़न भी ले आएगें। दोनों की यह मानसिकता उनके स्वार्थी व संवेदनशून्य होने का परिचायक है।

पिता–पुत्र दोनों आडम्बरयुक्त प्रवृत्ति के भी चित्रित हुए हैं। बुधिया जब मर रही थी तब तो दोनों उसे देखने तक नहीं जाते किन्तु उसकी मृत्यु पश्चात दोनों गांव के जमींदार के समक्ष आडम्बर करते कहते हैं, "सरकार ! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गई। ... हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा–दारु जो कुछ हो सका, सब कुछ किया... तबाह हो गये। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूँ, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगायेगा। दोनों के आडम्बर से मात्र जमींदार ने ही नहीं, गांव के अन्य बनिये – महाज़नों ने भी इन्हें कफ़न के लिए पैसे दान दिए।

3. अत्याधिक पेटू

घीसू–माधव दोनों कहानी में अध्याधिक पेटू के रूप में सामने आते हैं उनके लिए पेट से बढ़कर कुछ नहीं। प्रसव पीडा से करहा रही बुधिया के पास न जाने का कारण भी उनका अत्याधिक पेटू होना ही है क्योंकि दोनों को यही भय था कि एक के चले जाने पर दूसरा सारे आलू अकेला खा जाएगा। आलू खाते हुए भी घीसू

को जब ठाकुर की बारात का स्मरण होता है तो दोनों की पेटू प्रवृत्ति सामने आती है। जिसका चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया है "तुमने एक बीस पूरियाँ खाई होंगी? बीस से ज्यादा खाई थी। मैं पचास खा जाता!' पचास से कम मैने न खाई होगी।" माधव– घीसू के इस संवाद से उनकी पेटू प्रवृत्ति साफ दिखलाई, देती है। इतना ही नहीं कफ़न के पैसों से भी उनका भर–पेट खाना खाना और शराब पीना स्पष्ट करते हैं कि उनके लिए पेट को प्रसन्न करना ही महत्वपूर्ण है।

अतः स्पष्ट है कि घीसू–माधव कामचोर निर्दयी और स्वार्थी स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनके लिए अपने स्वार्थ से ऊपर कुछ भी नहीं।

13.3.6'पूस की रात' कहानी के प्रमुख पात्र

'पूस की रात' कहानी में कुल चार पात्र है– हल्कू, मुन्नी, सहना और जबरा। इस कहानी के प्रमुख पात्र की बात करें तो वह हल्कू ही है जो भारतीय किसान का प्रतिनिधि हैं।

हल्कू एक गरीब किसान है जिसका अनुमान उसकी आर्थिक स्थिति से लगाया जा सकता है। उसके पास खेती के लिए थोडी ज़मीन तो है लेकिन उससे जो उपज होती है वह परिवार के लिए पर्याप्त नहीं, इसलिए उसे कर्ज़ लेना पडता है। मेहनत–मज़दूरी करके जो पैसे वह अपनी सुविधा के लिए जोड़ता है वह भी ऋण मुक्त होने में लग जाते हैं। सर्दियों में वह हर बार सोचता है कि एक कम्बल खरीदेगा ताकि फसल की रखवाली करते समय उसे ठंड से ठिठुरना न पड़े लेकिन अपनी आर्थिक स्थिति के चलते वह मात्र सोचता ही रह जाता है और उसे फसल की रखवाली ठिठुरते हुए करनी पड़ती है।

हल्कू को हम उसकी पत्नी मुन्नी से अधिक व्यावहारिक देखते हैं क्योंकि जब सहना अपना कर्ज माँगने आता है तब मुन्नी मजदूरी से बचाए तीन रुपये देने को तैयार नहीं होती, जबकि हल्कू पत्नी को रुपए देने का आदेश देता है। ऐसा इसलिए है कि हल्कू भलि–भांति जानता है कि इससे बचने का कोई उपाय नहीं है। सहना को यदि पैसे नहीं दिए तो वह गालियाँ देगा। हल्कू स्वाभीमानी है इसलिए वह नहीं चाहता की सहना गालियां दे। हल्कू के व्यावहारिक एवं स्वाभिमानी रूप की पुष्टि कहानी में इस प्रकार हुई है – "हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्बल के बिना घर में रात को वह किसी तरह नहीं जा सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जगावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ो में मरेंगे, बला सिर से टल जायेगी। यह सोचता हुआ वह .... स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला – ला दे दे, गला तो छूटे। कम्मल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।" स्पष्ट है कि हल्कू स्वाभिमानी प्रवृति का है अपनी सुविधा हेतु वह सहना द्वारा अपमानित नहीं होना चाहता।

भाग्यवादी

हल्कू को हम भाग्यवादी भी पाते हैं। उसका मानना है कि भाग्यशाली लोगों के पास समस्त सुख–सुविधाएँ होती है। वे लोग काम न करके भी सुविधा सम्पन्न जीवन जीते हैं और हम जैसे भाग्यहीन लोग

काम करने के उपरान्त भी अभावों में रहते हैं। उसका यह कहना कि, ''तकदीर की खूबी है! मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।'' हल्कू की भाग्यवादी सोच को स्पष्ट करता है। अपने शोषण को वह भाग्य का खेल मानता है इसलिए इस शोषण से बचने का भी उसके पास कोई मार्ग नहीं है। काम करके भी अभावों में रहने के कारण उसके भीतर कृषि और श्रम दोनों के प्रति उदासीनता का भाव जागृत हुआ है जिसे खेत में उसके व्यवहार द्वारा समझा जा सकता है।

संवेदनशील

हल्कू चाहे गरीब किसान है लेकिन अभावों ने उसके भीतर की मानवीयता को समाप्त नहीं किया है। कहानी में जबरा कुत्ते के प्रति उसका जो व्यवहार देखने को मिलता है इससे उसकी संवेदनशीलता की पुष्टि होती है। जबरा के साथ उनका व्यवहार ऐसा था मानो वह कोई पशु न होकर इंसान हो। ठण्ड में जबरे का उसके साथ आने पर वह उससे करता है, ''क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रहे, तो यहाँ क्या लेने आये थे। .. आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा । उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।'' वह जब आग जलाता है तो उसे भी आग सेकने को कहता है इतना ही नहीं चाहे जबरा से दुर्गन्ध आ रही थी फिर भी वह उसे अपनी गोद में सुलाता है। हल्कू का जबरे कुत्ते के प्रति ऐसा प्रेम उसकी संवेदनशीलता व मानवीयता का परिचायक है।

आलसी

हल्कू का कहानी में आलसी रूप भी चित्रित हुआ है। उसके खेत में जब नील गायें आती है तो पहले वह सोचता है कि जबरा के रहते कोई जानवर उसके खेत में नहीं आ सकता, किन्तु थोड़ी देर बाद दो–तीन कदम आगे चलकर चलकर फिर ठंड का बहाना बनाकर बैठ जाता है। परिणामस्वरूप जब नील गायें उसकी समस्त फसल नष्ट कर देती हैं और सुबह उसकी पत्नी निराशा व्यक्त करती है तब हल्कू प्रसन्न होता है क्योंकि वह इसी बात से खुश था कि अब ठंड में खेत की रखवाली नहीं करनी पड़ेगी। हल्कू के व्यक्तित्व में आए इस आलसीपन का दोषी वह स्वयं नहीं, बल्कि वह परिस्थितियों उत्तरदायी है जिसके कारण वह शोषित होते–होते कृषि से इतना निराश हो चुका है कि अब वह कृषि से मज़दूरी की तरफ पलायन करने को विवश है। शोषण के चक्र से मुक्ति का रास्ता न पाकर वह किसानी की लाचारी से ही मुक्त होने की सोच रहा है।

अतः हल्कू उस किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो अशिक्षा, धार्मिक आतंक, अंधविश्वास, के कारण भाग्यवादी बन गया है और शोषण से मुक्ति का मार्ग न पाकर किसानी से मज़दूरी की ओर पलायन करने को विवश है।

13.3.7 'नशा' कहानी के प्रमुख पात्र

'नशा' कहानी के दो प्रमुख पात्र हैं– ईश्वरी और बीर इन दोनों पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्र भी कहानी में आए हैं किन्तु उन्हें हम गौण पात्रों में रख सकते हैं क्योंकि वे पात्र कथा को गति देने और प्रमुख पात्रों के चरित्र को उभारने में सहायक है। प्रमुख पात्रों के चरित्र की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

ईश्वरी का चरित्र–चित्रण

जमींदार परिवार का युवक

'नशा' कहानी में ईश्वरी जमींदार परिवार के युवक के रूप में चित्रित हुआ है। उसके जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं है। उसकी परिवारिक समृद्धि का बोध उसके व्यक्तित्व, बोलचाल एवं व्यवहार से हो जाता है। कथावाचक उसके व्यक्तित्व के विषय में कहता है, "नौकरों से वह सीधे मुहँ बात न करता था। अमीरों में जो एक बेदर्दी और उद्दंडता होती है, उसका उसे भी प्रचार भाग मिला था। नौकर ने बिस्तर लगाने की ज़रा भी देर की, दूध जरुरत से ज्यादा गर्म या ठंड़ा हुआ, साइकिल अच्छी तरह साफ नहीं हुई, तो वह आपे से बाहर हो जाता। सुस्ती या बदतमीजी उसे जरा भी बर्दाश्त न थी पर दोस्तों से और विशेषकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द और नम्रता से भरा होता था।" स्पष्ट है कि अमीर घरो के बच्चों का प्रायः जैसा व्यक्तित्व होता है वैसा ईश्वरी का भी है। जो उसके सुविधा–सम्पन्न जीवन की पुष्टि करता है।

2. ऐश्वर्यप्रिय

ऐश्वर्यप्रियता ईश्वरी की प्रवृत्ति में है। सेकेंड क्लास में यात्रा क्या, स्टेशन के रिफ्रेशमेंट रूम में खाना खाना, और खानसामों को एक अठन्नी टिप स्वरूप देना, उनकी ऐश्वर्यप्रियता के ही लक्षण है।

3. मित्र की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला

ईश्वरी चाहे जमींदार का पुत्र था लेकिन अपने मित्रों के प्रति वह स्नेही है। बीर द्वारा जमींदारों पर कटाक्ष करने पर भी वह क्रोध नही करता बल्कि हँसते हुए उसकी बातों के हल्के में लेता है। बीर चाहे गरीब था लेकिन ईश्वरी अपने परिवार में उसकी प्रतिष्ठा बनाकर रखता है। यहाँ तक कि परिवारवालों के समक्ष झूठ भी बोल देता है कि बीर, महात्मा गाँधी के भक्त है साहब। खद्दर के सिवा और कुछ पहनते ही नहीं। ....यों कहो कि राजा है। ढाई लाख सालाना की रियासत है" ईश्वरी के लिए मित्र की प्रतिष्ठा बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि उसका मानना है कि यदि वह बीर की वास्तविकता बता देगा तो परिवार के सदस्य व नौकरी उसका सम्मान नहीं करेंगे।

अतः कह सकते हैं कि ईश्वरी एक अमीर परिवार का ऐश्वर्यप्रिय युवक है लेकिन हृदय में अपने मित्रों के प्रति सम्मान की भावना है।

बीर का चरित्र–चित्रण

'नशा' कहानी में बीर प्रमुख पात्र के रूप में सामने आया है। एक तरह से कहानी का शीर्षक 'नशा' बीर के व्यवितत्व पर ही आधारित है। उसके चरित्र की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. निर्धन

बीर एक निर्धन परिवार से सम्बंध रखता है। उसके पिता एक क्लर्क है उसकी निर्धनता का बोध उसकी स्थिति से लगाया जा सकता है जैसे – उसके वस्त्र का सामान्य होना, घर जाने के लिए किराए के पैसे न होना। कहानी के आरम्भ में ही उसने अपनी निर्धनता का उल्लेख किया, ''ईश्वरी एक बड़े जमींदार का लड़का था और मैं एक गरीब क्लर्क का, जिसके पास मेहनत – मजूरी के सिवा और कोई जायदाद न थी।'' स्टेशन पर भोजन करते समय खानसामों का बीर की उपेक्षा करना तथा ईश्वरी द्वारा अपने परिवारवालो के समक्ष बीर की झूठी प्रतिष्ठा स्थापित करने पर नौकरों द्वारा बीर को देखकर आशंका व्यक्त करना, स्पष्ट करता है कि बीर एक निर्धन परिवार का युवक है।

2. **आलोचक**

चूंकि बीर गरीब परिवार से सम्बंध रखता है इसलिए जमींदार वर्ग के प्रति उसके मन में द्वेष भावना है इसी भावना के चलते वह जमींदारों की आलोचना करते हुए उन्हें हिंसक पशु तथा खून चूसने वाली जोंक तक कहता है।

3. **कथनी –करनी में अन्तर**

बीर के व्यवहार हमें पर्याप्त अन्तर पाते हैं। कथनी अनुसार पर जमींदार वर्ग की आलोचना करता है लेकिन जमींदार पुत्र ईश्वरी से उसकी मित्रता भी है। साथ ही ईश्वरी के घर जाकर वह जमींदारों जैसा व्यवहार करने लगता है। उससे उसका व्यवहार एक शोषक, उत्पीड़क जमींदार और अमीर व्यक्ति के समान हो जाता है। जो इस बात की पुष्टि करता है कि बीर की कथनी और करनी में पर्याप्त अन्तर है।

4. **वैभव का नशा ?**

बीर स्वयं गरीब था लेकिन जैसे ही ईश्वरी ने उसे अमीर व्यावित्त के रूप में परिवार के समक्ष प्रस्तुत किया तो बीर पर भी ईश्वरी के वैभव का नशा हो गया। ईश्वरी द्वारा झूठ बोलने पर वह उसका विरोध तो नहीं करता बल्कि स्वयं को वैसा ही समझने लगता है जैसे ईश्वरी ने उसे परिवार के समक्ष प्रतिष्ठित किया। वह उसी वैभव जीवन की कल्पना व नशे में जीने लगता है। इसी नशे में वह ईश्वरी के नौकरों से भी उद्दंडता पूर्वक व्यवहार करता है इतना ही नहीं वापिस लौटते समय रेल में एक गरीब यात्री की पिटाई तक कर देता है। बीर के व्यक्तित्व में जो वैभव का नशा चढ़ा उसने उसे संवेदनशून्य बना दिया, किन्तु यात्री के साथ किए अमानवीय व्यवहार पर जब ईश्वरी उसे डांटता है तब वह इस वैभव के नशे से बाहर आकर अपनी वास्तविक स्थिति में पहुंचता है।

अतः स्पष्ट है कि बीर एक ऐसे व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है जो अमीर की आलोचना तो करता है लेकिन जब स्वयं उसे वैसा जीवन जीने को मिलता है तो वह अमीर वर्ग से भी अधिक संवेदनशून्य हो जाता है।

13.3.8 'ठाकुर का कुआँ' कहानी के प्रमुख पात्र

'ठाकूर का कुआँ' कहानी दलित जीवन पर आधारित है। इस कहानी की प्रमुख पात्र हरिजन जोखू की पत्नी गंगी है। कहानी में उसके चरित्र की निम्नलिखत विशेषताएँ उनर कर सामने आई है–

पतिव्रता नारी

गंगी एक पतिव्रता नारी है। उसका पति जोखू कई दिनो से बीमार है जिसकी वह सदैव सेवा करती है। उनके गांव में तीन पानी के कुएँ हैं– एक ठाकुर का, दूसरा साहू का और तीसरा गाँव से पर्याप्त दूर। अछूत होने के कारण वह ठाकुर और साहू के कुएँ से पानी नहीं भर सकती थी इसलिए प्रतिदिन गाँव से बाहर वाले कुएँ से पानी भरकर लाती थी, ताकि बीमार पति को प्यासे न रहना पड़े। एक दिन जब जोखू पानी पीने लगा तो उसे पानी से दुर्गन्ध आई। उस समय गंगी पति को वह पानी पीने के लिए मना कर रात के अंधेरे में ठाकुर के कुएँ से पानी लाने की बात करती है जबकि वह जानती है कि यह संभव नहीं, पकड़े जाने पर जान से हाथ धोना पड सकता है लेकिन अपने पतिव्रता धर्म के अनुसार वह पति को गंदा पानी भी पीते नहीं देख सकती थी। उसका ठाकुर के कुएँ से पानी लाने का प्रयास, उसके पतिव्रता रूप को ही दर्शाता है।

साहसी

गंगी चाहे दलित है लेकिन उसमें साहस का अभाव नही है। गंगी जिस समय ठाकुर के कुएँ पर पानी भरने गई थी यह उसके साहस का ही परिचायक है। एक तो अंधेरा, दूसरा ठाकुर का भय, इन दोनों को पीछे छोड़ती हुई वह ठाकुर के कुएं में पानी भरने हेतु संघर्ष करती है। चाहे पानी लाने में वह सफल नहीं हो पाती, फिर भी दलित होते हुए ठाकुर के कुएँ में पानी भरने जाना, और वहाँ से सुरक्षित भाग कर आना उसके साहसी रूप को दर्शाता है।

अत्याधिक सावधान

गंगी के चरित्र की एक विशेषता उसकी अध्याधिक सावधानी से काम करना भी है। वह जानती है कि ठाकुर के कुएँ से वह उनके सामने पानी भर कर नहीं ला सकती। इसलिए कुएँ तक जाने से लेकर वहाँ से बचकर आने में उसकी समझदारी एवं सर्तकता का बोध होता है। ठाकुर के कुएँ पर दो औरतों को पानी भरते देख वह तुरन्त वृक्ष की ओट में छिप जाती है और तब तक कुएँ की तरफ नहीं जाती जब तक सब वहाँ से चले नहीं जाते। कहानी में गंगी की अत्याधिक सावधानी का चित्रण इस प्रकार हुआ है, "उसने रस्सी का फंदा घड़े को डाला। दाएं–बाएँ चौकन्नी दृष्टि से देखा, जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सुराख कर रहा हो। ...घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई!... घड़ा कुएँ के मुहं तक आ पहुंचा। कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खींच सकता था।..." इतना ही नहीं ठाकुर के बाहर आने पर वह तुरन्त वहाँ से भाग गई। यह सब उसकी अत्याधिक सावधानी का ही परिणाम है कि वह ठाकुर द्वारा पकड़ी नहीं गई।

विद्रोही

गंगी के भीतर उच्च वर्ग को लेकर विद्रोह की भावना भी है। वृक्ष की ओट में छिपी गंगी के मन में यही

विद्रोह उभर रहा था कि, "हम क्यों नीच है और – ये लोग क्यों ऊँच है?.... चोरी ये करें, जाल – फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें ! ..... कभी गाँव में आ जाती हूँ, तो रस भरी आँखों से देखने लगते हैं। ..... परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं।" स्पष्ट है कि उसका ह्रदय पम्परा बन चुकी पाबन्दियों और विवशताओ का विद्रोह करता है।

अतः कह सकते है कि गंगी दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली पात्र है। उसके जीवन का संघर्ष दलित जीवन के संघर्ष तथा मन का विद्रोह दलित के विद्रोह को प्रतिविम्बित करता है।

13.4 निष्कर्ष

प्रेमचन्द पात्रों के माध्यम से सामाजिक विवशताओं को मुखरित करते हुए यह बताने का प्रयास करते हैं कि यह पात्र अपने समाज और वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही कारण है कि इनकी कहानियों के पात्र हमें यर्थाथ जीवन से सम्बन्धित अनुभव होते हैं। चरित्र–चित्रण की दृष्टि से इनकी कहानियाँ बहुत मार्मिक बन पड़ी है तथा सजीव पात्रों के चयन ने कहानियों में यथार्थ की अभिव्यक्ति की है।

13.5 कठिन शब्द

1. व्यावहारिक	2. घुड़कियाँ	3. ऐश्वर्यप्रिय
4. सर्तकता	5. प्रतिनिधित्व	6. पुनरागमन
7. अकृत्रिम	8. क्षुधा	9. निराश्रय
10. कृतघ्न		

13.6 अभ्यास प्रश्न

1. **बूढ़ी काका का चरित्र चित्रण करें।**

____

____

____

____

2. **अलगू चौधरी और जुम्मन शेख के चरित्र की विशेषताएँ बताएँ।**

____

____

____

____

3. बुद्धिराम और रूपा की चारित्रिक विशेषताएँ लिखें।

---

4. 'हामिद– के चरित्र की विशेषताएँ बताईए।

---

5. 'मुंशी वंशीधर' का चरित्र–चित्रण करें।

---

6. 'हल्कू' के व्यक्तिव पर प्रकाश डालें।

---

7. 'कफ़न' कहानी के प्रमुख पात्रों पर प्रकाश डालें।

---

8. 'बीर' की कथनी और करनी में अन्तर है, स्पष्ट करें।

9. 'गंगी' दलित वर्ग की त्रासदी का प्रतिनिधित्व करती है, स्पष्ट करें।

13.7 पठनीय पुस्तकें

1. प्रेमचंद कहानी का श्रेष्ठ– प्रेमचन्द।
2. प्रेमचंद कहानीकार– सुरेन्द्र आनन्द।
3. कहानी नई कहानी– नामवर सिंह।
4. प्रेमचन्द की कहानियों में ग्राम्य जीवन का चित्रण– सरोज गौड।
5. कुछ कहानियां कुछ विचार– विश्वनाथ त्रिपाठी।

निर्धारित कहानियों का उद्देश्य

14.0 रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 निर्धारित कहानियों का उद्देश्य

- 14.3.1 पंच परमेश्वर
- 14.3.2 बूढ़ी काकी
- 14.3.3 ईदगाह
- 14.3.4 नमक का दरोगा
- 14.3.5 कफ़न
- 14.3.6 पूस की रात
- 14.3.7 नशा
- 14.3.8 ठाकुर का कुआँ

14.4 निष्कर्ष

14.5 कठिन शब्द

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.7 पठनीय पुस्तकें

14.1 उद्देश्य :–

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रेमचन्द की आठ कहानियों के उद्देश्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

कहानी ही नहीं : मानव का प्रत्येक कर्म कोई–न–कोई उद्देश्य लिए रहता है। कहानी का उद्देश्य मात्र पाठक या श्रोता के हृदय को आनन्दित करना ही नहीं, अपितु मानव जीवन से सम्बन्धित किसी–न–किसी समस्या की ओर ध्यान आकर्षित कर उसका समाधान खोजने में भी निहित रहता है।

14.3 निर्धारित कहानियों का उद्देश्य

साहित्यकार युग निर्माता होता है, इसलिए युगीन परिस्थितियाँ उसकी रचनाओं में मूर्त होती हैं। इस संदर्भ में यह स्वाभाविक है कि रचनाकार जिस युग में सृजन कर रहा है उस युग का दर्शन, चिंतन, विचारधारा, समस्या उसकी रचनाओं में आकार ले। प्रेमचंद भी इसके अपवाद नहीं है। प्रेमचंद एक कालजयी रचनाकार हैं। इन्होंने अपनी कहानियों के उद्देश्य में सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता से उठाया है। इनके द्वारा रचित 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'ईदगाह', 'नमक का दरोगा', 'कफन', 'पूस की रात', 'नशा' और 'ठाकुर का कुआँ' कहानियाँ भी सामाजिक जीवन से सम्बन्धित उद्देश्य को लेकर लिखी गई हैं।

14.3.1 'पंच परमेश्वर' कहानी का उद्देश्य

'पंच परमेश्वर' कहानी प्राचीन समय में प्रचलित पंचों की न्याय व्यवस्था की महत्ता को रेखांकित करती है। इस कहानी का मूल उद्देश्य इस तथ्य का प्रतिपादन करना है कि पंच में परमेश्वर अर्थात ईश्वर का वास होता है और उसकी वाणी ईश्वर की वाणी होती है। कहानी में यह तथ्य अलगू चौधरी तथा जुम्मन शेख दो मित्रों के माध्यम से रेखांकित हुआ है। अलगू और जुम्मन दोनो घनिष्ठ मित्र हैं किन्तु दोनों एक दूसरे के भिन्न झगड़े के चलते पंचायत पद के लिए चुने जाते हैं। पंच के पद पर आसीन होने के पश्चात दोनों परस्पर मित्रता का सम्बन्ध भूलकर वही फैसला करते हैं जो न्यायपूर्ण होता है। अर्थात् जुम्मन का मित्र अलगू उसके विरूद्ध फैसला लेता है क्योंकि जुम्मन दोषी होती है। इस निर्णय के पश्चात जुम्मन के हृदय में अलगू से बदला लेने की भावना उतेजित रहती है किन्तु पंच के आसन पर बैठकर वह उसके हित में फैसला सुनाता है। ऐसे वह अलगू के समक्ष मित्रता प्रर्दिशता करने के उद्देश्य से नहीं करता बल्कि अलगू के निर्दोष होने के कारण उसने आपसी द्वेष–भावना को भूल न्यायपूर्ण निर्णय लिया। जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पंच पद पर आसीन होकर व्यक्ति को आपसी राग–द्वेष से ऊपर उठकर निष्पक्ष न्यायपूर्ण निर्णय लेना होता है। दोनों मित्रों द्वारा आपसी राग–द्वेष को भूल न्यायपूर्ण निर्णय लेने से प्रेमचन्द ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पंच का आसन परमेश्वर का आसन होता है। इस आसन पर बैठकर न्याय–पालन के रूप में पंच के पद को परमेश्वर के पद स्वरूप दर्शाने वाली इस कहानी का शीर्षक 'पंच परमेश्वर' रखा जाना युक्तिसंगत और सार्थक है। इस कहानी को पढ़कर पंच–पद के प्रति आस्था और विश्वास के भाव प्रकट होते हैं। अतः यह कहानी पाठकों को यह सीख देती है कि जब हमारे हाथ में निर्णय लेने की शक्ति हो, तो हमें किसी के साथ पक्षपात नहीं करना चाहिए। क्योंकि, "पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन! न्याय के सिवाय उसक कुछ नहीं सूझता।" इसलिए पंच पद पर बैठकर सदैव न्यायपूर्ण निर्णय ही लेना चाहिए।

14.3.2. 'बूढ़ी काकी' कहानी का उद्देश्य

मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' का उद्देश्य वृद्ध जीवन से सबंधित है। इसमें कहानीकार ने बुद्धिराम जैसे लालची और स्वार्थी लोगों के प्रति समाज में घृणा की भावना पैदा की है और बूढ़ी काकी जैसे वृद्धों के प्रति

मानवता का व्यवहार जगाया है। लेखक ने गम्भीरता के साथ बुढ़ी काकी के साथ होने वाले जिस उपेक्षापूर्ण व्यवहार को वर्णित किया है, वह मात्र काकी के ही साथ नहीं है अपितु समाज में ऐसे अनेक वृद्ध हैं जो अपनी संतान के उपेक्षित व्यवहार का सामना कर रहे हैं। बुद्धिराम और रूपा के आचरण द्वारा प्रेमचंद ने यही प्रमाणित किया है कि रिश्तों की मर्यादाएँ स्वार्थ और लालच की आँधी में तार–तार हो जाती हैं। मानव जीवन में बुढ़ापा बालपन का पुनरागमन होता है क्योंकि वृद्धावस्था में व्यक्ति के क्रियाकलाप बच्चों से मेल खाने लगते हैं। इंद्रियों व शारीरिक शिथिलता के साथ ही अन्य मजबुरियों का शिकार मनुष्य दूसरों पर निर्भर होने के लिए विवश हो जाता है। ऐसे में वृद्धों को परिवार व संतान के प्रेम व सम्मान की अति आकांक्षा होती है किन्तु संतान इसके विपरित उनके साथ उपेक्षित व्यवहार करे तो वृद्ध जीवन अधिक पीढ़ादायक हो जाता है। वृद्ध जीवन की इस समस्या का समाधान लेखक ने लाड़ली के रूप में सामने लाया है। लाड़ली के अकात में कहानी का उद्देश्य अधूरा रह जाता है। क्योंकि लाड़ली के रूप में प्रेमचन्द ने आदर्श युवा पीढ़ी की स्थापना की है। जो मात्र वृद्धों का सम्मान ही नहीं करती बल्कि वृद्धों के प्रति संवेदनहीन संतान का हृदय की परिवर्तित करने में अग्रसर है। कहानी में अति संवेदनशील होने के कारण लाड़ली का बचपन बढ़प्पन में परिवर्तित हो गया है और यह उसी का कृत्य है जिससे उसकी माँ पिघलने पर विवश हो जाती है। काकी के प्रति लाड़ली की संवेदनशीलता और अन्त में रूपा का हृदय परिवर्तन लेखक के इस उद्देश्यस को स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति का यह नैतिक कर्त्तव्य बनता है कि वे वृद्धावस्था में वृद्धजनों की देखभाल व उनकी इच्छाओं का सम्मान करें।

14.3.3 'ईदगाह' कहानी का उद्देश्य

प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'ईदगाह' कहानी एक उद्देश्यपूर्ण रचना है। यह कहानी बाल मनोविज्ञान को गहनता से रेखांकित करती है। इस कहानी में लेखक ने हामिद के माध्यम से ऐसे बाल चरित्र का उद्घाटन किया है जो अभाव ग्रस्त परिस्थितियों के चलते अपने बालपन में ही व्यस्क हो गया है। देखा जाए तो बच्चों में मेले के दौरान खिलौने लेना, खेलकूद–मनोरंजन व खाने–पीने की स्वाभाविक लालसा देखी जाती है लेकिन कहानी में हामिद ऐसा बालक है जो जेब में तीन पैसे होने के बावजूद मेले में जाकर बाल सूलभ उपरोक्त कोई कार्य नहीं करता। वह इन पैसों से खिलौना या शर्बत पी सकता था किन्तु वह इन पैसों को अपने पर नहीं, दादी के लिए खर्च करना अधिक आवश्यक समझता है। यहाँ सब बच्चे माता–पिता द्वारा दिए पैसों से अपने लिए खिलौने, मिठाई लेते हैं, वहीं हामिद अपने बाल मन को नियंत्रित कर मेले से रसोई घर में काम आने वाला चिमटा लेता है। ऐसा उसने इसलिए किया क्योंकि उसने अपनी दादी के रोटी बनाते हाथों को जलते देखा है। इस चिमटे से वह दादी के कष्ट को समाप्त करना चाहता है। इसलिए दादी की पीड़ा के आगे उसने अपनी इच्छाओं को तिलांजलि दे दी। हामिद के इस कृत्य से यहाँ हामिद और अमीना के भावात्मक संबंध का प्रतिपादन हुआ है वहीं मात्र आठ वर्ष के बालक हामिद का बालसुलभ व्यवहार को भूलकर एक परिपक्व व्यक्ति की भाँति आचरण करना किसी भी समाज के स्वस्थ होने का लक्षण नहीं। इस कहानी को पढ़कर यह सत्य उदघाटित होता है कि परिस्थितियाँ उम्र नहीं देखती इसलिए परिस्थितिवश एक छोटा सा बालक समय से पहले ही परिपक्व होने के लिए विवश है। क्योंकि माता–पिता के इस संसार में न होने के कारण उसके जीवन में दादी ही एकमात्र सहारा है। इसलिए अभावग्रस्तता के चलते अपनी इच्छाओं को मारकर वह दादी के कष्टों को दूर करने का रास्ता अपनाता है। वह असमय परिपक्व होने के साथ–साथ दादी के प्रति संवेदनशील भी है। उसकी संवेदनशीलता व अभावग्रस्तता ने ही उसे अपनी उम्र के बच्चों से ज्यादा समझदार बना दिया है। प्रेमचन्द के साहित्य का सार ही मनुष्यता को स्थापित करना है वह निर्धनता में भी उच्च मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा करते हैं 'ईदगाह' कहानी

उनकी इसी कला का सटीक उदाहरण है जो हामिद जैसे मासूम बालक की संवेदनशीलता के काण श्रेष्ठ रचना बन गई है। अधिक गहराई से विचार करें तो यह कहानी बालक की संवेदनशीलता की ही नहीं, बल्कि आर्थिक विषमता की भी कहानी है। जो समानता और भाईचारे के थोथे दावों पर कठोर व्यंग्य करती है। क्योंकि भाईचारे की दीवार आर्थिक विषमता में परिवर्तित हो जाती है। जिसके पास पैसे हैं वह मेले का आंनद लेता है और जिसके पास पैसे नहीं, वह अलग–अलग मौज़ करने वालों की मस्ती देख तरह–तरह के तर्कों से अपने मन को समझाता व नियंत्रित करता है। अतः इस कहानी का उद्देश्य समाज में निम्न वर्ग की स्थिति को व्यक्त कर मानवीय संवेदनाओं को उजागर करना है जिसमें प्रेमचन्द को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई हैं।

14.3.4 'नमक का दरोगा' कहानी का उद्देश्य

'नमक का दरोगा' कहानी का मूल उद्देश्य धन पर धर्म की विजय दिखाना है। धन को असद् वृति या बुराई कह सकते हैं जिसका प्रतिनिधित्व कहानी में पंडित अलोपीदीन कर रहा है और धर्म सद् वृत्ति व सत्य है जिसका प्रतिनिधित्व वंशीधर ने किया है। इन दोनों प्रमुख पात्रों के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन समाज के इस यथार्थ का चित्रण किया है कि समाज में धन का ही साम्राज्य है। धन के बल पर भ्रष्ट व्यक्ति समाज में सम्मानित होता है और निर्बल को सच्च चरित्र होते हुए भी दण्ड भोगना पड़ता है। लोग मात्र दिखावे के लिए सभ्य, दयालु, न्यायवादी और धर्मात्मा बनते हैं परन्तु वास्तव में वे अन्याय और शोषण करते हैं। कहानी में वंशीधर ईमानदार व कर्त्तव्यनिष्ठ दारोगा होता है इसलिए पंडित अलोपीदीन उसे अपने धन के बल से खरीदने में असफल रहता है इस असफलता के उपरान्त भी पंडित को दण्ड नहीं मिलता क्योंकि जब वंशीधर उसे हथकड़ी पहनाकर अदालत में पेश करता है तो वहाँ अलोपीदीन समस्त कर्मचारियों, वकीलों व न्यायाधीशों को अपने धन–बल से खरीद लेता है जिससे उसे अदालत में निर्दोष साबित कर दिया जाता है और वंशीधर पर कार्यवाई करते हुए उसे नौकरी से मुअत्तल कर दिया गया। यहाँ तक कहानी यथार्थ को व्यक्त करती है। जिससे हमें अनुमान होता है कि प्रेमचन्द का उद्देश्य इस कहानी के माध्यम से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और धन के साम्राज्य को व्यक्त करना है किन्तु कहानी का अन्त हमें आदर्श की ओर लेते हुए एक नये उद्देश्य से अवगत करवाता है।

अलोपीदीन अदालत में धन के कारण निर्दोष साबित तो हो जाता है लेकिन वंशीधर के महान गुणों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। परिणामस्वरूप उसे अनुभव हुआ कि सभी व्यक्तियों को धन से खरीदा नहीं जा सकता। वह वंशीधर के घर पहुंचकर उसे अपनी समस्त सम्पत्ति के प्रबन्धक के पद पर नियुक्त कर लेता है। अलोपीनदीन को बाह्य दण्ड न देकर उसकी अंतरात्मा को जागृत होते दिखाना मानवीय मूल्यों व सद्गुणों के प्रति आस्था जगाने का सफल प्रयास है। यह कहानी इस उद्देश्य को की प्रकट करती है कि जो व्यक्ति नैतिक साहस के बल पर संसार की निंदा, अपमान और आर्थिक दण्ड सह सकता है वही श्रेष्ठ मानत है। वंशीधर की इसी श्रेष्ठता के कारण अलोपीनदीन की मानसीकता में अन्तर आया है। यदि आज की भ्रष्ट व्यवस्था को सुधारना है तो वंशीधर जैसे ईमानदार व सत्यनिष्ठ युवकों का होना अनिवार्य है। क्योंकि ऐसे कर्तव्यनिष्ठ, सद्गुणी और सत्यनिष्ठ युवकों के आगे ही भ्रष्टाचार का यह विशाल पर्वत खण्डित होगा।

अतः इस कहानी का उद्देश्य समाज में उच्च आदर्शों को स्थापित करना, समाज के प्रति मानवीय कर्तव्यों को ऊँचा दिखाना तथा लोभी मानसिकता में सुधार लाना है।

14.3.5 'कफ़न' कहानी का उद्देश्य

'कफन' कहानी का उद्देश्य प्रेमचन्द की पूर्व कहानियों से अलग है क्योंकि यहाँ प्रेमचन्द ने यथार्थ को सर्जनात्मक रूप से ग्रहण किया है। कफ़न कथानक से अधिक संवेद्य घटना पर आधारित है, जिसमें समाज की विषमतामूलक स्थिति को प्रकट किया गया है। कहानी में घीसू और माधव जो कुछ करते हैं, वह यथार्थ न होते हुए भी पाठक उसे यथार्थ मानने पर मजबूर होता है। सम्पूर्ण कहानी की एक ही संवेद्य घटना है – कफ़न के पैसों का कफ़न न खरीद कर दो क्षुधित प्राणियो का खुलकर समाज के सम्मुख अपने यथार्थ रूप में आ जाना। कहानी का मूल उद्देश्य ही यह दिखाना है कि आर्थिक व्यवस्था में सर्वहारा वर्ग का प्राणी कितना पतित व अमानवीय हो सकता है। घीसू और माधव को ज्ञात है कि बुधिया प्रसव पीड़ा से करहा रही है परंतु दोनों आलू खाने के चलते उसके पास जाने को तैयार नहीं। पेट की भूख ने उन्हें इतना संवेदनशून्य बना दिया है कि वे बुधिया के कफ़न के पैसों को भी शराब और स्वादिष्ट खाने में खर्च कर देते हैं। इस प्रकार यह कहानी सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करने के उद्देश्य में पूर्णता सफल हुई है। प्रेमचन्द ने घीसू– माधव की कामचोरी व संवेदनशून्यता पर व्यंग्य नहीं किया, बल्कि अपने समय के दृष्ट–शोषक पण्डितों, लालाओं, बनियों आदि पर व्यंग्य किया है। इस कहामी के माध्यम से उन्होंने व्यवस्था की विसंगतियों और विडंबनाओं को उधेड़कर सामने रखा है। गरीबी मानव को किस स्तर तक संवेदनशून्य और जड़ बना सकती है घीसू–माधव उसके ज्वलन्त उदाहरण है। किसी भी सभ्य समाज की ऐसी विषम आर्थिक स्थिति चिन्तनशील प्राणी को सोचने पर विवश कर देती है।

14.3.6 'पूस की रात' कहानी का उद्देश्य

'पूस की रात' कहानी का उद्देश्य भारतीय गरीब किसान की व्यथा को व्यक्त करना है। हमारे किसान जीतोड़ परिश्रम करते हैं लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति ज्यों की त्यों दयनीय बनी रहती है। कहानी में हल्कू अभावग्रस्त गरीब किसान का प्रतिनिधित्व कर रहा है। जाड़े की कंपकंपा देने वाली ठंड में वह मात्र, पुराने से कंबल के साथ अपने खेतों में फसल की पशुओं से रखवाली कर रहा है। वह ठंड से संघर्ष कर तो रहा था लेकिन आपने सीमित साधनों के चलते अन्ततः ठंड के आगे हार मानकर लापरवाह हो जाता है और परिणामस्वरूप पशुओं से जिस फसल की रखवाली वह बहुत दिनों से कर रहा था वे पशु चर जाते हैं। हल्कू का जाड़े की ठंड से संघर्ष और अन्ततः हार कर सब कुछ खो देना भारतीय किसान की उस वास्तविकता को सामने लाता है कि किसान अपनी आर्थिक अभावग्रस्तता के कारण किस तरह कठिन परिस्थितियों में जी रहे हैं। प्रकृति की कठोर आपदाओं का गरीब किसान जब सामना नहीं कर पाता तो उसे आपना सब कुछ गंवाना पड़ता है। अतः यह कहानी साधनहीन किसानों की उस व्यथा को उजागर करती है जिसमें वे साधनों के अभाव के चलते प्रकृति की कठोरता के आगे हार मान लेते हैं।

इस कहानी का उद्देश्य व्यवस्था दोष को उजागर करते हुए आम जन की निरीहता और विवशता को दिखाना भी है। इस कहानी की कथा वस्तुतः स्वाधीनता पूर्व की है, तब जमींदारी प्रथा थी। मेहनत किसान करता था और लाभ उच्च वर्ग को होता था। देखा जाए तो आज जमींदारी प्रथा नहीं है किन्तु छोटे किसानों की स्थिति आज भी ऐसे ही है। वह आपनी जरूरतों को पूरा करने के चलते आजन्म ऋण तले दबे रहते हैं। किसानी से लाभ न होने के चलते वह मजदूरी की तरफ पलायन करते दिखाई देते है। कहानी में खेतों के उजड़ जाने पर मुन्नी का चिंतित होकर मज़दूरी करके मालगुजारी की बात करना और इस पर हल्कू का खुश होकर यह कहना कि ''रात की ठंड में यहाँ

सोना तो न पड़ेगा।" स्पष्ट करता है कि आज किसानी से लाभ न होने के कारण किसान मज़दूरी की तरफ पलायन कर रहे हैं। इस प्रकार यह कहानी एक किसान के संघर्षमय जीवन को चित्रित करने के साथ–साथ उसके भीतर आई पलायन की प्रवृत्ति को भी उजागर करती है।

14.3.7 'नशा' कहानी का उद्देश्य

प्रेमचन्द सामाजिक कहानीकार थे। अभी उनकी कहानियों में छोटी–सी घटना भी अपने विराट रूप में व्यक्त होती है। 'नशा' कहानी के माध्यम से लेखक ने जमींदारी व्यवस्था पर प्रहार करते हुए उच्चवर्गीय मानसिकता को चित्रित किया है। कहानी में ईश्वरी और बीर दो मित्रों का चित्रण है। ईश्वरी जमींदार का बेटा है तो बीर एक मामूली क्लर्क का। ईश्वरी जमींदारों का समर्थक है तथा मनुष्यों में उच्च–निम्न होना वह प्रकृति या भगवान का नियम मानता है किन्तु बीर जमींदारों को खून चूसने वाली जोंक, हिंसक, पशु आदि कहकर उनकी आलोचना करता है। वाद–विवाद के समय वह अक्सर आपने कोध्र को व्यक्त करता, किन्तु ईश्वरी के आग्रह पर जब वह उसके घर जाता हे तो ईश्वरी उसका परिचय देते हुए उसे उच्च वर्ग का बताता है ताकि घर में सब उसका सम्मान करें। अपने इस नये परिचय से उसे कोई अस्वीकृति नहीं होती, बल्कि ईश्वरी के घर में वह जमींदार पुत्र की भांति व्यवहार करता है। वह अपना कोई भी कार्य स्वयं नही करता और नौकरों द्वारा थोड़ा–सा विलम्ब होने पर क्रोध करने लगा। उसपर इस बनावटी रूप का ऐसा नशा चढ़ा कि वह अपनी वास्तविक स्थिति को भूल स्वयं को जमींदार का पुत्र मानने लगा। उच्च वर्ग की जिस प्रवृत्ति की वह आलोचना करता था। सुविधा सम्पन्न क्षणों को भोगकर वह स्वयं भी उसी प्रवृत्ति का शिकार हो गया। बीर का ऐसा चरित्र सामने लाकर प्रेमचन्द इस सत्य को उद्‌घाटित करते हैं कि व्यक्ति की कथनी और करनी में बहुत अन्तर होता है। इस कहानी का मूल उद्देश्य भी इसी वास्तविकता को व्यक्त करना है कि अपने जीवन में व्यक्ति जो कहता है वैसा आचरण नहीं कर पाता । निम्न स्तरीय होकर उच्च वर्ग की आलोचना करना सहज है लेकिन अवसर मिलने पर उच्च वर्गीय सुविधाओं को पाकर आदर्शपूर्ण बातों का स्मरण रखना और अहंकारपूर्ण अमानवीय व्यवहार न करना कठिन है। अतः उच्च सिद्धान्तों के अनुसार बातें करना तथा उनके अनुकूल व्यवहार करना दो अलग–अलग बातें हैं। इसके साथ ही यह कहानी हमें यह संदेश भी देती है कि घनिष्ठ मित्रता में अमीरी–गरीबी का कोई अन्तर नहीं होता। अभाव ग्रस्त व्यक्ति ही अधिक समाजवादी और गांधीवादी बनकर पूंजीपतियों और शोषको का विरोध करता है। क्योंकि अभावग्रस्त को जब सुख–सुविधा मिलती है, तो उसमें इसे भोगने का नशा भी रहता है जैसे कहानी से बीर के संदर्भ में देखा जा सकता है। परिणामस्वरूप जब तक व्यक्ति अभावग्रस्त हो तब तक उसमें सज्जनता भी रहेगी जैसे ही उसे सुख भोगने का अवसर मिलेगा वह भी शोषक और अनुदार हो जाएगा। कहानी के अन्त में बीर का रेल यात्रा के दौरान एक देहाती के साथ अभद्र व्यवयर करने पर ईश्वरी द्वारा उसकी आलोचना करते हुए "What an idiot you are Bir!" कहने पर बीर के वास्तविक स्थिति में पहुंचने के पीछे लेखक द्वारा क्षणिक अमीरी के नशे को तोड़कर शाश्वत मानव मूल्य की स्थापना करने का उद्देश्य भी निहित है।

14.3.8 'ठाकुर का कुआँ' कहानी का उद्देश्य

प्रेमचन्द हिन्दी के पहले कथाकार हैं जिन्होंने दलितों व अछूतों की समस्याओं को अपनी लेखनी के माध्यम

से सामने लाया है। 'ठाकुर का कुआँ' कहानी भी इनकी दलित जीवन के उत्पीड़न, शोषण, तिरस्कार व आर्थिक अभाव के चलते उनकी दीन–हीन स्थिति को व्यक्त करती है। इस कहानी में लेखक का उद्देश्य दलित की उस स्थितियों को सामने लाना है जिसके कारण उनका जीतन नारकीय बना, और वह हैं– जाति –प्रथा, ऊँच–नीच की भेदभावना तथा छुआछूत।

यह कहानी इस कटु सत्य को उजागर करती है कि जीवन की मूल आवश्यकता व प्राकृतिक सम्पदा 'जल' के लिए भी दलितों को सवर्णों की दया पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि सवर्ण इस प्राकृतिक सम्पदा पर भी अपना अधिकार समझते हैं। ईश्वर ने वायु की भांति जल को भी सम्पूर्ण विश्व को निःशुल्क प्रधान किया है, फिर भी सवर्ण अपनी संकुचित मानसिकता के कारण दलितओ को इससे वंचित रखते हैं। परिणामस्वरूप अछूतों को अभाव, अपमान, भयग्रस्त तथा असुरक्षा का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। कहानी में जोखू और गंगी अछूत दम्पति स्वच्छ पानी की समस्या से ग्रस्त है क्योंकि अछूतों के लिए गाँव बस्ती से दूर एक कुआँ था जिससे वह पानी भर सकते थे किन्तु उस कुएँ में किसी जानवर के मरने से उसका जल अपेय बन जाता है। जोखू पहले ही लम्बे समय से बीमार था ऐसे में बदबूदार अपेय जल पीने से उसका स्वास्थ्य अधिक खराब हो सकता था किंतु उनके पास अन्य कोई रास्ता नहीं था क्योंकि सवर्णों के कुएं से पानी भरने में हाथ– पांव तुड़वाने का भय था। गंगी रात के अंधेरे में ठाकुर के कुएँ से पानी लाने का प्रयास तो करती है, लेकिन कुएँ से घड़े को पकड़ने के लिए वह झुकी ही थी कि ठाकुर का दरवाजा खुला और भय के कारण गंगी के हाथ से घड़ा छूट गया। भागकर घर पहुंची तो जोखू प्यास के कारण गंदा पानी पी रहा था। जोखू और गंगी की ऐसी स्थिति सवर्णों की संवेदनशून्यता और दलितों की अपमानजनक अभावग्रस्त उत्पीड़ित जीवन शैली को अभिव्यक्त करती है। अतः अछूत होने के कारण दलितों के मानवीय अधिकारों का हनन हो रहा है पाठक को इसी सत्य से अवगत करवाते हुए सवर्णों की संवेदनशून्यता और दलितों की दयनीय स्थिति को उजागर करना ही इस कहानी का उद्देश्य है।

14.4 निष्कर्ष

अतः पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रेमचन्द की प्रत्येक कहानी उद्देश्यपरक है। प्रत्येक कहानी जिस उद्देश्य को लेकर लिखी गई है उसका सम्बंध हमारे सामाजिक जीवन से है। इसलिए सामाजिक जीवन की समस्याओं व उनके समाधान उपस्थित करने में प्रेमचन्द को सफलता प्रधान हुई है।

14.5 कठिन शब्द

1. कालजयी	(2) प्रतिपादन
(3) पुनरागमन	(4) शिथिलता
(5) बाल सुलभ	(6) न्यायवादी
(7) कर्तव्यनिष्ठ	(8) विषमतामूलक
(9) सर्वहारा	(10) निरीहता

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1. 'पंच परमेश्वर' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट करें।

प्र.2. 'बूढ़ी काकी' कहानी किस उद्देश्य को लेकर लिखी गई है?

प्र.3. 'ईदगाह' कहानी के उद्देश्य पर चर्चा करें।

प्र.4. 'नमक का दरोगा' कहानी के माध्यम से लेखक ने किस उद्देश्य का प्रतिपादन किया है।

प्र.5. 'कफ़न' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट करें।

प्र.6. 'पूस की रात' किस उद्देश्य को व्यक्त करती है।

प्र.7. 'नशा' कहानी में लेखक का उद्देश्य क्या है?

प्र.8. 'ठाकुर का कुआँ' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

14.7पठनीय पुस्तकें

2. प्रेमचन्द : एक विवेचन – डॉ. इन्द्रनाथ मदान
3. कहानीकार प्रेमचन्द रचनादृष्टि और रचना शिल्प – शिवकुमार मिश्र
4. प्रेमचन्द साहित्य में हाशिए का समाज –डॉ शुभ्रा सिंह
5. प्रेमचन्द – सं. सत्येन्द्र
6. कथाकार प्रेमचन्द – जाफ़र रज़ा

....